रजत हिम शिखरों की ओर

जी० के० प्रधान

श्री दत्तमूर्ति

श्री शंकर महाराज

रजत हिम शिखरों की ओर

जी० के० प्रधान

अनुवादक :
माधव मा. तारे

समकालीन प्रकाशन
नई दिल्ली-११००५५

१९८०

मूल्य : २० रुपये

प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन
२७६२ राजगुरु मार्ग,
नई दिल्ली-११००५५

मुद्रक : प्रिय प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा
वैदिक मुद्रणालय,
दिल्ली से मुद्रित

विषय सूची

अनुवादक के दो शब्द

'टूवर्डस् द सिल्वर क्रेस्ट्स् ऑफ द हिमालयाज्' स्वर्गीय जी० के० प्रधान रचित अंग्रेजी का, प्रथम संस्करण सन् १९६३ में तथा द्वितीय संस्करण सन् १९७६ में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक को पढ़ने पर जिस आत्मिक आनन्द का अनुभव अनुवादक को प्राप्त हुआ, उसे हिन्दी जानने वाले अन्य पाठक भी प्राप्त करें, इसी उद्देश्य से इसके हिन्दी अनुवाद की प्रेरणा हुई है।

पुस्तक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि मूल-कृति स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व की है। अनुवाद में घटनाएं स्थानों के नाम आदि उसी काल के रखे गए हैं और अनुवादक ने मूल-कृति में किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं किया है। जहाँ पर संप्रेषण दृष्टि से भाषा को सरल बनाना आवश्यक था ऐसे स्थलों पर भी परिवर्तन नहीं किया है। संभव है कुछ स्थानों पर वाक्य-रचना कुछ क्लिष्ट जान पड़े। अनुवादक इस तथ्य से परिचित है। किन्तु अनुवादक ने मूल-कृति को हमशा एक पवित्र पुस्तक के रूप में लिया जिसकी रचना साधारण स्तर से कुछ ऊपर उठकर की गई हो। मूल कृति के भाव को हिन्दी अनुवाद में बनाये रखने में अनुवादक ने यथासम्भव वाक्य-रचना भी मूल के अनुसार ही रखने का प्रयास किया है।

अनुवाद कार्य के कारण अनुवादक को पुस्तक में वर्णित घटनाओं और व्यक्तियों का निकट परिचय प्राप्त हुआ और इस सारे समय आनन्द की अनुभूति बराबर होती रही है। सम्भव है, अनुवादक से भी अधिक आनन्द अन्य पाठकों को भी प्राप्त हो क्योंकि यह तो प्राप्त करने वाले व्यक्ति की योग्यता पर भी निर्भर करता है। अनुवाद कार्य में जिन महानुभावों से सहायता प्राप्त हुई है, अनुवादक उनके प्रति कृतज्ञ है।

अनुवाद पढ़कर यदि पाठकों को आत्म-कल्याण की ओर प्रगति में कुछ सहायता मिलती है तो अनुवादक अपना प्रयास सफल समझेगा।

माधव मा. तारे

अनुवादक की प्रस्तावना

स्वर्गीय श्री जी० के० प्रधान द्वारा रचित 'टूवर्डस द सिल्वर क्रैस्टस् आफ द हिमालयाज्' से मेरा प्रथम परिचय वाङ्मयशोभा (मराठी मासिक पत्रिका) में धारावाहिक प्रकाशन के अवसर पर हुआ। पुस्तकांश पढ़कर विषय ने मेरा मन मोह लिया था और मैं बड़ी उत्सुकता से आगे प्रकाशित होने वाले अंश की प्रतीक्षा करता था। कुछ समय पश्चात् मुझे मूल अंग्रेजी पुस्तक भी प्राप्त हो गई। मैंने एकाधिक बार उसे आद्योपान्त पढ़ा। मुझे प्रतीत हुआ कि पुस्तक में दी हुई माधव के जीवन की घटनाएं किसी भी साधक के जीवन की प्रतिनिधि घटनाएं हैं उनका सार्वकालिक महत्व है। माधव के जीवन की आध्यात्मिकता के साथ घनिष्ठता बढ़ाने के लिए मैंने पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करना प्रारंभ किया। बाद में मूल अंग्रेजी पुस्तक के प्रकाशक श्री के. के. आशर से पत्र व्यवहार करने पर मेरा उत्साह बढ़ा और हिन्दी पाठकों को भी पुस्तक प्रकाशित होकर सुलभ हो इस उद्देश्य से पुस्तक के हिन्दी अनुवाद में मेरा मन अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से लगने लगा!

स्वर्गीय श्री जी. के. प्रधान ने अपनी पुस्तक जगद्गुरू श्री शंकर महाराज को समर्पित की है। पुस्तक पढ़ने पर मुझे लगा कि माधव तथा गुरुदेव केवल काल्पनिक पात्र नहीं हो सकते, प्रत्यक्ष में भी ऐसा कुछ जरूर घटित हुआ होगा। अंग्रेजी पुस्तक का मराठी अनुवाद 'साद देती हिमशिखरे' शीर्षक से मनोहर ग्रन्थमाला १६०९ सदाशिव पुणे से प्रकाशित हुआ है। मराठी अनुवादक श्री रामचन्द्र ज. जोशी ने अपनी मराठी प्रस्तावना में जगदगुरु शंकर महाराज तथा लेखक श्री प्रधान के जीवन के बारे में उपयोगी जानकारी प्रस्तुत की है उनकी अनुमति से उस प्रस्तावना में से कुछ जानकारी यहां भी दी जा रही है ताकि हिन्दी पाठक भी उससे लाभ उठा सकें।

जगद्गुरु शंकर महाराज को ही श्री प्रधान ने अपनी पुस्तक में गुरुदेव के रूप में प्रस्तुत किया है। श्री शंकर महाराज महान् योगी पुरुष थे। उनके भक्तों में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी वर्गों के लोग बड़ी संख्या में थे। श्री शंकर

महाराज की सी वास्तविक आयु का ज्ञान किसी को नहीं था तथा उनके द्वारा किये गए चमत्कारों के बारे में भी कई कथाए प्रचलित हैं। विभिन्न रूपों में वे भक्तों के सम्मुख प्रकट होते थे। ऐसे ही एक रूप का फोटो इस पुस्तक में दिया गया है।

अंग्रेजी पुस्तक के प्रकाशक श्री के. के. आशर तथा श्री जी० के० प्रधान उनके बड़े भक्त थे। प्रधान जी तथा आशर जी व्यवसाय में भी सहभागी थे। प्रधान जी उच्च शिक्षित व्यक्ति थे तथा चमत्कारों आदि पर उनका विश्वास नहीं था। प्रारम्भ में वे शंकर महाराज से प्रभावित भी नहीं हुए। किन्तु जब शंकर महाराज ने प्रधान जी को समाधि का अनुभव उसी प्रकार कराया था, जिस प्रकार रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को कराया था, तो प्रधान जी उनके अनन्य शिष्य बन गए! प्रधान जी ज्ञानमार्गी थे। वे शंकर महाराज से विवाद भी करते किन्तु एक बार बात समझ लेने पर अति निष्ठा पूर्वक उसका पालन भी करते। शंकर महाराज की प्रधान जी पर पूर्ण कृपा दृष्टि थी। गुरुदेव ने जिस प्रकार माधव के जीवन में आए हर संकट के समय उसे आवश्यक सहायता प्रदान की है तथा उसके गन्तव्य स्थान पर उसे पहुंचाया है उसी प्रकार प्रधान जी के हर सकट के समय शंकर महाराज ने उनकी रक्षा की थी।

शंकर महाराज ने प्रधान जी को गिरनार पर्वत पर योगी माच्छीन्द्र नाथ तथा गोरखनाथ का दर्शन कराया था। प्रधान जी ने उनके चरणों पर मस्तक रखा तो कुछ समय बाद उन्हें दो कुत्ते दिखाई पड़े तथा श्री दत्तभगवान के दर्शन भी हुए। प्रधान जी की नित्य पूजा में दत्त मूर्ति का फोटो भी इस पुस्तक में दिया है।

शंकर महाराज का निर्वाण सन् १९४८ में हुआ। पुणे सतारा मार्ग पर पद्मावती में उनकी समाधि है।

प्रधान जी भी अध्यात्म-मार्ग के बड़े अधिकारी पुरुष थे। उनका जन्म १९०२ में हुआ था। गुजरात विद्यापीठ से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी तथा मध्यप्रदेश में राज्य सेवा कार्य भी किया था। सेवा कार्य छोड़ने के बाद कुछ समय तक अहमदाबाद में अंग्रेजी पत्रिका के वे संपादक भी रहे। फिर उन्होंने व्यवसाय में प्रवेश किया।

अपने गुरु से भेंट होने पर उनके मार्गदर्शन में वे आध्यात्म पथ पर अग्रसर हुए। अपने अनुभवों, अपनी समस्याओं तथा उनके निदानों को माधव के जीवन के रूप में बड़े सुन्दर ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया है। पुस्तक को प्रकाशित होने के उपरान्त सन १९६३ में उनकी मृत्यु हो गई।

प्रधान जी की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करते समय मैंने बहुत कम स्वतंत्रता ली है। मैंने कहीं कोई परिवर्तन नहीं किया—जहां पर वाक्य रचना कुछ क्लिष्ट सी हो रही थी वहाँ पर भी। मैंने सोचा कि पुस्तक साधारण पुस्तक नहीं है। दैवी अनुभूति के धरातल पर उसका उत्सर्जन हुआ है इसलिए वाक्यरचना के ऐसे कुछ क्लिष्ट स्थानों के लिए मैं क्षमायाचना करता हूं।

अनुवाद करते समय मैंने गुरुदेव की कृपा तथा माधव के जीवन से बड़ी प्रेरणा प्राप्त की है। पाठक श्री गुरुदेव तथा माधव से मित्रता बढ़ाते हैं तो अपने जीवन को आध्यात्मय बनाने तथा साधना पर आगे बढ़ने में उन्हें बड़ी सहायता मिल सकती है।

समकालीन प्रकाशन ने हिन्दी अनुवाद में प्रकाशित करने का कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न किया है। इस प्रकाशन के श्री खुल्लर साहब का बड़ा आभारी हूं। श्री के. के. आशर तथा प्रधान जी की सुपुत्री श्रीमती सुमित्रा सोहन परुलकर ने कृपापूर्वक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की उनका मैं अत्यन्त आभारी हूं। पुस्तक के मराठी अनुवादक श्री रामचन्द्र ज. जोशी का भी अभारी हूं जिनकी अनुमति से मैंने इस प्रस्तावना में कुछ जानकारी उद्धृत की है। अन्य कई महानुभावों के सहयोग से मैं लाभान्वित हुआ हूं। इन सब के प्रति में आभार प्रदर्शन करता हूं।

माधव मा. तारे

अंग्रेजी संस्करण की भूमिका

रजत् हिमशिखिरों की ओर आत्मकथा के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।
हिमालय पर्वत की आभा, उसकी गरिमा और सुन्दरता से सारा संसार परिचित है। जहां पर हिमालय, तिब्बत जिसे संसार की छत कहा जाता है, की ओर ढलान पर है, वहीं पर ये रजत् हिमशिखर हैं। हिमालय के इस भाग में बर्फ से ढकी गुफाओं में आध्यात्मिकता के साधक, सिद्ध पुरुष रहते हैं। उनका लक्ष्य है परमोच्च, अज्ञात और अन्तिम सत्य शोधन एवं अनुभव से उसका साक्षात करना। पात्रता उन महान साधकों की साधना और योग्यता पर किसी प्रकार का मत प्रदर्शित करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। वे आध्यात्मिक रूप से पूर्ण सत्यपुरुष असीम और अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न हैं। समस्त मानव जाति का रूपान्तरण वर्तमान जीवन विधि में संभव नहीं है, तो मनुष्य को विकास के उच्चतम स्तरों तक पहुंचने में सहायता करने के लिए ये सदैव यत्नशील रहते हैं। आध्यात्मिक मार्ग के सभी साधकों की यही श्रद्धा है। पुस्तक का यह शीर्षक इसी श्रद्धा का संकेत रूप है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त सभी नाम छद्म हैं और किन्हीं ख्यात जीवित अथवा मृत व्यक्तियों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक और गुरु तथा अन्य साधकों की सन्निधि में प्राप्त वैयक्तिक अनुभवों को स्पष्ट करने का प्रयास भर मैंने किया है। इस प्रकार के प्रसंगों का चुनाव मैंने सायास किया है जिससे मैं कुछ चिरंतन सत्यों, अपने निजी अनुभवों और मान्यताओं को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकू एवं सहजता से उन्हें समझा सकूं। अपने प्रयासों में मैं कहां तक सफल रहा हूं इसका निर्णय मैं पाठकों पर छोड़ रहा हूं।

लन्दन की रायल सोसाइटी के फेलो डा० डी० जी० विनोद, एम० ए०, पी० एच० डी०, न्याय रत्न, दर्शनालंकार का मैं अत्यधिक आभारी हूं। विश्वशांतिवादियों के अस्सी राष्ट्रों के एक सम्मेलन ने टोकियों में(१९५४ में) "विश्व शांतिदूत" के रूप में चुनकर उन्हें सम्मानित किया है। उन्होंने मुझ पर अनुग्रह कर इस पुस्तक के लिए अत्यन्त सार्थक प्रस्तावना लिखी है। हिमालयीन मन्त्र तन्त्र साधना में उनकी पैठ सर्वपरिचित है। उनकी उपलब्धियाँ महान हैं। मुझ पर और मेरे सारे परिवार पर उनका जो अपार स्नेह है उसका मुझे गर्व है। प्रस्तावना लिखने के लिए उनके प्रति कृतज्ञता भाव व्यक्त करने हतु मेरे पास शब्द नहीं हैं।

मेरी सुपुत्री श्रीमती सुमित्रा मोहन परुलकर एम० ए०, श्री डी० जी० ब्रम्हे और श्री एस० पी० कवे ने मुझे अमूल्य सहायता दी है जिसके कारण ही यह पुस्तक पूरी हो पायी। श्री एस० ए० देशपाण्डे और श्री एस० जी० नवेटिया ने पुस्तक का मुद्रण शीघ्रता से करा लेने में सहायता दी है। उनका भी मैं आभारी हूं।

गोखले रोड, थाना (मध्य रेलवे) — **जी० के० प्रधान**

प्रस्तावना

श्री जी० के० प्रधान द्वारा लिखित यह पुस्तक वैयक्तिक अनुभव और दृष्टान्त कथा दोनों का ही दस्तावेज है। सरल और साधारण लगने वाले एक सपने से उसका आरम्भ होता है। फिर भी अन्त में सपने के सारे भाव यथार्थ हो जाते हैं।

इसके कारण, मनोविज्ञान और परा-मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के सामने अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। फ्रायड और एडलर से बहुत कम सहायता मिल पाती है। इस प्रकार के सपने के बारे में डा० युंग का जो दृष्टिकोण है, उससे कुछ सीमा तक सहायता मिल सकती है। उनकी गंभीर-मनोविज्ञान की शब्दावली में, इस पुस्तक में बताया गया सपना एक प्रक्षेपित आदर्श है जिसमें अपने को वास्तविक करने के लिए हमेशा ही बीज रहता है। डा० फ्रायड ने उसकी ऐसी व्याख्या दी होती जैसे वह काम से प्रेरित किसी वासना का विकृत रूप ही हो।

डा० युंग स्वयं एक उच्च आध्यात्मिक साधक था। पूर्व कर्मों के प्रभाव के अर्थ के लिए उन्होंने प्राय: 'छाया' (शेडो) शब्द का प्रयोग किया है। अपने ज्यूरिच (स्विटजरलैण्ड) स्थित निवास स्थान पर खुद उन्होंने मेरे सामने अगस्त १९५१ में यह बात स्वीकार की कि मानव-व्यक्तित्व को समझने के लिए किए गए किसी भी प्रयास के अन्तर्गत आने वाली अनेक अनाकलनीय बातों के लिए प्राचीन भारतीय विचारकों का कर्म सिद्धान्त ही 'एकमात्र संभवनीय युक्तिपूर्ण समाधान है'।

आधुनिक विज्ञान में कुछ ऐसी अनाकलनीय बातें हैं जिन्हें उसी रूप में मान लिया जाता है। उनके बारे में फिर क्यों' नहीं पूछा जाता क्योंकि इस प्रकार के किसी अनाकलनीय बात के अस्तित्व से मिलने वाले परिणाम निर्णायक रूप से सही ठहराते हैं। इस संदर्भ में मेक्स प्लेन्क का स्थिरांक उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है जो प्रकृति के मूलभूत स्थिरांको में से एक माना जाता है।

किसी सैद्धान्तिक आधार पर मेक्स प्लेन्क ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि प्रत्येक भौतिक ऊर्जाणु के साथ शक्ति की मात्रा रहती है जो ई = एच० वी० इस समीकरण के द्वारा बनाई जाती है। यहां पर ई शक्ति है, एच० वी० किरण की आवृत्ति और एच स्थिरांक है। इस स्थिराँक को खुद उन्होंने खोजा है। यह स्थिरांक एक अत्यन्त अल्प किन्तु सूक्ष्म और अपरिवर्तनशील अंक है जिसका मान दशमलव के पश्चात छब्बीस शून्य पर ६६२४ के तुल्य है। मेक्स प्लेन्क इस अंक पर कैसे आ

पहुंचे ? न तो वे स्वयं इस बात को जानते थे और न दूसरा कोई। गत पचास वर्षों की भौतिक शास्त्र की लगभग सारी की सारी प्रगति इसी स्थिरांक के आधार पर हो पायी है। खुद आइन्स्टाइन ने अपने प्रिन्सटन स्थित निवास स्थान पर नवम्बर १९५३ में मुझे बताया कि १९०५ से लगातार वे इस स्थिरांक का प्रयोग करते रहे हैं। यहाँ पर मैं स्थिरांक के बारे में बता रहा हूं क्योंकि यह एक ऐसी अनाकलनीक बात है जिसे आधुनिक विज्ञान ने निःसंकोच होकर मान लिया है। इस सन्दर्भ में सर आर्थर एडिन्गटन बताते हैं कि 'प्रकृति का कोई भी सत्य नियम किसी विचारशील पुरुष के लिए अयुक्तिपूर्ण प्रतीत हो सकता है।' कर्म का नियम भी किसी विचारशील पुरुष को अयुक्तिपूर्ण लग सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि यथार्थ में वह आयुक्तिपूर्ण हो क्योंकि मिलने वाले परिणाम उसके अस्तित्व को तर्क पूर्वक सही ठहराते हैं। अतिरिक्त इन्द्रिय, अतीन्द्रिय, प्रत्यक्ष ज्ञान (ई. एस. पी.), छठा इन्द्रिय, सहज बोध या हम जो भी नाम उसे देते हैं, उसके वैध होने के दावे को सही ठहराते हैं क्योंकि उनके द्वारा जो परिणाम निकलते हैं वे युक्तिपूर्ण रूप से स्वीकरणीय बन जाते हैं।

सपने के अनुभव में सगति है, अपने आप का वह एक अटूट कारण या परिणाम है। इस तर्क-वाक्य को आसानी से स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु सपने के अनुभव की वास्तविक, अनुभव की जागृत विश्व के साथ भी एक प्रकार की संगति है, सातत्य है यह एक इस प्रकार की अनाकलनीय बात है जिसे पचा लेना कठिन है। यहां पर एक और अनाकलनीय बात है जिसे हम कभी अस्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि वास्तविक परिणाम उसके सत्य को वैध कर सकते हैं।

यह पुस्तक कर्म के नियम की जटिलताओं एवं अनुभव के स्वप्न आयामों का एक व्यंजनात्मक अध्ययन है।

डा० जे. एम. डूने की लिखी दो पुस्तकें याद आती हैं। 'समय के साथ एक प्रयोग' (एन एक्सपरिमेन्ट विद टाइम) और 'क्रमिक ब्रह्माण्ड' (दी सीरियल यूनिवर्स)। हमारे समय की इन दो विख्यात पुस्तकों में डा० डूने ने अति जटिल, गणित के सूत्रों का हवाला दिया है। वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि यथार्थता अपनी समापन की अवस्था में सदैव विद्यमान रहती है और समय तो केवल एक परदा मात्र है जो समझ के अति सीमित उपकरण से यथार्थता का ग्रहण करने के लिए मनुष्य की बुद्धि के द्वारा प्रक्षेपित है। मनुष्य यथार्थता को समग्र रूप में और उस प्रकार जैसी कि वह है, कभी

नहीं देख सकता। वह उसे समझने की क्षमता रखता है, तो केवल एकत्रित की गई रचनाओं में ही। मनुष्य के 'विचारों के साहस' की सुविधा के लिए समय एक आसान प्रक्षेपण मात्र है जिससे उसका जीवन पृथ्वी पर सम्भव और उपयोगी हो इसके लिए जितनी आवश्यक है कम से कम उतनी तो भी यथार्थता उसके मन में प्रतिबिम्बित हो सके। भूत वर्तमान और भविष्य केवल हमारी अपनी रचनाएं हैं। मूलभूत यथार्थता के वे कोई सही भाग अथवा पहलू भी नहीं हैं।

अन्तिम यथार्थता को दृष्टि से सपने के अनुभव की विषय-वस्तु और जागृत अनुभव की विषयवस्तु एक समान हैं। हम उन्हें अनुभव की अलग अलग अवस्थाओं में देखते हैं क्योंकि हमने समय की रचना तथा भूत, वर्तमान और भविष्य के तीन क्षेत्रों का विकास कर रखा हैं। डा० डूने के अनुसार यदि कोई सपना अपनी वास्तविकता और भौतिक अभिव्यक्ति से कम कुछ नहीं होता। डा० डूने ने अपने प्रबन्ध को सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं।

दो लड़कियां, पैरिस के सार्वजनिक बाग में बैठकर ही देख सकती थीं और बता सकती थीं कि वहाँ बारह सौ वर्ष पूर्व क्या घटित हुआ था। वह युद्ध, वह रूधिरासक्त भूमि, लाशें आदि आदि। अर्थात् वे दोनों लड़कियाँ ही तन्मयावस्था में थीं और समय-अवकाश की सीमाएं पार कर गई थीं। उन्होंने जो कुछ देखा और कहा ध्वनि मुद्रित कर उसका अध्ययन किया गया और पुराने ऐतिहासिक दस्तावेजों के साथ उसे मिलाया गया। बड़े आश्चर्यजनक रूप में हर बात का अनुमेलन हो गया। इसी प्रकार भविष्य की घटना की कोई झलक भी सही हो सकती है। एक किसान ने तन्मयावस्था में ही, एक भविष्यवाणी की थी, 'सात वर्ष बाद कुछ गजों की दूरी पर ही एक महल बनाया जायेगा'। यह बात भी शब्दशः सही निकली। मैंने श्री डूने का प्रबन्ध यहां पर उद्धृत किया है क्योंकि बाबा प्रधान की विचार प्रवण पुस्तक के समस्त पार्श्वसंगति के लिए वह एक वैज्ञानिक प्रमाणीकरण प्रस्तुत करती है।

मानव के आध्यात्मिक विकास का चित्रण करने वाली एक कहानी यहां पर है। आत्मीयता से भरे वैयक्तिक प्रकार से बनाये जाने पर भी उसके अर्थ और संदेश का सातत्य भाव शुद्ध रूप में मननीय और सार्वलौकिक है। समूचा प्रस्तुतीकरण चित्र के समान इतना सुन्दर और यथार्थ लगता है कि कभी कभी लेखक के सजीव वाक्य रंगों और लेपों मे बदलते प्रतीत होते हैं, उनकी लेखनी कितने ही स्थानों पर अपने में छिपी तूलिका प्रकट कर देती है।

जैसे जैसे कहानी पाठक के मनचक्षुओं के सामने खुलने लगती है, उसकी आन्तरिक विचारधारा की तर्क-संगति अपरिवर्तनशील और विवश करने वाली बनती जाती है। इस पुस्तक में जिन अनुभवों और घटनाओं का वर्णन है, रेखांकन है उनके लिए कोई दूसरे पर्याय पूर्णत: असंभव लगते हैं। प्रत्येक घटने वाली बात में अनि-वार्यता है। जो रूप इस घटनाओं ने धारण किया है उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता था। घटनाओं और वृत्तान्तों के अविर्भाव में, उनके क्रम में जब पाठक अनिवार्यता का, अवश्य भाव का, अपरिहार्यता का अनुभव करता है तो यह निश्चित है कि वह कथा उल्लेखनीय प्रमाण में रचना सम्बन्धित श्रेष्ठता प्राप्त कर चुकी है। यह पुस्तक निश्चित रूप से यह अपेक्षा पूर्ण करती है। पाठक तब तक पृष्ठ पर पृष्ठ पलटता जाता है जब तक कि समाप्ति तक नहीं पहुंचता और इस सारे उपक्रम में उसकी यह विचित्र इच्छा बनी रहती है कि पुस्तक की वास्तविक समाप्ति कभी न हो। लेखक की सरलता, सहजता और स्वयं स्फूर्ति इस महान कथा की कोमल और शान्त अभिव्यक्ति को गतिशील लय के साथ पाठकों के हृदय को सलग्न किए रहती है।

लेखक श्री बाबा प्रधान ने अपनी परिकल्पना के निबन्धन को बड़े बड़े उद्योगों तथा भाषा शैली और वाक्य खण्डों की आडम्बर भरी सजावट से संवारा नहीं है। प्रत्येक बात कितनी सरल और स्वाभाविक है। इसमें जो पात्र हैं उनमें से लगभग सभी पूर्ण रूप से सामान्य और विशेषत: विचारशील व्यक्ति हैं। सब मिलकर वे शिष्ट और स्वीकरणीय लोगों का संचय हैं। अतीन्द्रिय लक्ष्य और गुरुदेव की दैवी प्रभा के लिए वातावरण की सर्जना बड़ी लाभकारी है। मानवी जीवन में सामान्य और असामान्य दोनों ही लगता है आत्मीयता से समालीन हो रहे हों। समूचे प्रस्तुतीकरण को मनोरम और गूढ चित्र बनाने की दिशा में यह समालीनता अर्थपूर्ण है।

बाबा प्रधान ने अपने वैयक्तिक जीवन के रचनात्मक सकट की अभिव्यक्ति के रूप में यह पुस्तक लिखी है। ऐसे संकट के समय व्यक्ति को लक्षावधि पर्यायों में से किसी एक को परम चुनाव के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। हर गंभीर सकट के समय मृत्यु की निकटतम सीमा भी सयुक्त रहती हैं। रचनात्मक संकट से तात्पर्य यह है कि सर्वनाश का आह्वान स्वीकार लिया है किन्तु उसे नये आरम्भ में, नवीन पुनर्जन्म में बदल दिया है।

हमारी अपनी राख में से ही हमें हमारे अत्युच्च आदर्श, हमारे सच्चे ईश्वर की स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण करना है।

बाबा प्रधान ने इन पृष्टों में अपने कष्टों और संघर्षों का वर्णन किया है और शान्ति के लिए अपनी व्यूह रचना भी उन्होंने प्रकट कर दी – अपने गुरु के चरणों में संपूर्ण शरणागति।

उन्होंने विचार किया, और विचार किया, खोज की और खोज की, लड़ाई लड़ी, और लड़ाई लड़ी। उन्होंने अस्पष्टता और गहराई से अमुभव किया, उन्होंने दुर्बलता और कठोरता से इच्छा की। उन्होंने बालक जैसा अबोध खेल खेला और दानव जैसा काम भी किया। फिर आखिर में एक अद्भुत शोध का और परम आनन्द का क्षण प्राप्त हुआ। उन्होंने खोज कर ली कि उनके सारे तनावों और संघर्षों ने उन्हें उसी प्रारम्भिक बिन्दु पर लाकर छोड़ा है। चीनी दार्शनिक लाओत्से के समान बाबा प्रधान इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कीचड़ भरे जल को शुद्ध करने का सबसे अच्छा और वस्तुत: एकमात्र तरीका यही है कि उसे वैसा ही रख दिया जाये। बाबा ने अपने आपको एकदम अकेला छोड़ दिया। अपने को खुद की इच्छा की गुलामी से उन्होंने मुक्त कर लिया। उन्होंने अपनी सारी पुस्तकें जला दीं, प्रार्थनाए बद कर दीं, कांस्य-प्रतिमांए डुबो दीं और श्रेष्ठ मौन और शून्य में प्रवेश कर लिया। बस, तभी गुरुदेव उनके पास चले आये।

बाबा जो कुछ थे और जो कुछ उनके पास था वह सभी कुछ उन्होंने गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर दिया।

इस दूर अन्तर तक मार करने वाले अस्त्रों, ताप-नाभिकीय शस्त्रों और सारी पृथ्वी को व्यापने वाली अन्तरिक्ष यात्राओं के युग में, इसी प्रकार की कतिपय अन्य पुस्तकों के समान, इस पुस्तक के पास भी आधुनिक मानव के लिए एक आवश्यक संदेश है। पाश्चात्य पाठक वर्ग के लिए तो विशेष रूप से यह पुस्तक अत्यन्त सहायक और प्रेरणादायक सिद्ध होनी चाहिए।

क्या हम इस बारे में सचेत हैं कि आभ्यन्तरिक अन्तरिक्ष, जसा भी वह है उसकी जानकारी आज के मनुष्य के पास नहीं है।

इस प्राचीन भूमि में आन्तरिक अन्तरिक्ष का अनुसन्धान हुआ था और

आश्चर्यजनक मात्रा में उस पर सफलता भी प्राप्त हुई थी। आन्तरिक अन्तरिक्ष के यात्रियों, श्रेष्ठ वैज्ञानिकों और सिद्ध पुरुषों ने उन नियमों और सत्यों को, उन तथ्यों और वास्तविकताओं की खोज की थी जो मानव के विकास के लिए, उसकी आत्म-पूर्णता की प्रक्रिया और प्रगति के लिए कहीं अधिक सार्थक, कहीं अधिक मौलिक हैं। यह नयी बात लेकर आज के मानव का ध्यान आकर्षित करने के लिए बाबा प्रधान उत्सुक हैं। वे चाहते हैं कि मनुष्य जगत् अपनी दृष्टि अन्तर्मुख कर लें। विषयासक्त और सफल आधुनिक दैवीकरण में वे एक सुधार प्रस्तुत करना चाहते हैं। उन्होंने खुद खोज लिया कि 'समझ से परे की शांति' की प्राप्ति में ही सच्ची सफलता निहित है। वे उन परीक्षणों, आघातों और क्लेशों के दौर से गुजर चुके हैं जो प्रत्येक साधक और शोधक का मार्ग रोक रखते हैं। उन पर गुरुदेव की विशेष कृपा थी। बाबा ने परीक्षणों का भार स्पृहणीय आसानी से सहा। उन पर गुरुदेव की विशेष कृपा क्यों? मेरे मत में, और मुझे अपने मत को यहीं पर कहना चाहिए, अपने गुरु की इच्छा के प्रति बाबा प्रधान की आत्म-शरणागति सदैव कुछ अधिक शक्तिसम्पन्न, कुछ अधिक गुणवान् रही है।

इस पुस्तक में रेखाओं के मध्य और शब्दों के आसपास खोजने के लिए बहुत कुछ है। प्रिय बाबा के महान कृतित्व के लिए मैं सद्भावनापूर्वक उनका रहस्यमय कौतुक और प्रीतियुक्त प्रशंसा करता हूं। इस पुस्तक में समूचे रूप से बाबा प्रतिबिम्बित होते हैं। मैं प्रत्येक व्यक्ति को सिफारिश करूंगा कि वह निरन्तर उन्नति करने वाली अपनी आत्मा के प्रतिबिम्बित स्वरूप को समीप से देखने का यत्न करें।

ऐसा अनुभव अपने आप में एक पूर्णतया पुरस्कार स्वरूप अनुभव होगा।

डी० जी० विनोद

पहला भाग

पहला प्रकरण

मैं एक पर्वत पर चढ़ रहा था। धुंधला सा दृष्य था। मेरे चारों ओर गहरा कुहरा था और प्रात: काल के अवसर पर भी सूरज के दर्शन नहीं हो रहे थे। सब कुछ शान्त था। यदा कदा यह नीरवता दूरस्थ पक्षियों के कूजन से भंग हो जाती। कड़ाके की सर्दी होने पर भी मुझे कुछ गरमी महसूह हो रही थी क्योंकि आरोहण के समय सीधी चढाई के कारण मुझे परिश्रम करना पड़ रहा था। एक गीत गुनगुनाते मैं शिखर पर पहुंच गया।

अब सूरज उग आया था और चारों और का जादूभरा दृश्य देख मैं खुशी से नाच उठा। सचमुच वह एक अद्भुत दृश्य था। मेरा सारा श्रम सफल हो गया था। चारों ओर के पर्वत शिखरों पर स्वर्णिम हिममुकुट चढ़े थे और मैदानी जगहों पर सफेद बर्फ का आवरण था। जहां बर्फ पतली थी वहाँ सूरज के ताप से पिघल रही थी। ऐसी जगहों पर हरे रंग की बेलबूटी दिखा पड़ती थी। चारों ओर का रमणीय दृश्य, उदीयमान बाल रवि, मंद पवन और पूर्ण नीरवता ने सारा वातावरण इतना लुभावना बना दिया था कि कुछ क्षणों तक मैं उसी में खो गया। सर्दी होने पर भी मैं प्रसन्नचित्त था और मुझमें स्फूर्ति थी। समीपवर्ती दूसरे पर्वतशिखर पर चढ़ने के विचार से अनुप्रेरित होकर मैंने एक दो पग उस ओर बढ़ाये होंगे कि मुझे लगा जैसे मेरे पीछे कोई हलचल हो रही है। मेरी कल्पना थी कि मनुष्य समाज से दूर इस पर्वत श्रेणी में मैं बिल्कुल अकेला इस अतिरमणीय दृष्य का आनन्द ले रहा हूं जहाँ पर व्याघात की आशंका नहीं है। चौंक कर मैंने पीछे देखा तो मुझे लगा कि मैं अकेल नहीं हूं।

मुझ से केवल एक गज की दूरी पर ही एक भव्य व्यक्तित्व खड़ा था। उसका वक्ष:स्थल विशाल था और उसके अर्धस्फुटित अधरों पर बहुत ही मन मोहक मुस्कान थी। भगवे परिधान में वह एक संन्यासी था। मैंने अपने जीवन में इससे अधिक आकर्षक व्यक्तित्व नहीं देखा। मृदु, गुलाबी काया, अति सुन्दर मुखमण्डल, अपरिमितस्नेहभाव लिये दीप्त विशाल नेत्र और सुगठित शरीर में अति मानवी शक्ति सम्पन्नता का आभास। उसके मस्तक पर घने, सुनहरे के मुकुट थाशों का और रूद्राक्ष की मालाएं उसके शुद्ध गौरे कण्ठ को सुशोभित कर रही थीं। उसके दाहिने हाथ में एक बड़ा त्रिशूल था और उसने खड़ाऊं पहन रखी थीं। मैं छह फीट से अधिक

लम्बा था इसलिए हमेशा ही मैं अपने को लम्बा व्यक्ति मानता था किन्तु लगता था कि वह मुझसे से भी आठ इंच और अधिक लम्बा होगा ।

मेरा चौंककर पीछे मुड़ना और उसकी ओर देखते रहना कदाचित उसे मनोरंजक लगा हो । अपनी मधुर किन्तु दृढ़ वाणी में उसने कहा, "आगे न बढ़ना । वहाँ कोई रास्ता नहीं है । तुम जिसे हिम राशि के रूप में देख रहे हो वह केवल हजारों फीट गहरी, बर्फ से ढकी खाई मात्र है । तुम एक कदम भी आगे बढ़ाओगे तो तुम्हारा कुछ न बचेगा । तुम इस पर्वत श्रेणी से परिचित नहीं हो और बिना मार्गदर्शक के तुम्हारे जैसे लोगों का यहाँ पर घूमना खतरे से खाली नहीं है । सिर्फ मनोरंजन के निमित्त हो सकता है तुम्हें अपने जीन से भी हाथ धोना पड़े । अब तुम एक अच्छे बालक की भाँति मेरे पीछे आओ । मैं सही सलामत रूप से तुम्हें घर के रास्ते पर पहुंचा दूंगा । मेरे हृदय में कृतज्ञता भाव जग उठा और आदर के साथ नतमस्तक होकर मैंने कहा, "महाराज, आप जो कोई भी हों, मेरा जीवन बचा लेने के लिए मैं सदैव आपका कृतज्ञ रहूंगा ।" वह जोर से हंसा तो उसकी धवल दंतपंक्ति दिखाई दी । उसने कहा, "अब जल्दी करो, हमें देर हो चुकी है । बर्फ पिघल रही है, उतरते समय हमें कठिनाई होगी ।" बिना कुछ कहे, मैं उसके पीछे चलने लगा । नीचे उतरना आसान था किन्तु कहीं-कहीं पर पिघलती बर्फ के कारण पैर फिसलने का भय था । वह साधु पूरी सहजता से चल रहा था और दुर्गम स्थानों पर मेरी बार-बार सहायता कर रहा था । हम लोग काफी दूर तक चलकर एक हिमाच्छादित शिला तक पहुंचे । साधु ने सहजता से उसे पार किया । मैं भी कुछ कठिनाई से पार कर उसके पीछे चल सका ।

मैं हैरान हुआ जब मैंने देखा कि हम लोग एक गुफा के द्वार पर खड़े हैं । साधु ने हल्की सीटी बजाई । दो भयानक से दिखने वाले कुत्ते बाहर निकल आये और मनुष्य सी समझदारी से उसके चरणों पर झुक पड़े । साधु ने बड़े प्यार से अपनी बलिष्ठ भुजाओं में उन्हें उठाकर मुझसे कहा, "इनसे डरना नहीं, ये कुछ शरारती जरूर हैं लेकिन किसी का नुकसान नहीं करते ।" हमने गुफा में प्रवेश किया । वह गुफा विस्तृत सी सुखद और आरामदेह थी । अन्दर गरमाहट थी । ऐसा लग रहा था कि गुफा को बेदाग साफ रखने के लिए मेहनत की गई है । व्याघ्रचर्म और मृगचर्म सुरुचिपूर्ण ढंग से जमीन पर बिछाये हुये थे । एक कोने में ऊनी कम्बल ठीक तरह से लपेट कर रखे थे और दूसरे कौने में एक अग्निकुण्ड में आग जल रही थी । ऊपर के गवाक्षों में से गुफा में पर्याप्त रूप से प्रकाश आ रहा था परन्तु उनसे बर्फ या पानी नहीं टपकता था । एक मधुर, मोहक सुगन्ध सारे वातावरण में व्याप्त थी । सारे विन्यास में इतना उत्कृष्ट सामंजस्य था कि दैवी वातावरण की निर्मिति की गई थी । निरा नास्तिक भी इसें अस्वीकार न करता । मुझे बैठने के लिए [illegible] साधु ने कहा,

"तुम थके हो । कुछ देर विश्राम करो । तुम्हें कुछ देने का प्रयास करता हूं ।" उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया और मैं अभी कुछ जान भी नहीं पाया था कि उसने गरम दूध से भरा एक प्याला जैसे हवा में से उत्पन्न किया, प्याला मेरे सामने बढ़ाकर कहा, "यह दूध पी लो, इससे तुम्हारी थकावट मिट जायेगी । गाय के दूध से बढ़कर स्फूर्ति-दायक इस संसार में कुछ भी चीज नहीं है ।" मैं थका था और मुझे प्यास भी लगी थी अतः गरम दूध केवल अपेक्षित ही नहीं बल्कि भगवान्‌की देन सा था । वह सुस्वादु और रूचिकर था । मैंने सारा दूध पीकर खाली प्याला एक ओर रख दिया । साधु ने मुस्कराते हुये कहा, "देखो बेटे, यह गुफा तुम्हारी है और एक दिन तुम यहाँ पर आओगे ।" मुझमें कोई हीन भाव नहीं था किन्तु मेरे प्रश्नालु और वाचाल स्वभाव को साधु के श्रेष्ठ व्यक्तित्व ने किसी तरह शान्त कर दिया था । इसीलिए मैंने उसे कुछ नहीं पूछा हालांकि उसकी बात मैं समझ नहीं सका । मेरी प्रश्नाकुल मुद्रा देखकर उसने कहा, "मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम नहीं समझोगे किन्तु एक दिन सत्य को जान लोगे । घर जाने के लिए तुम्हें देर हो रही है अतः अब तुम्हें रोके रखना ठीक नहीं ।" फिर उसने कुत्तों को सम्बोधित किया, "इन्हें पहाड़ी से नीचे उतार देना ।"

"मैंने आदर से नतमस्तक होकर प्रणाम किया और मुझ पर किए अनुग्रह के निमित्त उसे धन्यवाद दे मैं कुत्तों के पीछे चलने लगा । सुबह बीत रही थी । आसमान में सूरज चढ़ आया था और बाहर की बर्फ तेजी से पिघल रही थी । एक शिला से बचते समय मेरा पैर फिसल गया । मैंने संभलने की कोशिश की किन्तु फिर भी मैं तेजी से नीचे गिरने लगा । निश्चित ही मैं मूर्छित हो गया हूंगा क्योंकि जब-जब मैंने आँखें खोलीं, मेरे चारों ओर अंधेरा था । मैंने अपना सिर टटोला, शायद चोट लगी हो । किन्तु मेरे सिर के नीचे तो कोई मुलायम चीज थी । मुझे आश्चर्य हुआ । अब मेरी सारी चेतना लौट आई और मैं उठ बैठा । ओह ! मैं तो अपने कमरे में आरामदेह बिस्तर पर बैठा हुआ था और मैंने नरम कम्बल ओढ़ रखा था । मैंने बत्ती जलाई और घड़ी की ओर देखा । सुबह के चार बजे का समय था । मुझे एक विस्मयकारी सपना आया था । उठने की जल्दी नहीं थी । मैंने बत्ती बुझाई और सोने का यत्न करने लगा । नींद आना असम्भव था । उस सपने के कारण मन में विचार रुकते न थे । घण्टे भर निरर्थक प्रयास करने के बाद मैं उठा, एक कप चाय बनाई और हाथ में रैकेट लेकर टेनिस कोर्ट की ओर चल दिया ।

दूसरा प्रकरण

मेरा जन्म एक सम्पन्न अभिजात परिवार में हुआ था। हमारे पास बहुत धन सम्पदा थी। हमारे परिवार के व्यक्तियों ने उच्च शिक्षा पाई थी। समाज और राज्य सत्ता में भी हमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। जन्म से हिन्दू ब्राह्मण होते हुए भी हम सुधारक कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। हमारे यहां धार्मिक कुलधर्म, कुलाचार इत्यादि का कठमुल्लों की तरह पालन नहीं होता था। आचरण तो दूर अक्सर हम तो रूढ़िगत मान्यताओं को भंग करने में ही अधिक आस्था रखते थे। जहां सम्भव होता, हम इनके प्रति अपनी अनुदारता भी प्रकट कर देते। हमारा यह दृढ़ विश्वास था कि धार्मिक आचारों, जातियों, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और असंख्य देवी देवताओं से भरे मन्दिरों पर ही हमारे सम्पूर्ण भारत की अवनति का और विशेषतः हमारी समग्र समाज व्यवस्था के अधःपतन का उत्तरदायित्व रहा है। इतनी अधिक मात्रा में हमारी हानि हुई कि केवल मुट्ठी भर विदेशी लोगों को हमारे महान् देश पर शासन करना और इस विशाल समुदाय को गुलामी की जंजीरों में जकड़ डालना संभव हो सका।

मेरे पिता अपनी प्रौढ़ावस्था में ब्राह्म समाज या इसी के समान किसी संस्था के सदस्य बने थे। शायद उस समय के चलन के कारण ऐसा हुआ था, किन्तु अपनी विचारधारा को उन्होंने दूसरों पर थोपने का यत्न नहीं किया। इस प्रकार जन्म से ही मैं नास्तिक था। मैंने कभी पूजा पाठ नहीं किया और मैं मन्दिरों में भी नहीं जाता था।

मेरे पिता विख्यात वकील थे। मेरी मां अच्छी पढ़ी लिखी थी। उनका विवाह महाविद्यालय में जब वे अध्यापन कर रही थीं तभी हुआ था। वे भी एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में पली थीं। पिता की इकलौती कन्या होने के कारण उनके पास काफी पैतृक सम्पत्ति थी। मेरे दो भाई थे। आयु में दोनों मुझ से बड़े थे और भली प्रकार बस चुके थे। सबसे बड़े भाई वकालत की उच्चपरीक्षा उत्तीर्ण कर वकालत कर रहे थे और उनसे छोटे डाक्टर थे। उन्होंने भी डाक्टरी में लन्दन महाविद्यालय से उच्च उपाधि प्राप्त की थी। दोनों बम्बई में थे और अपने-अपने पेशे में उनका बड़ा नाम था। इस प्रकार बड़ा सुखी और स्नेह भरा परिवार हमारा था। मैं पूना के डेकन कालेज में बी० ए० प्रथमवर्ष में पढ़ रहा था और छात्रावास में रहता था। यह विद्यालय हमारे लिये पारिवारिक संस्था जैसा था क्योंकि हमारे परिवार के सभी सदस्यों ने इसी विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी। खेलों की ओर मेरा लगाव कुछ अधिक था, इस कारण मुझे छात्रवृत्ति नहीं मिली। फिर भी मेरी गिनती बुद्धिमान छात्रों में थी। खेल के क्षेत्र में मेरा अच्छा नाम था। कितने ही खेलों में मुझे एक बड़े अच्छे खिलाड़ी के रूप में माना जाता। लम्बाई में मैं छह फीट से कुछ अधिक था। नित्य व्यायाम से शरीर सुगठित था और कुश्ती लड़ना भी मैं सीख चुका था।

टेनिस कोर्ट में दो 'सैट' खेलकर मैं कमरे पर लौट आया और नाश्ता लेकर महाविद्यालय गया। अपने नित्य के कार्यक्रम करते हुए भी मैं सुबह के सपने को, विशेष रूप से साधु और उसकी गुफा को भूल नहीं पा रहा था। अगले सप्ताह हमें अंतर्विश्वविद्यालय क्रिकेट चैम्पियन-शिप का अन्तिम मैच खेलना था, इसलिए दोपहर को मुझे क्रिकेट के अभ्यास के लिए जाना था। लेकिन सिर दर्द का बहाना बना कर मैंने छुट्टी पा ली। मैं शरीर से स्वस्थ था पर मन में अशांति थी और किसी काम में मन नहीं लग रहा था। अतः मैंने सोचा कि कहीं दूर घूमने चला जाऊं या संभव हो तो नाव में सैर करूं।

मैं नदी की ओर मुड़ रहा था कि पीछे से मुझे किसी ने पुकारलिया। वह मेरा मित्र रमेश था। हम दोनों साथ चलने लगे। रमेश ने कहा, "माधव, तुम इस परिधान में कैसे ? क्रिकेट खेलने नहीं गये ? किसी खास काम से निकले हो या किसी से मिलने जा रहे हो ?" मैंने कहा, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। आज खेलने की इच्छा नहीं है इसलिए सोचा कि कहीं दूर घूमने चला जाऊं या फिर नावहो तो उसमें बैठ लूं।" रमेश बोला, "अपनी नाव तो अभी ठीक हो रही है। ठीक होने में एक सप्ताह लग जायेगा। मैं अभी शहर जा रहा हूं। आज किसी विख्यात स्वामी का भारत सेवक समाज में भाषण है। विषय है—हिन्दू दर्शन का समन्वय। मैं वहीं पर जा रहा हूं तुम्हें कोई खास काम तो है नहीं, मेरे साथ क्यों नहीं चलते ? अच्छा लगा तो बैठेंगे नहीं तो जल्दी उठ लेंगे।"

रमेश मेरी ही कक्षा में पढ़ता था। वह दर्शन का विद्यार्थी था और मैं अर्थशास्त्र का। वह प्रथम श्रेणी में आता था। उसे कई छात्रवृत्तियां भी मिलती थीं। वादविवाद प्रतियोगिताओं में वह अच्छा बोल लेता था और उसके विनोदी और अच्छे स्वभाव के कारण उसे सभी चाहते थे। हम दोनों की रुचि और स्वभाव भिन्न-भिन्न होने पर भी हम दोनों घनिष्ठ मित्र थे। मैंने सोचा, नदी के किनारे अकेले घूमते रहने की अपेक्षा उसके साथ जाने से मन प्रसन्न होगा। मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता कि मेरे मन में यह भी विचार था, कहीं वक्ता स्वामी और मेरे स्वप्न के साधु में साम्य तो नहीं है।

हमारे वहां पहुंचने से पहले ही भाषण कक्ष भर गया था। बड़ी कठिनाई से हमें थोड़ी जगह मिली, जहां से हम वक्ता को देख सकते थे और उसका भाषण सुन सकते थे। परिचय आदि की औपचारिकताएं पूर्ण होने पर स्वामी जी भाषण देने खड़े

हुए। स्वामी जी को देखकर मैं निराश हो गया, क्योंकि उनमें और मेरे स्वप्न के साधु में कुछ भी साम्य नहीं था। स्वामी जी अच्छे वक्ता थे और विषय पर उनका पूर्ण अधिकार है ऐसा लगता था। जगत्गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा सुयोग्यता से प्रतिष्ठापित अद्वैत (संन्यास) सिद्धान्त का अमोघत्व प्रतिपादित करते समय सहजता से उन्होंने प्रचुर मात्रा में अनेक भारतीय और पाश्चात्य तत्वज्ञानियों के प्रमाण प्रस्तुत किये। स्वामी जी केवल अद्वैत सिद्धान्त के व्याख्याता नहीं थे। उत्कृष्ट तर्कों के आधार पर उन्होंने इतनी योग्यता से उस सिद्धान्त को प्रमाणित किया कि प्रत्येक श्रोता को उसके पूर्ण सत्य होने का दृढ़ विश्वास हो गया। रमेश भाषण सुनकर बहुत अधिक प्रभावित हुआ था। उसने कहा कि स्वामी जी का भाषण सुनना बड़े सौभाग्य की बात थी। दर्शन मेरा विषय न होने के कारण मैं भाषण अधिक मात्रा में समझ न सका। भाषण समाप्त होने पर वह अपने किसी रिश्तेदार से मिलने चला गया और मैं अकेला रह गया। मनोरंजन के लिए मैंने सोचा कि कोई सिनेमा ही देख लूं। मार्ग में कितने ही सिनेमाघर थे, किन्तु अच्छी फिल्म एक भी नहीं थी जिसे मनोरंजन कहा जा सके। सिनेमा मालिकों और उनके साथ दर्शकों को भी उनकी छिछली अभिरुचि पर कोसता मैं लगभग नौ बजे के समय अपने कमरे पर लौट आया। मैं दरवाजा खोल रहा था कि छात्रावास का सेवक भागते हुए मेरे पास आया और उसने एक नीला लिफाफा मेरे हाथ में थमा दिया।

वह तार था। कुछ उत्सुकता और कुछ खिन्नता से मैंने जल्दी से उसे खोला। न मालूम क्यों, तार खोलते समय मैं अक्सर कुछ उदास हो जाता हूं। तार में क्या है यह पता नहीं रहता और संदेश शीघ्र पहुंचाने की आवश्यकता जानकर ही उदासी आ जाती होगी ऐसा मुझे लगता है। मैंने सांस छोड़ी। पिता जी ने तार दिया था। वे प्रातःकाल पूना आ रहे थे इसलिए मुझे स्टेशन पर बुलायागया था। उसी समय भोजन की आखिरी घंटी बज उठी। जल्दी से मैं भोजन-गृह गया। मुझे भूख नहीं थी किन्तु रमेश मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। वह भाषण की बड़ी प्रशंसा कर रहा था। स्वामी का दर्शन के विषय में अगाध ज्ञान देखकर वह आश्चर्य चकित था। भोजन के बाद मैं कमरे में आया। सोचा कि जल्दी सो जाऊं ताकि पिछली रात की नींद भी पूरी हो जाये। ठीक समय पर स्टेशन पर पहुंचने के लिए मैंने पांच बजे का अलार्म लगा दिया। मैं बत्ती बुझाने वाला था कि दरवाजे पर टिक् टिक् की आवाज हुई। थोड़ी अनिच्छा से ही मैंने दरवाजा खोला। क्रिकेट टीम का कप्तान और दो अन्य खिलाड़ी अन्दर आये। उन्होंने मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। अगले सप्ताह होने वाले क्रिकेट मैच के विषय में हमने काफी बातचीत की। क्योंकि यह हमारे विद्यालय की प्रतिष्ठा का प्रश्न था इसलिए प्राचार्य समेत सभी लोग इस मैच में रुचि रखते थे। खेल के अभ्यास में मैं था नहीं इसीलिए प्राचार्य जी ने विशेष रूप से मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछने के लिए कप्तान को भेजा था। लगभग ग्यारह बजे मैं अपनी शय्या पर लेट सका। गहरी नींद लग पायेगी या नहीं, इसके बारे में मन में संदेह था किन्तु जैसे ही बत्ती बुझाकर तकिये ठीक किये, मुझे नींद आ गई होगी।

तीसरा प्रकरण

मैं हड़बड़ाकर उठा। पांच बज चुके थे और अलार्म बज रहा था। मुझे जरूर गहरी नींद लगी थी क्योंकि तभी जगने पर उत्साह और ताजगी का अनुभव हो रहा था। एक कप चाय लेकर मैं स्टेशन के लिए चल पड़ा। हमारा छात्रावास शहर से और रेलवे स्टेशन से भी काफी दूर था, इसलिए इतनी सुबह वहां पर वाहन मिलना संभव नहीं था। अभी समय काफी था और दूर तक घूमने जाना मुझे हमेशा से ही अच्छा लगता रहा है। स्टेशन पहुंचने पर पता लगा कि गाड़ी चालीस मिनट देरी से चल रही है। इसलिए समाचारपत्र खरीदने के लिये मैं पास की दूकान पर गया। मैंने टाइम्स आफ इन्डिया लिया। पैसे देते समय एक पुस्तक की ओर मेरा ध्यान गया। शीर्षक था---भारत के योगी। इस प्रकार की पुस्तकें साधारणतः मुझे पसन्द नहीं आतीं किन्तु न जाने क्यों मैंने वह पुस्तक खरीद ली। मुझे लगता है कि मेरा अवचेतनमन काफी क्रियाशील था और बलात् दबाई गई इच्छा ने मुझे पुस्तक खरीदने के लिए बाध्य कर दिया। पुस्तक और समाचार पत्र लेकर मैं प्रतीक्षालय पहुंचा। प्रतीक्षालय खाली था और मैं उसमें अकेला ही था। कुली ने बताया कि इतनी सुबह पूना से चलने वाली कोई गाड़ी नहीं है, इसलिए दिन में खचाखच भरा रहने वाला प्रतीक्षालय इस समय खाली है।

वहाँ गोल मेज पर मैंने समाचार पत्र रखा और कुर्सी आगे खींचकर मैं पढ़ने लगा। उसे पढ़ लेने के बाद मैं पुस्तक खोलने वाला था कि मुझे लगा, कोई आदमी दरवाजे पर खड़ा है। वह गोखले काका का ड्राईवर हरी था। हरी ने मुझ से कहा, "मुझे लगा था कि आप आएंगे। मैं आपके पिता जी को लेने के लिए आया हूं। मालिकने कार भेजी है।"

गोखले काका पूना के प्रसिद्ध वकील थे और अपने बचपन से ही मेरे पिताजी के वे परम मित्र थे। उनकी वकालत बड़ी अच्छी चलती थी। मेरे पिताजी और वे साथ-साथ पढ़े थे। वे स्नातक भी एक साथ हुए। एक ही पेशा होने के कारण कई मामलों पर दोनों ने साथ मिलकर काम किया था। हमारे जन्म से ही उन्हें हमारे

परिवार में गोखले काका के नाम से जाना जाता था। दोनों परिवारों में औपचारिकता जैसी कोई चीज नहीं थी। पूना में हम उन्हीं के यहां ठहरते थे। मैं छात्रावास में रहता था, फिर भी मुझे हमेशा ही, विशेषकर छुट्टी के दिन उनके यहां भोजन करने जाना पड़ता था।

गाड़ी आने की सूचना देने वाली घंटी बजी। हम जल्दी से प्लेटफार्म पर गये। गाड़ी शान से प्लेटफार्म पर खड़ी हो गई। प्लेटफार्म पर खड़े लोग अपने अपने लोगों को ढूंढने लगे। मेरे पिता व्यवस्थित वेष भूषा में डिब्बे के दरवाजे पर शांति से खड़े थे। हमें देखकर वे मुस्कराए। हम उनके डिब्बे की ओर दौड़े। वे नीचे उतरे और हरी ने उनका सामान उठा लिया। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने ममता से मेरी पीठ पर हाथ रखा और पढ़ाई के बारे में पूछताछ की। उनकी सेहत अच्छी थी और चेहरे पर हमेशा जैसी मुस्कान। आयु में पचास वर्ष से ऊपर होने पर भी उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। चाल में अकड़ थी और रहन-सहन में एक प्रकार की शान। आपस में बातें करते हुए हम स्टेशन से बाहर आये। अब तक हरी भी कार लेकर आ चुका था। उसमें बैठकर हम गोखले काका के बंगले की ओर चल पड़े।

गोखले काका सुबह की सैर से लौटे ही थे। काकी जी के साथ वे बाहर आ गए। पिता जी के साथ थोड़ी देर रुक कर फिर मैं श्रीकान्त और मालती को देखने लगा था। उनकी एक ही लड़की थी—मालती। श्रीकान्त चाय पीने नीचे आ रहा था और मालती भी मेरी आवाज सुनकर मुस्कराती हुई अपने कमरे से बाहर आ गई थी। मेज पर गरम चाय और नाश्ता हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। हम लोग कुछ हट कर बतियाने लगे ताकि बड़े लोगों की बातचीत में बाधा न हो।

गोखले काका के दो पुत्र थे और एक कन्या। उनका बड़ा लड़का डाक्टरी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत गया था लेकिन लंदन विश्वविद्यालय से एम० डी० की उपाधि ग्रहण करने के बाद भी वह भारत नहीं लौटा। वह वहीं बस गया। वहाँ उसका काम बड़ी अच्छी तरह चल रहा था। श्रीकान्त इन्टरमिडियेट में पढ़ रहा था और मालती मैट्रिक में। श्रीकान्त एक लम्बा और तगड़ा नौजवान था, किन्तु उसका स्वभाव मिलनसार न होने से वह लोकप्रिय नहीं था। वह मेधावी तो था किन्तु उसके साथी उसे कुछ घमंडी मानते थे। किन्तु हमारे साथ वह खुले मन से बातचीत करता था। मालती का सौन्दर्य कमल अद्भुत रूप से खिल रहा था। उसकी शरीरयष्टि कमनीय थी और उसकी सेहत भी अच्छी थी। वह यौवनावस्था की कगार पर थी। वह कुछ वाचाल और हंसमुख स्वभाव की थी। कुशाग्र बुद्धि की क्षमता होने के साथ-साथ वह कला कौशल में भी काफी प्रवीण थी।

चाय समाप्त होने पर, पिताजी ने मुसे कहा, "कोर्ट के काम से निबट कर मैं तुम्हारे कमरे पर आ रहा हूँ।" गोखले काका से पूछकर मैं छात्रावास चला आया।

दोपहर के बाद मैं कमरे पर लौटा तो पता लगा कि पिताजी और गोखले काका बाहरी कक्ष में प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं वहाँ जाने वाला था किन्तु वे लोग इधर आने लगे। पिताजी ने कमरे में आते ही चारों ओर नजर दौड़ाई। दोनों ने मेरी पढ़ाई के बारे में पूछा। मेरी सेहत देखकर वे खुश थे। मैं उनके साथ चलने के लिए कपड़े बदल रहा था कि पिताजी ने मेज पर पड़ी पुस्तक उठा ली। उन्होंने शीर्षक पढ़ा—भारत के योगी। उन्होंने पूछा, "यह पुस्तक यहाँ पर कैसे आई?' मैंने बताया कि मैंने सुबह उसे खरीद लिया था। जल्दी में मैंने यह बता दिया कि मैंने उसे अभी तक खोला भी नहीं है, तो वे हंस पड़े। कार में बैठकर हम लोग गोखले काका के बंगले पर पहुँचे। सायंकाल छह बजे समय था। भोजन में काफी देर थी। इस समय श्रीकान्त तो घर में मिलता नहीं किन्तु मालती जरूर वायलिन बजा रही होगी। इसी समय सेवक ने बताया कि कोई मिलने आया है। इसलिए मैं मालती से मिलने उधर जाने लगा। अपेक्षानुसार श्रीकान्त घर में नहीं था। काकीजी भी कहीं बाहर गई थीं इसलिए मालती मेहमान के साथ बातचीत कर रही थी। मैं श्रीकान्त के कमरे में जाकर आराम से बैठ गया। मैं पुस्तक पढ़ने वाला था कि पिताजी ने मुझे बुलाया। मैंने देखा कि पिताजी के साथ जो व्यक्ति आराम से बैठकर गपशप कर रहा था वह और कोई नहीं बल्कि वही स्वामी थे जिन्होंने भारत सेवक समाज में भाषण दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

चौथा प्रकरण

स्वामी जी के साथ मेरे पिताजी का अच्छा परिचय था। पिताजी ने मेरा भी परिचय स्वामी जी से करा दिया। स्वामीजी अच्छे वक्ता थे और सभी लोग ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रहे थे। चर्चा में कोई गम्भीर विषय नहीं था केवल इधर-उधर की बातें चल रही थीं। मैंने स्वामीजी से कहा कि आपका कल वाला भाषण मैंने सुना। उन्होंने पूछा, "तुम्हें कैसा लगा?" मैंने तत्परता से कहा, दर्शन शास्त्र मेरा विषय नहीं है इसलिये मुझे जितनी मात्रा में उसे समझना चाहिये था, उतनी मात्रा में मैं समझ नहीं पाया।" पिताजी और अन्य सभी लोग आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे। कदाचित् उन्होंने नहीं सोचा था कि मैं भाषण सुनने जा भी सकता हूं। इसलिये मैंने स्पष्टीकरण किया कि मैं रमेश के साथ भाषण सुनने गया था। अब तक काकीजी लौट आयी थीं वे भी बातचीत में शामिल हुई।

पिताजी ने स्वामी से पूछा, "योग के विषय में आपके निजी अनुभव क्या

हैं ? अलौकि कक्तयों की बातें अक्सर कही जाती हैं। क्या इसमें कुछ सत्य है भी ? क्या आपकी मुलाकात किसी ऐसे व्यक्ति से हुई है जिसने साक्षात्कार किया हो, पूर्णत्व को पा लिया हो ?''

स्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा, ''अपनी जवानी में मैं भी नास्तिक था और ईश्वर में या किसी पूजा पाठ में मेरा विश्वास नहीं था। विश्वविद्यालय में मैं एक अति मेधावी छात्र के रूप में जाना जाना जाता था। स्नातकोत्तर उपाधि लेने के बाद प्राध्यापक के पद पर मेरी नियुक्ति हुई। अचानक गुरुदेव से भेंट हुई। गुरुदेव पूरे सन्त हैं। गुरुदेव ने मेरा जीवनपथ पूरी तरह से बदल दिया। मैं केवल इसलिए उनकी प्रशंसा नहीं कर रहा हूं कि वे गुरु हैं; वे उन कतिपय महानुभावों में से एक हैं जिन्होंने साक्षात्कार किया है, पूर्णत्व को पा लिया है। स्वाभाविक ही उनके पास अलौकिक शक्तियाँ हैं किन्तु इस बात को विशेष उपलब्धि के रूप में वे नहीं मानते। यह तो मेरा बड़ा भारी सौभाग्य था कि उन्होंने मुझे अपना लिया क्योंकि सामान्यत: वे किसी को भी अपना शिष्य बनाते नहीं हैं। मैंने विवाह नहीं किया और किसी बन्धन में नहीं बंधा। दस वर्ष की आयु में ही मेरे माता-पिता गुजर गए थे। पिताजी की कुछ पूंजी बची थी, उसीसे मैंने अपनी शिक्षा पूरी की। अपना सांसारिक जीवन त्यागकर जब मैंने संन्यास ग्रहण किया तो किसी को परेशानी नहीं हुई। मैं गुरुदेव के साथ कई वर्षों तक रहा और उनके आदेशों और उनकी बताई विभिन्न क्रियाओं का पालन करता रहा। अब मैं सुखी हूँ और पूर्ण रूप से शांत हूँ। मुझे कोई आसक्ति, आकांक्षा और इच्छा नहीं है इसलिये निराशा, विफलता और दुख भी नहीं। शारीरिक व्याधियाँ तो टलती नहीं किन्तु उनसे मेरी मन:शान्ति भंग नहीं होती। मेरा कोई ठिकाना नहीं, मैं सतत घूमता रहता हूं। मैं पूना कई बार आया हूँ और यहां पर मेरे काफी परिचित लोग हैं। इस बार कुछ लोगों की प्रार्थना पर, मैं भारत सेवक समाज में भाषण देने आया था। कल सुबह मैं बम्बई जा रहा हूं। इसलिए जाने से पूर्व आप लोगों से मिलने यहां आया। यहां आप से भेंट होने की आशा मुझे नहीं थी। आप से और आपके सुपुत्र से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।'' मेरे पिताजी ने कहा, ''आप कभी अहमदनगर पधारिए और कुछ दिन हमारे साथ रहिए।'' स्वामी जी ने कहा,''अगली बार जब मैं दक्षिण जाऊंगा तो उस समय आपके यहां जरूर आऊंगा।''

मैंने कहा, ''क्षमा करें, किस बात के कारण आपको ईश्वर में विश्वास उत्पन्न हुआ ? आप हिन्दुस्तान के कोने-कोने में उद्देश्यहीन भ्रमण करते हैं, क्या इसका कोई सम्बन्ध उस बात से है ? आपके गुरूदेव ने एक स्थान पर रहने के लिए आपको मना किया है क्या ? क्या आपके पास भी अलौकिक शक्तियां हैं। यदि आप जैसे सुशिक्षित और चरित्र सम्पन्न व्यक्तियों ने उन्हें न अपनाया होता तो मैं उनको

निरर्थक ही मानता, किन्तु तब भी मैं उसका महत्व नहीं समझ पा रहा हूं। इसे समय और कीमती शक्ति का अपव्यय ही मानता हूँ।'' स्वामी जी जोर से हंस पड़े। उनकी धवल दंत-पंक्ति झलक उठी। उन्होंने कहा, ''इस बात को समझने के लिये तुम अभी छोटे हो। मुझ पर विश्वास रखो कि सहस्रों वर्ष पूर्व से जो निरंतर प्रयास होते रहे हैं, वर्तमान योग उसी का फल है। वह कोई कल्पना तरंग अथवा मनगढ़ंत बात नहीं है। योग को समझे बिना उस पर दोषारोपण करना मिथ्या अभिमान मात्र है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि जीवन में शांति, सुख पाने के लिये समग्र मानव समाज कठोर परिश्रम कर रहा है। अपने चारों ओर का जीवन देखो। वहां तुम्हें संघर्ष के अलावा कुछ भी दिखाई पड़ता है ? सारी शक्ति लगी है कुछ बनने में, धनार्जन में, और आकांक्षाओं के पीछे दौड़ने आदि में। शांति, सुख और संतोष कहीं भी नहीं है। इसलिये साधु सन्तों और सत्पुरुषों के वचनों का पालन करने से शांति और सुख की प्राप्ति कैसे संभव है, इस प्रकार दोषारोपण करने से पूर्व किसी को गंभीरता से सोच लेना आवश्यक है। तुम समस्याओं की गम्भीरता तब तक नहीं जान सकते जब तक तुम्हारा इनसे पाला नहीं पड़ता। तुम उसकी निन्दा कर सकते हो किन्तु तभी जब तुम्हें दृढ़ विश्वास हो कि उसका कोई उपयोग नहीं है, यह सब व्यर्थ है। तुम जैसे बुद्धिमान व्यक्तियों को गूढ़ विषयों की गहराई में जाकर सत्य की खोज करनी चाहिये और समाज के और समाज के मार्गदर्शन के लिए उसका प्रतिपादन करना चाहिए। तुम्हारे अपने अनुभवों द्वारा ही तुम्हारे तर्कों की पुष्टि होनी चाहिए। दूसरों के मतों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।'' काकी जी बोलीं, ''स्वामी जी, अगली बार आप कुछ दिन हमारे साथ रहें और इस बारे में आपके वैयक्तिक अनुभव हमें बताएं।'' देर हो रही थी। स्वामीजी को भी किसी से मिलना था। इसलिए वे उठ गए। गोखले काका ने हरी से कहा कि स्वामीजी को उनके गन्तव्य स्थान पर छोड़ देना। हम सभी लोग खड़े हो गए और उनके साथ बाहर आ गए।

पांचवा प्रकरण

समय बीतता रहा। एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर मैं महाविद्यालय से बाहर निकला। पिता जी अब वृद्ध हो चले थे और उन्होंने वकालत छोड़ दी थी। मेरे भविष्य के बारे में परिवार में भिन्न-भिन्न विचार धारायें थीं। मेरे दोनों भाई चाहते थे कि मैं उच्च शिक्षा लेने के लिये इंग्लैंड में आक्सफोर्ड या किसी दूसरे विश्वविद्यालय में प्रवेश लूं। अपना निर्णय पिताजी ने मुझ पर ही छोड़ दिया था। माताजी का

कहना था कि मैं कोई भी निर्णय लूं, वे सन्तुष्ट रहेंगी। खुद मैं किसी निर्णय तक नहीं पहुंच सका। इसका मुख्य कारण यह था कि गत तीन चार वर्षों से मेरी रुचि दार्शनिक विषयों में बढ़ती जा रही थी और मेरी उत्कट इच्छा थी कि तत्व-मीमांसा और योग-विद्या के रहस्य की मैं जांच कर लूं। इस बीच स्वामीजी के साथ मेरी घनिष्टता भी बढ़ गई थी। विभिन्न प्राचीन और अर्वाचीन, भारतीय और विदेशी दार्शनिकों द्वारा लिखी गई अनेक दार्शनिक पुस्तकें भी मैंने पढ़ ली थीं। संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करने में और प्राचीन दार्शनिकों द्वारा लिखी पुस्तकें पढ़ने में मुझे काफी समय देना पड़ा था। सच कहूं तो मुझ में एक प्रेरणा सी उत्पन्न हो गई थी जो बलात् किसी अनपेक्षित और अज्ञात वस्तु की ओर मुझे धकेल रही थी। शारीरिक दृष्टि से मैं स्वस्थ था, नियमित रूप से व्यायाम करता था और मानसिक दृष्टि से भी अनुद्विग्न ही था। शासन की ओर से सेवा कार्य के लिए कितने ही प्रस्ताव थे। विद्यालय से भी प्रस्ताव था कि मैं वहीं पर प्राध्यापक बन जाऊं। तथापि मैंने तय कर लिया था कि अभी कुछ समय तक स्वयं को किसी गम्भीर काम में बांधकर नही रखूंगा और जहां पर सम्भव हो वहां पर स्वामीजी के साथ, नहीं तो अकेले ही सारे हिन्दुस्तान में घूम लूंगा। विवाह सम्बन्ध के प्रस्ताव भी थे किन्तु मैंने उनके बारे में जरा भी नहीं सोचा। मेरा विचार था कि इतनी जल्दी संसार बसाना जल्दबाजी होगी। गोखले काका ने पिताजी के सामने प्रस्ताव रखा था कि मेरी शिक्षा समाप्त हो चुकी है इसलिए मुझे उनकी कन्या के साथ विवाह कर लेना चाहिये। मालती अब एक सुन्दर नवयुवती हो गई थी। वह बी० ए० के अन्तिम वर्ष में पढ़ रही थी। श्रीकान्त ने वकालत की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली थी। गोखले काका श्रीकान्त को बार एट ला की उपाधि लेने के लिए विलायत भेजने के पक्ष में नही थे। काकी जी तो बिलकुल नहीं चाहती थीं कि श्रीकान्त विलायत जाए क्योंकि उन्हें भय था कि अपने बड़े भाई के समान श्रीकान्त भी वहीं रह जाएगा। गोखले काका के प्रस्ताव की जहां तक बात थी, उनके परिवार अथवा कन्या के विरुद्ध मुझे या मेरे माता-पिता को कुछ भी कहना नहीं था। पिताजी को लिखे एक पत्र में गोखले काका ने कहा था, "दर्शन में माधव की रुचि बढ़ती जा रही है यह चिन्ता की बात है। स्वामीजी के साथ उसकी घनिष्टता बढ़ गई है। वह स्वामीजी के पदचिन्हों का अनुसरण कर सकता है और एक दिन संन्यासी भी बन सकता है।" मेरे पिता फिर भी चिन्तित नहीं थे। पत्र के उत्तर में उन्होंने लिख दिया, "माधव अब समझदार हो चुका है, भविष्य का अपना जीवन पथ निर्धारित करना अब उसीका काम है। मैंने उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा दी है और उसके शेष जीवन के लिए अच्छा प्रबन्ध कर रखा है। मैंने पिता का कर्तव्य समुचित रूप से पालन किया है, इसका मुझे सन्तोष है। अपनी जीविकोपार्जन का आधार और जीवन क्रम निर्धारित करने का काम माधव

को ही करना है। जब तक वह जीवन में व्यवस्थित नहीं होता तब तक उसे विवाह करने के लिए कहना लाभप्रद नहीं होगा। यदि हम कहते भी हैं, तो वह किसी ऐसे प्रस्ताव के लिए अपनी सम्मति नहीं देगा। उसकी रुचि दर्शन में बढ़ रही है, इसे मैं जानता हूं किन्तु मैं नहीं सोचता कि वह संन्यासी बनेगा। यदि मान भी लें कि आखिर में स्वामीजी के पदचिन्हों का अनुसरण करने का निर्णय वह कर ही लेता है, तो उसे विवाह करने के लिए कहना हमारी मूर्खता होगी। इकसे मालती का जीवन वरवाद होने की संभावना है। मेरे पुत्र के लिए या हमारे पारिवारिक सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए मालती को अपने जीवन को दांव पर लगाने के लिए कहना मैं पाप समझता हूं। माधव अभी कुछ नहीं कर रहा है, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि ऐसी आलस्य भरी जिन्दगी उसके स्वभाव से मेल नहीं खाती। कुछ ही दिनों में वह दक्षिण भारत का प्रवास करने वाला है। मुझे विश्वास है कि यह प्रवास उसके लिए अच्छा रहेगा और वह अपने भविष्य के बारे में निर्णय भी कर लेगा। अभी मालती को भी स्नातकोपाधि लेने में एक वर्ष का समय है। इसलिए जल्दबाजी करने से लाभ नहीं होगा।"

दक्षिण भारत का मेरा प्रवास सफल रहा। मैंने कई स्थल देखे जो ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय और दर्शनीय थे। हिन्दुस्तान का यह हिस्सा बड़ा ही प्यारा है। यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होने पर भी नैसर्गिक सम्पदा से भरपूर है। यहां विशाल वनोपवन, महान् नीलगिरी पर्वत माला, विस्तृत मैदान और रमणीय सागर तीर हैं, जो दूसरे क्षेत्र की किसी कमी को पूरी करते हैं। एक शिकार पार्टी के साथ मेरा परिचय हो गया और जंगल के सनसनीखेज वातावरण में मैं खूब रम गया। कहीं-कहीं टैनिस बैडमिन्टन खेलने का अवसर भी मिलता। समय कैसे बीता, मुझे पता भी नहीं लगा। अब मैं मैसूर में था। मैसूर राजधानी है। अपने सुन्दर महलों; सुव्यवस्थित विशाल बागों और राजमार्गों के कारण उस नगर की अपनी ही गरिमा है। प्रदेश में सिल्क, कलात्मक नक्काशी की हुई काठ की वस्तुएं और चन्दन आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वामीजी से मिले बहुत समय बीत चुका था। उनसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। सतत प्रवास करते थे इस कारण वे किस स्थान पर मिलेंगे इसका पता लगना बड़ा कठिन था। एक दिन शाम के समय में घूम कर लौट रहा था कि मार्ग में उनसे भेंट हो गई। मैं सुखद आश्चर्य में डूब गया। मुझ से मिलकर वे भी बड़े प्रसन्न थे। उनका स्वास्थ्य हमेशा की तरह अच्छा था। उन्होने कहा, "मैं आज सुबह ही मैसूर आया हूं। तुम से मिलने का प्रयास कर रहा था।" मैंने पूछ लिया, "मैं मैसूर में हूं यह आपको कैसे मालूम?" उत्तर में वे केवल मुस्करा दिये और मैं समझ गया। उन्होंने पूछा, "तुम कहां ठहरे हो? अपने प्रवास का कोई

निश्चित कार्यक्रम बनाया है ?' मैंने उत्तर दिया, "मैं केवल घूमने के लिये निकला हूं। ऊटी होकर रमणीय नीलगिरी पर्वतमालाओं से नीचे उतरने के बाद मैसूर आया हूं और अब मद्रास जाने का विचार है। उन्होंने अपने स्थान का पता मुझे दिया और सुबह मिलने के लिये कहा। वे किसी मन्दिर में ठहरे थे। मैं प्रातः वहां पहुंचा। वह एक विशाल शिव मन्दिर था। दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला अनुसार उसे बनाया गया था। उसमें पाषांण के कई तोरण थे और मन्दिर के चारों ओर वड़ा सा बरामदा था। अनेक तीर्थयात्री और साधु-सन्यासी वहां पर टिके हुए थे। मन्दिर और आसपास का भाग बेदाग साफ था। स्वामी जी ने मुझे बताया कि उनके गुरुदेव रामेश्वरम् आ रहे हैं इसलिये वे वहीं पर जा रहे हैं। सहज भाव से उन्होंने कहा, "तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ रामेश्वरम् चलो, तुम्हें भी गुरुदेव के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा और रामेश्वरम् भी देख लोगे। रामेश्वरम् बड़ा दर्शनीय है।" अब तक स्वामीजी से मुझे बड़ा स्नेह हो गया था। वे सदैव ही बड़ी श्रद्धा से अपने गुरुदेव के बारे में बोला करते थे। स्वाभाविक ही उनके गुरूदेव को देखने की उत्सुकता मुझे थी। मुझे स्वामीजी के मधुर सहवास की भी इच्छा थी इस लिये मैंने सोचा कि अभी इस अवसर से लाभ उठा लूं, आते समय मद्रास देख लूंगा।

मैसूर में दो दिन ठहरकर स्वामीजी रामेश्वरम् जाने वाले थे। मैं भी इन दिनों सारा समय उन्हीं के साथ विभिन्न स्थलों पर जाने और उनके परिचितों से मिलने में व्यस्त रहा। अपने गुरू के विषय में उन्होंने अनेक बातें मुझे बताईं। बताते समय वे प्रसन्न मुद्रा में होते। मुझे लगता है, गुरुदेव से मिलने के लिये उनके मन में बड़ी उत्कंठा थी। इसलिए भेंट का अवसर आने पर उनका आनंदित होना स्वाभाविक था। अपने गुरू के प्रति स्वामीजी का आदर और प्रेम भाव तो मैं समझ सकता था। किन्तु मैं समझ नहीं पाता कि उन जैसा सुरिक्षित, सुसंस्कृत और अनुभवी व्यक्ति अपने गुरू को लगभग ईश्वर के समान, अलौकिक कैसे मान लेता है ? इस समय तक दर्शन और तत्वभीमांसा के विषयों का अच्छा ज्ञान हो गया था। फिर भी मैं इस प्रकार की मनोदशा में नहीं था कि यह मान लूं कि कोई मनुष्य होकर इतनी उच्चावस्था को पा सकता है। मैंने कई बार अपने विचार स्वामीजी के सामने रखे थे। किन्तु वे यही कहते कि तुम्हें तब तक धीरज रखना चाहिए जब तक तुम्हें खुद को अनुभव न हो ताकि तुम अपनी धारणा बना सको। उनकी बात में मैं विश्वास करता था लेकिन आत्म प्रत्यय मुझे नहीं था। इसे मैं मान लेता हूं। हमारी चर्चाओं में स्वामी जी अपने अनुभवों और अनेकानेक देश के और विदेशी दार्शनिकों के वचनों पर आधारित बुद्धिमतापूर्ण तर्कों के द्वारा मुझे विश्वास दिलाने का यत्न करते लेकिन उन से भी मेरा संतोष नहीं होता। स्वामीजी इस बात को जानते थे किन्तु उन्हें उसकी चिन्ता नहीं थी। वे यही कहा करते थे कि हरेक व्यक्ति को अपने अनुभवों से ही अपनी धारणाएं बनानी चाहिए, पुस्तकें पढ़कर या बौद्धिक ज्ञान के आधार पर नहीं।

स्वामी जी का मैसूर का काम समाप्त होने पर हम रामेश्वरम् चल दिये। हमारी यात्रा बड़े आराम से चल रही थी क्योंकि वार्तालाप की कला में स्वामी जी वड़े कुशल थे। उन्होंने अपने जीवन की कई रोचक और जीवंत घटनायें बतायीं।

स्वामीजी एक अथक प्रवासी थे। कितनी ही बार उन्होंने सारे हिन्दुस्तान का भ्रमण किया था। कई भाषाओं पर उनका अधिकार था। रामेश्वरम् पहुंचने पर उन्होंने मुझे आग्रह किया कि तुम धीरज रखना और देखते रहना, जल्दबाजी में गुरुदेव के बारे में कोई धारणा बनाना। रामेश्वरम् में हम उनसे परिचित किसी ब्राह्मण के यहां रुके थे। ऐसा लगा कि सभी लोग स्वामीजी को जानते थे क्योंकि हर व्यक्ति उनसे मिलने पर प्रणाम करता था। अपने मेजबान के यहां गुरुदेव के आगमन के बारे में पूछने पर पता लगा कि वे अभी तक नहीं पधारे हैं और उनके आगमन की कोई खबर भी नहीं है। मैं निराश हो गया किन्तु स्वामीजी पर कोई असर नहीं था। उन्होंने कहा "गुरुदेव अवश्यमेव आयेंगे, हमें उनके स्वागत में तैयार रहना चाहिए।" समुद्र स्नान लेकर हम रामेश्वरम्, मन्दिर में दर्शन करने गये। मैं प्रथम बार दक्षिण में आया था और इससे पूर्व इतना विशाल मन्दिर देखने का अवसर नहीं मिला था। जिसमें हजारों व्यक्ति आसानी से समा सकते हैं ऐसी यह भव्य इमारत कई एकड़ भूमि पर शताब्दियों से खड़ी है। बहुत अच्छे ढंग से इसे बनाया गया है और आज भी उसकी देख-भाल ठीक तरह से की जा रही है। यह एक अति सम्पन्न मन्दिर है। हिन्दुस्तान के अनेक राजा महाराजाओं द्वारा समर्पित बड़ी भेंटों से मन्दिर के खर्च के लिए विशाल धनकोष है और दस लाख से भी ऊपर उसकी नियमित आय है। उसका ऐतिहासिक अथवा पौराणिक महत्व चाहे कुछ हो सारे हिन्दुस्तान के लोग आज भी बड़ी श्रद्धा से रामेश्वरम् के दर्शन करने आते हैं। मैंने स्वामीजी के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा की। उन्होंने मन्दिर का महत्व मुझे समझाया और कई अन्य बातें भी बता दीं।

सागर तीर की कोमल रेत पर घूमते हुए सारा दिन बीता। रात्रि क समय स्वामीजी ने शंकर भाष्य का कुछ अंश मुझे समझाया। शंकर भाष्य महान दार्शनिक जगतगुरु श्री शंकराचार्य द्वारा रचित है और ब्रह्मसूत्र पर सर्वाधिक अधिकार पूर्ण ग्रंथ है। कुछ समय पूर्व मैंने स्वतः इस ग्रंथ का अध्ययन किया था किन्तु उसका मर्म समझाने की स्वामीजी की शैली बड़ी मौलिक थी। श्री शंकराचार्य जी द्वारा इस अविस्मरणीय ग्रंथ के रचे जाने के समय जो विभिन्न मत मतान्तर प्रचलित थे, उन्हें भी स्वामी ने मुझे समझाया। शंकराचार्य के पूर्व और उनके समय भी सूत्रों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से हो रही थी। इस कारण विभिन्न वाद प्रतिवाद निर्मित हो चुके थे। इसीलिए श्री शंकराचार्य को इस प्रबन्ध की रचना करनी पड़ी। स्वामीजी का संस्कृत पर असंदिग्ध अधिकार था। फिर भी बोध कराने की उनकी क्षमता देखकर तथा आचार्य जी ने इस संसार प्रसिद्ध प्रवन्ध की रचना किस प्रकार की, उस समय

की परिस्थितियां क्या थीं यह सारा व्यवस्थित रूप से समझा देने की उनकी योग्यता देखकर मुझे अधिक आश्चर्य हुआ। स्वामीजी से दर्शन की बातें सुनना बड़े आनन्द की बात थी। मैंने सोचा, यदि वे मेरे महाविद्यालय में प्राध्यापक होते तो उनके मार्गदर्शन में संसार के प्रसिद्ध दार्शनिक और विद्वान सिद्ध हुए होते। इतना दुर्बोध विषय कितनी अच्छी तरह उन्होंने समझाया था कि श्रोतागण उसे भूल नहीं सकते थे और कोई भी महत्वपूर्ण बात उनसे छूट न पाती। मैंने कहा, "स्वामीजी, यदि आप विद्यार्थीवर्ग को अपने ज्ञान से लाभान्वित करने की बात सोचें तो उनका बड़ा कल्याण होगा।" वे अपने ढंग से मुस्कराए और बोले, "यह सब तो गुरु की महिमा है। मैं किसी स्थान या व्यवसाय में बध नहीं सकता और अध्यापन कार्य मेरी जीवनवृत्ति नहीं हो सकती।"

रात में हम लोग देर से लौटे। प्रातः स्नान कर जब हम मन्दिर जा रहे थे तो रास्ते में मैंने गुरुदेव के आगमन के बारे में पूछ लिया। स्वामी जी ने कहा, "उनसे एक निश्चित संदेश मुझे मिला है। हमें अधिक समय तक राह नहीं देखनी होगी। यदि उनका कार्यक्रम बदल गया, तो भी मुझे पता लग जायगा।"

छटा प्रकरण

दो दिन बीत गये, अभी तक गुरुदेव की कोई खबर नहीं थी। स्वामीजी शांत और अन्तर्लीन थे। उनकी मुद्रा प्रसन्न थी और वे बहुत बोलते रहते। उनके सहवास में समय कैसे बीता, मुझे पता भी नहीं लगा। तीसरे दिन प्रातःकाल मैंने बिस्तर पर आँखें खोलीं तो स्वामीजी पास खड़े थे। उनकी आंखों में चमक थी। मन में आनन्द नहीं समा रहा था। वे बोले, "माधव उठो, हमें आज जल्दी मन्दिर जाना चाहिए। गुरुदेव कभी भी आ सकते हैं। हमें उनके स्वागत में तैयार रहना है।" मैं स्नानादि से निवृत्त हुआ और हम मंदिर गये। दर्शन करने हम सागरतीर की ओर बढ़ रहे थे कि हमने देखा कि बहुत सारे लोग ऊंची आवाज में बातें करते हुए मन्दिर की ओर आ रहे थे। मैं स्वामीजी से इसके बारे में पूछने वाला था कि उन्होंने दृढ़ता से मेरा हाथ पकड़ लिया और वे उसी ओर दौड़ने लगे। समीप जाकर हमने देखा कि एक व्यक्ति के चारों ओर लोग खड़े है। स्वामीजी ने मेरा हाथ छोड़ा और वे उस व्यक्ति के चरणों में गिर पड़े। उनके गरम आनन्दोच्छ्वास की आवाज मैं सुन रहा था। आनन्दाश्रु उनके गालों पर लुढ़क रहे थे। मैं समझ गया कि वे ही गुरुदेव हैं। गुरुदेव ने स्वामी जी को

उठाया और उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। स्वामी जी शांति से उठे और आदर के साथ एक ओर खड़े हो गये। मैंने हाथ जोड़कर गुरुदेव को प्रणाम किया। मुझे गुरुदेव बड़े ही सामान्य व्यक्ति प्रतीत हुए और कोई भी आश्चर्यजनक बात मुझे उनमें नहीं दिखी। उनकी लम्बाई बड़ी मुश्किल से साढ़े पांच फीट के लगभग होगी। इकहरा बदन, दीर्घ बाहु विशाल भाल, उजला सा वर्ण और विशाल, तेजस्वी नेत्र। बाल बढ़े हुए थे लेकिन उन्हें संवारा नहीं गया था। उन्होंने श्वेत कफनी पहनी थी और मस्तक पर श्वेत वस्त्र लपेट लिया था। दोनों वस्त्र मैले थे। उनके व्यवहार में सहजता थी और मुस्कान में आकर्षण। उन्होंने मेरी ओर देखा। वे मुस्कराये, बोले कुछ भी नहीं। मुझे लगा कि मुझमें उनकी रुचि नहीं है। उनके आगमन की खबर आग जैसी सारे गांव में फैल गयी और चारों ओर से लोग उनके दर्शन करने उमड़ पड़े। फिर गुरुदेव मन्दिर की ओर बढ़ने लगे और लोगों से उधर आने के लिए कहने लगे। मन्दिर के पुजारी और व्यवस्थापकों ने बड़े स्नेह और आदर से गुरुदेव का स्वागत किया। वे लोग गुरुदेव से अच्छी तरह परिचित थे ऐसा मुझे लगा। दर्शन करके गुरुदेव बरामदे में बैठ गए। बरामदा बहुत बड़ा था, लोग बड़ी संख्या में उसमें बैठ सकते थे। लोग समूहों में उनके दर्शन करने चले जा रहे थे। गुरुदेव सभी से इतने स्नेहपूर्वक बातें कर रहे थे, मानों वे उनके परिवारों के सब लोगों को भी जानते हों। प्रत्येक व्यक्ति को उनसे कुछ न कुछ पूछना था। गुरुदेव शांतिपूर्वक उन सबकी बातें सुन रहे थे। उन्हें सभी दक्षिण भारतीय भाषाएँ धाराप्रवाह रूप से बोलते देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। लगभग दो बजे वे मन्दिर छोड़कर हमारे साथ निवास स्थान पर चल सके। मार्ग में मैंने उन्हें पूछा, "आप थके होंगे," तो वे मुस्कराये, बोले कुछ भी नहीं। हमारे मेजबान परिवार के साथ गुरुदेव के स्वागत में खड़े थे। गुरुदेव उनके यहाँ रुक रहे थे इसलिए वे अपने को गौरवशाली समझ रहे थे। गुरुदेव के मंगल स्नान की व्यवस्था की गई। समारंभ के साथ उन्हें नहलाया गया। यह सारा दृश्य मेरे लिए अनोखा था और मुझे कुछ रोचक लगा। स्नान के पश्चात् गुरुदेव की थकान दूर हो गई ऐसा लगा। अब उनके बड़े, काले घुंघराले बाल अच्छी तरह संवारे गए थे। शीघ्र ही भोजन परोसा गया। गुरुदेव ने बहुत कम ग्रहण किया लेकिन मैंने और स्वामीजी ने डट कर भोजन किया। भोजन के पश्चात् गुरुदेव विश्राम करने कमरे में चले गए। मुझे आराम करने के लिए कहकर स्वामीजी उनकी सेवा में वहाँ चले गये।

करीब आधे घण्टे बाद स्वामीजी ने मुझे बुलाया। मैं उनके कमरे में गया। गुरुदेव विश्राम कर रहे थे और स्वामीजी उनके चरणों के समीप बैठे हुए थे। मुझे देखकर गुरुदेव ने अपने पास बैठने के लिए कहा। मेरे माता-पिता की सेहत के बारे में पूछताछ की। वे इस तरह बातें कर रहे थे मानो हम सबको निकट से जानते हों।

इस कारण मेरा सारा संकोच दूर हो गया। उनकी मधुर वाणी गूंज रही थी। प्रखर दीप्ति से चमकने वाली उनकी आंखें कभी ऐसी शून्य जान पड़तीं मानों वे कोई बहुत दूर की वस्तु देखते हुए विचारों में खो गये हों। उन्होंने पूछा, "तुम्हें मद्रास जाने की कोई जल्दी तो नहीं है? वहां पर किसी के साथ मिलना तय किया है?" मैंने कहा, "मैं तो प्रवास का आनन्द लेने भ्रमण कर रहा हूं। मेरा मित्र मद्रास के किसी महा-विद्यालय में अध्यापन कार्य करता है। अब मैं दक्षिण में हूं इसलिए उससे मिलने की इच्छा थी।" वे मुझसे मेरी मातृभाषा मराठी में ही बातें कर रहे थे। वे इतनी अच्छी तरह धाराप्रवाह मराठी बोल रहे थे कि मेरे लिए यह कहना कठिन था कि वे मेरे प्रान्त के नहीं हैं। सुबह से ही मैं उन्हें कई भाषाएँ बोलते हुए देख रहा था इसलिए यह कहना कठिन था कि वे किस प्रान्त के रहने वाले हैं। उनकी आयु के बारे में भी अनुमान नहीं हो रहा था। उन्होंने मुझे सहजता से पूछ लिया, "विवाह के बारे में क्या निर्णय किया? गोखले काका की बेटी मालती के बारे में क्या सोचते हो?" प्रश्न पूछा गया था सहज भाव से लेकिन था इतना अचानक कि क्षणभर के लिए मैं हक्का बक्का हो गया। उन्होंने मेरे मनोभाव पढ़ लिए होंगे इसलिए मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर वे स्वामी जी से कुछ दूसरी बात करने लगे। उनके प्रश्नों के मैं क्या उत्तर देता हूं इसकी ओर वे ध्यान नहीं दे रहे हैं इस बात को देखकर मैं और अधिक भ्रांति में पड़ गया। उनकी बातों और उनके प्रश्नों से मुझे ऐसा लगा कि वे बातें जैसे असम्बद्ध थीं। उनके अपने मन में कोई धारणा बनाना वास्तव में कठिन था। उन्होंने मुझ से कहा—"अब कुछ देर विश्राम करो। एक घण्टे बाद मेरे साथ चलने के लिए तैयार रहना।" उन्होंने मुझे अनुमति दी ऐसा सोचकर मैं अपने कमरे में चला आया। गुरुदेव ने मेरे मन में उथल-पुथल मचा दी थी क्योंकि मैं उनके बारे में कोई धारणा नहीं बना पाया था। अभी तक गुरुदेव से अधिक रहस्यमय व्यक्तित्व के साथ मेरा परिचय नहीं हुआ था। गुरुदेव की यौगिक शक्तियों के बारे में, उनके ज्ञान और सिद्धियों के बारे में कई कहानियाँ स्वामीजी ने सुनाई थीं। मैंने इन सबको कभी भी सच नहीं माना था और इस समय भी गुरुदेव के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता था। मुझे तो वे योगी, समर्थ पुरुष अथवा संत महात्मा नहीं लगे। इस क्षण तो निश्चित रूप से उनका व्यक्तित्व उलझन में डालने वाला था इसलिए उनके बारे में कोई धारणा बनाना मैंने स्थगित कर दिया। मस्तिष्क में विचार रुकते नहीं थे, फिर विश्राम कैसे हो पाता? मैंने एक पुस्तक पढ़ने का यत्न किया किन्तु मन नहीं लगा। मैं अशान्त हो गया और मेरी इच्छा होने लगी कि गुरुदेव के बारे में अधिक जानने के लिए मैं उनके साथ रहूं। किसी श्रद्धा या आदर के कारण नहीं तो उनका उलझन में डालने वाला व्यक्तित्व मेरी बुद्धिमता के लिए आह्वान था। मैं जानना चाहता था कि वास्तव में वे कौन और ऐसी कौन सी सिद्धियाँ उन्हें उपलब्ध हैं। मैं उन्हें अतिमानवी प्रज्ञासम्पन्न अथवा अलौकिक पुरुष मानने के लिए तैयार नहीं था।

लगभग चार बजे मुझे स्वामी जी ने बुला लिया। मैं इनके कमरे में गया। चाय तैयार थी। चाय-पान से पूर्व ही लोगों का अन्दर आना शुरू हो गया था जो बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। गुरुदेव ने लोगों से कहा—"मैं रामेश्वर मंदिर जा रहा हूं आप वहाँ आयें।" मंदिर जाकर गुरुदेव बरामदे में बैठ गए और लोगों को अपना चरण स्पर्श करने की अनुमति उन्होंने दी। वे सभी को शुभाशीर्वाद दे रहे थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि इस विनीत मूरत में लोगों को क्या आकर्षण है और वे लोगों को क्या देने की योग्यता रखते हैं। मैं उनके कार्यकलापों को उत्सुकता से पास बैठकर देख रहा था। लोग उन्हें बहुत सारे प्रश्न पूछ रहे थे, अपनी कठिनाइयां बता रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि उनके पास प्रत्येक प्रश्न का उत्तर था और उनके सरल हलों से लोग सन्तुष्ट थे। न तो गुरुदेव में अहंकार का भाव था और न ही वे लोगों को हीन दृष्टि से देख रहे थे। हां, एक बात मेरे ध्यान में बराबर आती रही कि लोग उन्हें बड़े सम्मान से देख रहे थे और कोई भी व्यक्ति समुचित लाभ उठाने का साहस नहीं कर पा रहा था। वे लोगों को बेटे के समान मान रहे थे और उनकी कठिनाइयों के बारे में पिता के समान रुचि रखते थे, ऐसा लगता था। मेरी दृष्टि में लोगों की परेशानियां तुच्छ थीं, मूर्खता से भरी थीं। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न-भिन्न बात का अनुसरण और भिन्न-भिन्न साधना करने को कहा। उन्होंने यह भी बताया कि सुचारू रूप से पालन करने से इच्छित सुख की प्राप्ति होगी। उन्होंने जो कुछ कहा उसके एक शब्द में भी मेरा विश्वास नहीं था और मुझे लगा कि इस प्रकार वे लोगों को टाल रहे हैं।

लगभग सात बजे उन्होंने मुझे कहा, "ऐसा लगता है कि तुम ऊब गए हो। तुम्हारे लिए यह अनोखा अनुभव है। चलो हम घूमने के लिए रेत पर चलें।" दूर तक भ्रमण करने के बाद हम रेत पर बैठ गए। गुरुदेव ने मुझे पूछा, "घर लौटने की जल्दी तो नहीं है तुम्हें?" उनके कहने का तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया। मैंने पूछ लिया—"क्या आप चाहते हैं कि मैं रुक जाऊँ?" उन्होंने कहा, "कल सुबह स्वामी जी को पंजाब जाना है। मैं जानना चाहता था कि तुम मद्रास तक भी मेरे साथ चल सकते हो क्या? वहाँ पर तुम शहर देख लेना और मित्र से भी मिल लेना।" केवल मुझे नहीं, स्वामी जी को भी यह सुनकर आश्चर्य हुआ किन्तु वे कुछ नहीं बोले। मैंने गुरुदेव से कहा—"आपके साथ चलने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी किन्तु मुझे इसमें सदेह है कि मेरा सहवास आपके लिए अनुरूप और स ायक हो सकेगा क्योंकि मुझे साधुओं के साथ यात्रा करने का कोई अनुभव नहीं है। मुझे सेवा कार्य का ज्ञान नहीं है और साधुओं की सेवा का तो बिलकुल नहीं।" वे मन से हँस पड़े और बोले, "इस बारे में डरने की कोई बात नहीं है।" सहज भाव से मेरे दर्शन शास्त्र के अध्ययन के बारे में तथा विभिन्न पूर्वी और पश्चिमी दार्शनिकों के मतों को समझ लेने के बारे में उन्होंने मुझे पूछ लिया। अँग्रेज, जर्मन तथा फ्रेंच दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोणों पर भी

उन्होंने चर्चा की तो मुझे आश्चर्य हुआ। विविध विषयों में उनका ज्ञान देखकर मैंने सोचा कि उनका अध्ययन विशाल है। रात में हम देर से घर लौटे और भोजन करके मैं सो गया।

प्रातःकाल जब मैं उठा तब पता लगा कि स्वामी जी पहले ही प्रस्थान कर चुके हैं और उनकी अनुपस्थिति में गुरुदेव की सेवा का भार मुझ पर है। मैंने शीघ्रता से स्थान किया और गुरुदेव के साथ हो लिया। वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम दर्शन करने नहीं गए, वहीं के एक स्थानीय व्यापारी के निमन्त्रण पर उसके निवास स्थान पर गए। वहां हमारे स्वागत की अच्छी तैयारी थी। काफी लोग गुरूदेव के दर्शन करने आये थे। मैं गुरुदेव के साथ था इसलिए लोगों ने मुझे भी सम्मानित करने का यत्न किया। मैंने लज्जा का अनुभव किया और मैं कुछ व्याकुल हो गया। मैंने उन लोगों को बताने का बड़ा प्रयास किया कि मैं उन्हीं के समान एक सामान्य व्यक्ति हूं, किसी भी बात में उनसे जरा भी श्रेष्ठ नहीं हूँ, फिर भी उन्होंने मेरा कहना नहीं माना। गुरुदेव को यह सब रोचक लगा होगा। हमारे मेजबान की माता जी काफी बीमार होने के कारण बाहर नहीं आ सकी थीं और बिस्तर पर पड़ी हुई थीं।

गुरुदेव ने उनके बारे में पूछा और हम उनके कमरे में गए। माताजी की आयु लगभग अस्सी वर्ष की होगी और लगता था कि उनकी जीवन यात्रा समाप्त होने वाली है। गुरुदेव का सम्मान करने के लिए उठने का प्रयास उन्होंने किया किन्तु गुरुदेव ने बड़ी मधुर आवाज में उन्हें लेटे रहने को कहा और उनके पास बिस्तर पर बैठकर वे उनके सफेद बालों को सहलाते रहे। उस वृद्ध महिला की आंखों से आंसू टपकने लगे। वे गुरुदेव की ओर ऐसे देख रही थीं मानों वे उनके भगवान हों। गुरुदेव की उपस्थिति में वे अत्यन्त शान्ति और सुख का अनुभव कर रही थीं। यह मैं देख रहा था। उन्होंने मेरे बारे में गुरुदेव से पूछ लिया। गुदेव ने बताया कि मेरा मित्र है। मैं घर मालिक के साथ बाहर चला आया। मैंने उन्हें पूछा--"आप गुरुदेव को कब से जानते हैं?" उन्होंने बताया कि उनके जन्म से पहले से ही परिवार के लोग गुरुदेव को जानते हैं। यह सुनकर मैं दंग रह गया। मैंने पूछा, अनुमान से गुरूदेव की आयु क्या होगी? उन्होंने कहा कि निश्चित रूप से सौ वर्ष से अधिक होगी। मैं गुरूदेव की आयु लगभग पचास वर्ष के बराबर मान रहा था। मैंने सोचा कि गुरूदेव एक ऐसी पहेली हैं जिसे बूझ पाना बड़ा कठिन है। दोपहर को हम मद्रास के लिए चल पड़े। स्टेशन पर बड़ी संख्या में लोग उन्हें विदा करने इकट्ठे हुए थे। गुरुदेव कम समय के लिए वहाँ पर रुके थे, इसलिए सभी लोग बड़े निराश हुए थे। गुरुदेव के दर्शन के लिए बड़ी भीड थी इसलिए गाड़ी रोकनी पड़ी। रेल के अधिकारियों को भी सब पता था। उन्होंने किसी प्रकार की बाधा खड़ी नहीं की। मेरी बुद्धिमत्ता, शिक्षा, सुसंस्कृतता और ज्ञान केलिए

गुरुदेव एक आह्वान हैं ऐसा मुझे लगने लगा। यात्रा में कोई विशेष घटना नहीं हुई। मार्ग के स्टेशनों पर गुरुदेव को पुष्प मालायें समर्पित करने लोग आ रहे थे। प्रभात के समय हमारी गाड़ी मद्रास स्टेशन पर आयी। लोग बड़ी संख्या में पुष्प कंटकों में पुष्पमालाएँ लेकर खड़े थे। दक्षिण भारतीय समाज की कुछ महिलाएँ भी थीं। गुरुदेव डिब्बे से नीचे आये तो उनके चरण स्पर्श करने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। गुरुदेव को पुष्प मालाओं से लाद दिया गया। मद्रास के करोड़पति व्यापारी श्री चैट्टियर हमारे स्वागत के लिए स्टेशन पर आये थे, हमें उन्हीं के घर रुकना था। मेरा सामान सेवकों ने उठा लिया और हम लोग गुरुदेव के साथ कार में बैठ गए।

सातवाँ प्रकरण

श्री चैट्टियर मद्रास के एक विख्यात उद्योगपति थे। उनके पिता के समय से ही उनका परिवार गुरुदेव का भक्त था। श्री चैट्टियर की आयु लगभग पचास वर्ष की थी, वे शरीर से स्थूल थे और हँसमुख स्वभाव के व्यक्ति थे। श्रीमती चैट्टियर भी समाज सेवा के काम में आगे थीं। उनके एक पुत्र व एक कन्या थी। पुत्र व्यापार का काम देखता था और उनकी कन्या का विवाह किसी जमींदार के लड़के के साथ हुआ था। उनके पुत्र का विवाह भी एक वर्ष पूर्व हुआ था। शहर के बाहर एक अच्छी बस्ती में चैट्टियर की बड़ी कोठी थी। कोठी सब तरह से सुसज्जित थी और उसके चारों ओर सुन्दर बाग लगाया गया था। हमारी सेवा के लिए बहुत सारे सेवक थे। इस अच्छे खुश परिवार के साथ मैं अच्छी तरह घुलमिल गया। गुरुदेव के कमरे के ठीक सामने वाले कमरे में मेरे रहने का प्रबन्ध था। दाढ़ी बनाकर मैंने स्नान किया और मैं गुरुदेव के साथ बाहरी कक्ष में आया। गुरुदेव के दर्शन के लिए काफी लोग इकठ्ठे हुए थे। कक्ष में ही श्री चैट्टियर के पुत्र और कन्या से मुलाकात हुई और वे अपनी कोठी दिखाने मुझे ले गये। इस शाही इमारत की साज सज्जा के लिए पैसे को पानी की तरह बहाया गया है ऐसा लग रहा था। श्री चैट्टियर की दोनों सन्तानों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और वे आचरण में शिष्ट थे। वार्तालाप के समय उन्होंने गुरुदेव के बारे में कई कथाएँ सुनाईं। और उन्होंने जो चमत्कार किए थे, उनके बारे में भी बहुत कुछ बताया। बुद्धि को व्यग्र करने वाली शक्तियाँ गुरुदेव के पास हैं, इसे उन्होंने स्वीकार किया। खुद उनकी उपस्थिति में कई अतिमानवी घटनाएँ घटी थीं जिनसे प्रमाणित होता था कि गुरुदेव के पास आलौकिक कही जाने वाली शक्तियाँ हैं। शहर के कुछ लोग बातचीत में शामिल हुए। सभी के पास गुरुदेव की शक्तियों के बारे में कुछ न कुछ कहने के लिए था। उन्होंने मुझे पूछा, "आप गुरुदेव के सम्पर्क में कैसे आये? इतने कम समय में उनका

अनुग्रह आप को प्राप्त हुआ, उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला, वास्तव में आप बड़े भाग्यवान हैं।"

गुरुदेव के दर्शन के लिए लोग बराबर चले आ रहे थे। लगभग एक बजे भोजन के लिए गुरुदेव को अवकाश मिला। हमने भोजनकक्ष में स्थान ग्रहण किया। विविध व्यंजन परोसे गये थे। मुझे भोजन बड़ा अच्छा लगा। गुरुदेव ने कहा—"अब सायंकाल छः बजे तक कोई काम नहीं है। तुम्हें अपने मित्रों से मुलाकात करनी हो तो मिल आना।" श्री चैट्टियर ने स्नेह से कहा—"आपके उपयोग के लिए मैंने एक कार रखी है, जहाँ भी जाना हो, आप उसमें बैठकर जा सकते हैं।" मेरा एक मित्र मद्रास महाविद्यालय में अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा था। हम दोनों पूना में साथ-साथ थे। भोजन के पश्चात् मैं उससे मिलने गया। मुझे देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। अध्यापन समाप्त होने पर हम उसके घर गये। महाविद्यालय द्वारा बनाए गये निवास में वह रहता था। उसका विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी स्नातक थीं और किसी विद्यालय में अध्यापिका थीं। वह भी इस समय आ चुकी थीं। मैं गुरूदेव के साथ आया हूं यह जानकर उन्हें आश्चर्य हुआ। गुरूदेव के बारे में उन्होंने सुन रखा था लेकिन उनकी भेंट नहीं हुई थी। भक्तजनों से इतनी प्रशंसा पाने वाले व्यक्ति को देखने की उत्सुकता उन्हें थी। वैसे किन्हीं आलौकिक वस्तुओं के अस्तित्व में उनका विश्वास नहीं था और किसी भी व्यक्ति को वे लोग आलौकिक व्यक्ति नहीं मानते थे। फिर भी गुरूदेव के दर्शन करने की उत्सुकता उन्हें थी। गुरूदेव का जीवन, उनके आचरण, और विशेष रूप से उनके द्वारा किये गये चमत्कार इन सब के बारे में उन्होंने मुझसे कई प्रश्न किये। मैंने कहा—"गुरूदेव से मेरा परिचय अभी सात दिन का है, उनके जीवन के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। चमत्कारों के बारे में भी मैं कुछ नहीं बता सकता। मैं जब से उनके साथ हूं तब से उन्होंने एक भी चमत्कार नहीं किया है।" यह सुनकर वे कुछ निराशा हुए। इसलिए मैंने कहा, "मुझे वे एक अच्छे व्यक्ति लगते हैं। किन्तु उनका व्यक्तित्व किसी रहस्यमय आवरण में ढका है।" हम भिन्न-भिन्न विषयों पर बोलते रहे। मेरे मित्र ने पूछा लिया—"भविष्य के बारे में तुमने क्या तय किया?" मैंने स्पष्ट रूप से कहा कि "मैंने अभी कुछ भी तय नहीं किया। इस समय समझ लो, मैं व्यर्थ में समय गवा रहा हूं।" इस बात पर दोनों ने गम्भीर होकर मुझे सलाह दी कि जीवन में स्थिर होने का समय यही है। या तो उच्च शिक्षा पाने विलायत चले जओ या फिर नौकरी कर लो। तुम शीघ्र ही विवाह भी कर लो। चाय और मिठाई आयी थी। चायपान में छः बज गये। मुझे देर हो रही थी। उन दोनों को गुरुदेव के दर्शन करने की इच्छा थी इसलिए उन्हें साथ लेकर मैं श्री चैट्टियर के घर गया। हमारे वहां पहुंचने से पहले ही बाहरी कक्ष पूरी तरह भर चुका था। देर से आने के लिए मैं खुद को कोस

रहा था। उन दोनों को साथ लेकर मैंने अन्दर जाने का प्रयास किया लेकिन कक्ष इतना ज्यादा भरा हुआ था कि आगे बढ़ना सम्भव नहीं था।

गुरूदेव रेशमी आसन पर विराजमान थे जिस पर सुन्दर कढ़ाई की गयी थी। पीठ के पीछे गद्दा था, वे श्वेत वस्त्र पहने थे। लोगों के मन में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उनकी बड़ी बड़ी आँखों में तेजस्वी आभा थी और होठों पर मनोहारी मुस्कान। उन्होंने जैसे ही देखा कि मैं द्वार पर खड़ा हूं हमारे लिए मार्ग छोड़ देने के लिए उन्होंने लोगों से कहा। मैं उनके पास गया। उन्होंने कहा कि कपड़े बदल कर आओ। मैंने कमरे में जाकर पाजामा कुरता पहन लिया और उनके साथ बैठ गया। मेरा मित्र और उसकी पत्नी दोनों उनके सामने ही बैठे थे। गुरूदेव ने मुझे कहा कि मेरे पास बैठो। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में यह बड़े सम्मान की बात थी। स्वाभाविक ही कक्ष में बैठे सभी लोगों की आँखें उत्सुकतावश मुझे देखने लगीं।

सभी वर्गों के लोग कक्ष में थे किन्तु उच्च मध्यम वर्ग के लोग अधिक संख्या में थे। वे अच्छे शिक्षित व्यक्ति प्रतीत होते थे और मैं समझ नहीं पा रहा था कि वे गुरूदेव के दर्शन के लिये यहां क्यों आये? हो सकता है वे उनकी कृपा पाने या कोई चमत्कार देखने आये हों किन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं हुआ। मैंने गुरूदेव की ओर देखा, वे शान्त थे, अन्तर्लीन थे और इस प्रकार देख रहे थे जैसे उपस्थित जनसमुदाय का उन्हें ध्यान ही नहीं है। कक्ष में पूर्ण शान्ति थी और सभी लोग आगे की कार्यवाही की प्रतीक्षा में थे। श्रोताओं में से किसी सुशिक्षित व्यक्ति ने उठकर कहा—"गुरूदेव, आपका अमूल्य उपदेश सुनने के लिए हम लोग बड़े उत्सुक हैं।" गुरूदेव बोले—"प्रवचन की अपेक्षा यदि आप अपनी विशेष कठिनाईयां बताते हैं तो मेरे कथन से आपके साथ दूसरों को भी मार्गदर्शन और सहायता मिल सकती है।" उस व्यक्ति ने पूछा—"शान्ति और सुख पाने का सबसे सरल तरीका क्या है?" गुरूदेव का उत्तर सुनने के लिए सब लोग बड़े तत्पर थे। गुरूदेव ने कहा—"संसार में सुख और शान्ति पाने के लिए हम सभी लोग भिन्न-भिन्न तरीके अपना कर प्रयास कर रहे हैं किन्तु कठिनाई यह है कि आप गम्भीरता से यह नहीं सोचते कि सुख और शान्ति के क्या मायने हैं? यदि ये हमारा ध्येय है तो उन्हें पूरी तरह से जान लेना चाहिये। मेरा तात्पर्य उनके शाब्दिक ज्ञान से अथवा सतही ढंग से उन्हें समझ लेने से नहीं है, गम्भीरता से मन लगा कर उन्हें जान लेने से है। यदि समझ लेने की सही और तत्पर भावना से हम इस समस्या का परीक्षण करते हैं तो हमें पता लगेगा कि सुख और शान्ति की प्राप्ति का तात्पर्य सुख और उसका फल शान्ति में बाधा डालने वाले तत्वों पर विजय पाने की इच्छा से है। यदि हम इन तत्वों को हटा दें, उनसे दूर रहें या उनका हल पा लें तो सुख और शान्ति प्राप्त होगी। अब आपका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि सुख और शान्ति को भंग करने वाले, उनमें बाधा डालने वाले तत्वों की खोज

कर लें। इसका परीक्षण करने पर आपको ज्ञात होगा कि ये तत्व हैं आपकी इच्छाएं, आकांक्षाएं, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि ये ही आपका जीवन दुःखी और विषादग्रस्त बना देते हैं। आप यह भी देखेंगे कि ये सारे बाधक तत्व आपके ही बनाये हैं। हो सकता है कि आप जिस विशिष्ट समाज में रहते हैं, जिस विशिष्ट जीवनक्रम को अपनाते हैं, जिस धर्म का पालन करते हैं, जिस मत को मानते हैं या आपकी जो मान्यताएं हैं इनसे ये तत्व बने हों। इससे यह आशय निकलता है कि आप कई ऊनी कम्बलों से अपने शरीर को ढक रहे हैं और फिर ताजी हवा की कामना करते हैं। आप खुद ही इसका सरल हल निकाल सकते हैं। सारे आवरण फेंक दीजिए, खुली और ताजी हवा आपको मिल जाएगी। आप इन आवरणों को फेंक सकते हैं जो अपने स्वामित्व के द्वारा, अपने को इनका अभिन्न अंग समझ कर, एकाधिकार के द्वारा, जो आप नहीं हैं वह बनने की इच्छा अथवा जो वस्तु आपकी नहीं है, उसे रखने की महत्वाकांक्षा के द्वारा, आपने ओढ़ रखे हैं। आप जैविक आवश्यकताओं की बात छोड़ दीजिए, अपने जीवन में आप ऐसे कई ध्येयों के पीछे पड़े हैं जिन्हें आपके मन और बुद्धि ने बनाया है और अहंकार ने बढ़ाया है, ये ही आपके जीवन की प्रमुख बाधाओं के प्रति उत्तरदायी है। कभी-कभी यह बेहूदा तर्क दिया जाता है कि संसार में रहना हो तो सांसारिक बातें माननी पड़ती हैं। इसका परीक्षण करने पर हम देखते हैं कि आज का संसार कई समाजों, धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और विभिन्न बातों से मिल कर बना है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह जिसका अनुसरण कर रहा है उसके बारे में दूसरों को विश्वास करा दे और इसके द्वारा यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि उसी के जीवन का तरीका सही है और सब को उसका अनुसरण करना चाहिए। इसलिए ससार में नेतृत्व करने के लिए, अनुसरण करने के लिए, अभिन्न अंग बनाने के लिए, सत्ता पाने के लिए, एकाधिकार इत्यादि प्राप्त करने के लिए यदि सतत् संघर्ष चल रहा है, आपके चारों ओर चल रहे इस भयानक संघर्ष और अंतर्विरोध के बीच आप कैसे सुख पा सकते हैं?

"आप शान्ति और एकान्त चाहते हैं तो आप उसे बाजार में जहां बड़ा शोर होता है और हलचल रहती है नहीं पा सकते। यहीं पर यदि शान्तिपूर्वक सुन सकें इसके लिए आप शोर मचाना शुरू करें तो साफ है कि आप सुन नहीं सकेंगे। यदि प्रत्येक व्यक्ति शान्त रहता है तो इतने मात्र से एक क्षण में इस कक्ष में पूर्ण शान्ति स्थापित होगी। उन तत्वों को, जो आपके जीवन में बाधाएं खड़ी करते हैं, रोक दिया जायेगा उनसे बचा जाये तो अपने आप आपका जीवन सुखी और शान्त होगा, किसी दूसरे मार्ग से नहीं। इस प्रकार आप देखेंगे कि वे खुद आप ही हैं जो अपने सुख और शान्ति के मार्ग में बाधक बने हैं और आप ही सुख और शान्ति पा सकते हैं, यदि आप गंभीरता पूर्वक समस्या को समझने का प्रयास करते हैं। किसी बाहरी सहायता से हल पाने का प्रयास करने से केवल समय और शक्ति की बरबादी होगी। किसी वस्तु को आप वहाँ

पर खोज रहे हैं जहां पर वह मिल नहीं सकती। पुस्तकें पढ़ने से, किसी धर्म का पालन करने से आपके अहंकार की वृद्धि भर होगी, ज्ञान संग्रह बढ़ाने में ही सहायता मिलेगी, इससे परे आपको वह वस्तु देने की क्षमता उनमें नहीं है जो आप में पहले से ही विद्यमान है, और आप उसे कहीं बाहर खोज रहे हैं। अपने जीवन को आपने इस प्रकार ढाल लिया है कि आपको समुचित और खुले रूप से सोच पाना भी कठिन हो गया है। यदि मैं कहूं कि आप सम्यक् श्रवण करना भी नहीं जानते, तो आपको अच्छा नहीं लगेगा। आप कहेंगे कि हम तो ध्यानपूर्वक सम्यक् श्रवण कर रहे हैं। किन्तु साथ-साथ आपके मन में जो कुछ गतिविधि चल रही हैं, उसे भी देखिए। जरा विवेकपूर्ण ढंग से अपने अन्तर्तम को टटोलिए कि जो कुछ मैं बता रहा हूं आप उसकी तुलना अपने मन में निवसित पूर्वाजित ज्ञान से कर रहे हैं। और उसमें विरोधाभास देख रहे हैं, साथ ही आपने पुस्तकों में जो कुछ पढ़ा है अथवा दूसरे लोगों से सीखा है, उसे भी याद करने का प्रयास आप कर रहे हैं। आप कई ऐसी बातें भी सोच रहे हैं जो मेरे कथन से सम्बन्धित हैं और कई ऐसी बातें भी, जिनका भाषण से कोई सरोकार नहीं है। आपके मन में इतनी बड़ी मानसिक प्रक्रिया और स्मरण आदि के लिए संघर्ष चल रहा है, अतः स्पष्ट है कि आप से जो कुछ मैं कह रहा हूं उसे सुनने की क्षमता काफी कम हो गई है। और मेरी बात का मर्म समझने की तत्परता और क्षमता तो और भी कम हो गई है। अतः एकाग्रता के साथ अर्थात् अचल या बाधा-रहित मुक्त मन से मुझे सुनें तो यही एक पद्धति है जिससे आप मेरी बातों के मर्म को समझ सकते हैं, परन्तु इसी स्थान पर कोई निर्णय ले लेने की जल्दबाजी आप न करें। ऐसा करने से न केवल आपके सम्यक् श्रवण में बाधा खड़ी होगी बल्कि समझने की शक्ति में भी गड़बड़ी पैदा होगी। आप अपने साथ ही यहाँ पर बैठे दूसरे लोगों का समय भी बरबाद करेंगे। मुझे आप सभी से यही प्रार्थना करनी है कि आप इस बात को समझ लें कि मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देने तथा आपकी कठिनाइयां हल करने का प्रयास कर रहा हूं। मैं इन बातों को स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं और उन्हें समझने की सही मनोभावना से ही समझना होगा। तभी सत्य तक पहुंच सकते हैं। तार्किक बनने का प्रयास आप कृपया न करें और न ही आप को वकील के समान मुझ से जिरह करने का प्रयास करना चाहिए। यदि आप को सत्य को समझना है तो आप ये सारी बातें भूल जायें। आपके अपने ज्ञान या बुद्धि की देन के द्वारा मुझे अथवा यहाँ पर एकत्रित लोगों को प्रभावित करने का प्रयत्न भी आप न करें क्योंकि इससे केवल समय की बरबादी ही होगी।" श्रोताओं में से किसी ने प्रश्न किया, "गुरुदेव, मन को अचल करने की, विचार से रहित होने की प्रक्रिया क्या है?" गुरुदेव ने कहा—"प्रक्रिया से यदि किसी मन्त्र, पूजा-पाठ अथवा साधना से आपका तात्पर्य है तो मैं कहूंगा मैंने आपसे जो कुछ कहा है उसे आप नहीं समझे हैं।

"वह सभी जिसे प्रक्रिया कहा जाता है और कुछ नहीं बल्कि पलायन है, बहाना

है क्योंकि आपको यही करना है कि आपके अन्त में जो कुछ वास्तव में चलता रहता है उसका आप अवलोकन करते रहें और उसके बारे में सजग रहें।

"यह साफ है कि शान्ति और सन्तोष की समस्याएं आपकी वे समस्याएं हैं जो आपकी मनोदशा से सम्बन्ध रखती हैं या मैं यह कह सकता हूं वे आपके अन्दर के किसी की है न कि आपके बाहर के किसी की। इसलिए समस्याओं के हल भी अन्दर ही मिल सकेंगे, बाहर नहीं जहाँ पर वे हैं ही नहीं। अतः इसलिए आपको अपनी आँतरिक प्रक्रिया को ध्यान से देखना चाहिए, तात्पर्य यह है कि मन कैसे काम करता है, विचार कैसे उठता है, वास्तविक रूप में ऐसी कौन सी गतिविधि अन्तर में चलती है जो आकांक्षाएं, लोभ आदि उत्पन्न करती है। जब आपको इस गतविधि का ध्यान रहता है और अपने को उससे अलग रखते हुए आप ध्यान पूर्वक उसे देखते हैं तब आपको अपनी समस्याओं का हल मिल जाएगा। आपको संक्षेप में, स्पष्ट और तत्पर विचार से तथा अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को ध्यान पूर्वक देखने से अपनी समस्या का हल प्राप्त होगा। किसी दूसरे व्यक्ति या गुरु के द्वारा प्रक्रिया सिखाई जाने के विचार के पीछे अथवा मार्गदर्शक, मार्गदर्शन, पूजा या प्रार्थना के पीछे पलायन का भाव रहता है।"

किसी ने कहा, "क्षमा करें गुरुदेव, क्या आपके कहने का मतलब यह है कि गुरु या मार्गदर्शक, उसके उपदेश या मार्गदर्शन, लोगों को साक्षात्कार की ओर नहीं ले जाते ? क्या आपके कहने का मतलब यह है कि वह निरर्थक है और उनके बारे में कही जाने वाली बातें केवल मूर्खता मात्र हैं ?" गुरुदेव हंसे। उन्होंने कहा, "आपने एक प्रश्न में ही कई बातें उठाई हैं। अब आप कृपया ध्यान से सुनें। संसार में मूल्य तेजी से बदल रहे हैं और उनमें एक प्रबल परिवर्तन आया है। बहुत पुराने समय में गुरु शब्द का कोई खास मूल्य अथवा वैशिष्ट्य हो सकता है किन्तु काफी समय से वह नहीं रहा। उसका महत्व घट गया है और वह जहां तक उसके धार्मिक, सामाजिक, नैतिक पहलुओं की बात है, वह दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है। भौतिकवाद, जिसका प्राचीन समय में कोई वैशिष्ट्य और महत्त्व नहीं था, उसने सभी बातों पर अपना सिक्का जमा लिया है। आज सभी मूल्य भौतिकवाद के सन्दर्भ में देखे जाते हैं। संसार के साथ सबसे बड़ी तकलीफ यही है कि वह ऐसी मूल्यवान बातों के मूल्य पर भौतिकवाद की ओर बढ़ रहा है जिससे जीवन शान्तिमय बन सकता था। भौतिकवादी प्रवृत्तियों को अपनाकर आपने उन बातों को भुला दिया है, जो आपकी भलाई के लिए आवश्यक थीं। सूक्तियां, उपदेश, प्रार्थनाएं, वेद, वचन और धार्मिक ग्रन्थों का जीवन के उस पक्ष के साथ विशेष नाता है जिसका निश्चित ही आर्थिक मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थशास्त्र को एक प्रकार का धर्म बना दिया गया है या मैं ऐसा कह सकता हूं कि जीवन की हर बात पर उसने प्रभुता पा ली है जबकि सुख प्राप्ति में सहायक बातों का कोई अर्थ, मूल्य या महत्व नहीं

रह गया है। उनके बारे में आज जो कुछ जाना जाता है वह इधर-उधर की बिखरी बातों के रूप में है, जिसका उसकी यथार्थता से कोई सम्बन्ध नहीं और जो पूरी तरह बातचीत के स्तर पर है। आज कोई नहीं जानता कि विश्वास क्या है, प्रेम क्या है, नैतिकता क्या है और इन सबसे कम कि ईश्वर क्या है ? ये शब्द बिना जाने ही उपयोग में लाये जाते हैं या बोल दिये जाते हैं। इसलिए आप कैसे जान सकते हैं कि गुरु क्या है ? (और प्रक्रिया क्या है ?) आज गुरु की आवश्यकता केवल पलायन के लिए या दैनिक जीवन की चिन्ताओं से राहत पाने के लिए होती है और यदि वह अपेक्षित राहत नहीं दे पाता तो आप किसी दूसरे गुरु की खोज में निकलते हैं। इस प्रकार गुरु एक व्यापार की वस्तु अथवा व्यवसाय-गृह बन गया है। वह लेन-देन का एक नियमित व्यवसाय बन चुका है। यदि आप सुनते हैं कि आर्थिक और शारीरिक कष्टों से राहत दिलाने में कोई दूसरा गुरु आपके गुरू से अधिक सक्षम है तो निश्चित ही आप अपने गुरु को त्यागकर भविष्य सुधारने के लिए उस दूसरे गुरु के पास जाते रहते हैं।

"इस प्रकार लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाते रहते हैं। स्पष्ट है कि गुरु का यह अर्थ तो कदापि नहीं हो सकता तथा जो लोग गुरु के बारे में इस प्रकार से सोचते हैं उन्हें निश्चित रूप से गुरू की कोई आवश्यकता नहीं। गुरू पलायन का साधन, बैंक अथवा शक्ति नहीं है जो आपकी आर्थिक और सांसारिक समस्याओं को हल करेगा। गुरू जीवनवृत्ति अथवा व्यवसाय नहीं है। आप सत्य, विश्वास, प्रेम, आनन्द आदि शब्दों का अर्थ नहीं समझ सकते। गुरू कोई संस्था, सनक अथवा सम्प्रदाय नहीं है। जिस क्षण इनमें से किसी के साथ वह अपने को जोड़ लेता है तो उसका यही अर्थ होगा कि उसने सत्य को नहीं समझा तथा एक अज्ञानी व्यक्ति दूसरे को उपदेश या शिक्षा नहीं प्रदान कर सकता। मैं चाहता हूं कि आप स्पष्टतया अवलोकन करें और जान लें कि आपको गुरू की आवश्यकता क्यों है ? मुझे पूरा विश्वास है कि आप सब गुरू की बात सोचते हैं क्योंकि अपनी समस्याओं को खुद समझने की परेशानी से बचकर आप किसी बाहरी सहायता की इच्छा करते हैं। सच देखा जाये तो कोई खुद अपना गुरू बन सकता है, यदि गुरू शब्द से उसे इतना लगाव है और सत्य को जान सकता है। पुस्तकें केवल सन्दर्भ के सिवा किसी दूसरे उपयोग की नहीं हैं और जिस किसी प्रक्रिया का आप पालन करेंगे वह आपकी अपनी प्रगति में बाधक बनेगी।

"अतः यह स्पष्ट है कि सुखी और शान्ति होने के मार्ग में अनेक बाधाएं खड़ी करने के लिए आपको ही दोष देना होगा और इसीलिए उनका निराकरण करने में केवल आप ही सक्षम भी हैं। कृपया आप गुरू की चिन्ता न करें और दूसरों का अनुसरण करने का प्रयास न करें।" गुरूदेव ने कथन समाप्त किया, उनकी स्पष्ट और

मधुरवाणी कानों में गूंज रही थी। श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध होकर बैठे थे और कुछ समय वहां पर पूर्ण शान्ति थी।

श्रोतागण में से किसी सज्जन ने कहा, "क्षमा करें महाराज, यदि मार्गदर्शन करने के लिए ग्रन्थ पर्याप्त नहीं हैं तो फिर उनकी रचना आखिर किसलिए की गई है? किस हेतु से उन्हें पढ़ने के लिए प्रत्येक उपदेशक और श्रेष्ठ पुरुष हमें कहा करते हैं?" गुरूदेव ने कहा, "मैं यहां किन्हीं उपदेशकों अथवा श्रेष्ठ पुरुषों की आलोचना या प्रशसा करने नहीं बैठा हूं, जिन्होंने ग्रन्थ लिखे हैं, जैसा कि आप कह रहे हैं। फिर भी मुझे फिर से यही कहना है कि पुस्तकों में किसी का मार्गदर्शन करने की शक्ति नहीं है। वे केवल संदर्भ का काम करते हैं। प्रत्येक संत या दार्शनिक ने अपने अनुभवों और निष्कर्षों को अपने शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किन्तु वे केवल उन्हीं लोगों के उपयोगी हैं, जो उनके मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं और उन्हें उसी प्रकार के अनुभव मिल सकते हैं। शांति और सुख एक दशा है जिसे व्यक्ति अनुभव करता है, इसलिए ग्रंथों के अध्ययन के द्वारा अथवा उपदेशों को सुनने से वह प्राप्त नहीं की जा सकती। वह दशा आन्तरिक है और बाहरी प्रयास उसे पाने में मदद नहीं करेंगे। साधक जिस दशा का अनुभव करता है उसका अनुभव करने के लिए शब्द कम पड़ते हैं। अनुभवों को प्रकट करने के लिए कितने ही प्रयास किये जा चुके हैं किन्तु अनुभव की दशा प्राप्त करने में वे सफल नहीं हुए क्योंकि अनुभव शाब्दिक नहीं हो सकते और शब्द उनकी प्राप्ति में मदद नहीं कर सकते। पुस्तकें जानकारी के लिए, तथ्यात्मक ज्ञान और पाण्डित्य के लिए पढ़ी जा सकती हैं। जीवन और समाज में अच्छा स्थान प्राप्त करने में वे मदद कर सकती हैं। वैज्ञानिक या अन्य भिन्न-भिन्न विषयों में प्रवीणता प्राप्त करने, व्यावसायिक सफलता पाने के लिए पुस्तकें आवश्यक होती हैं।"

कुछ मिनटों तक गुरूदेव चुप रहे। किसी ने प्रश्न नहीं किया। कक्ष में पूर्ण शान्ति थी। गुरूदेव खड़े हो गये। उन्होंने हाथ जोड़े। आज के भाषण की समाप्ति की वह सूचना थी। उनके दर्शन के लिए लोग दौड़े किन्तु गुरूदेव ने उन्हें कहा कि अपना स्थान न छोड़ें। वे बड़ी धीमी चाल से उनके बीच में से गुजरे ताकि हर कोई कठिनाई के बिना उनके दर्शन कर सके। वे जब कक्ष से बाहर आ गये तब आठ बज चुके थे मैं उनके पीछे आ रहा था। उन्होंने मुझे कहा, "हम खुली हवा के लिए बाहर जा रहे हैं।" मैंने चप्पलें पहनीं और एक सेवक ने उनकी खड़ाऊ ला दीं। हम सीढ़ियों से उतरकर कार तक आये श्री चैट्टियर भी हमारे साथ हो लिये। मद्रास के सुप्रसिद्ध सागरतीर की ओर हम जाने लगे।

आठवां प्रकरण

गुरुदेव धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से ही मेरे सामने अपने को प्रकट कर रहे थे। कुछ ही क्षणों पूर्व सुनी हुई उनकी वाणी मेरे कानों में अभी भी गूंज रही थी। वह कोई व्याख्यान नहीं था और न ही पाण्डित्य का दिखावा अथवा ज्ञान का दम्भ ही, पाण्डित्य से ज्यादा वह अनुभवों के आधार पर दिया गया एक सरल सम्भाषण था। मुझे लगा कि उन्होंने अपने निजी अनुभव बताये हैं किन्हीं सिद्धान्तों का वणन नहीं किया है। मैंने महसूस किया कि गुरुदेव में कुछ चैतन्य सा है और मुझे भान हो रहा था कि मैं उनकी ओर खिंचा जा रहा हूं। मैं समझ गया कि गुरुदेव को जान लेना कोई आसान बात नहीं है। फिर भी मैंने सोचा कि लम्बे समय तक साथ रहने पर मैं कुछ मात्रा में उन्हें जान सकता हूं। इतने बड़े जनसमुदाय पर गुरुदेव का जो प्रथम प्रभाव था उसका और उन लोगों का उन पर जो प्रेम था हम जो कुछ उसे कहें उसका रहस्य भी मेरी समझ में आ रहा था। हम समुद्र तीर पर घूमते रहे और फिर रेत पर बैठ गए। मैं शाम की बातचीत के बारे में अभी भी सोच रहा था और मैंने तय कर लिया कि उस सब को मैं लिख लूंगा ताकि सन्दर्भ के रूप में भविष्य में उसका उपयोग हो सके।

गुरुदेव श्री चैट्टियर के साथ बातें कर रहे थे और मैं केवल सुन रहा था। अचानक उन्होंने मुझसे पूछ लिया कि तुम क्या सोच रहे हो? मैंने उत्तर दिया कि मैं आपकी बातचीत पर ही सोच रहा हूं। उन्होंने कहा कि अब उसके बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब यह पुरानी बात हो गई है। मैंने तो सरल तरीके से प्रश्नों का उत्तर भर देने का प्रयास किया था। माधव, तुम्हें केवल अपनी समस्याओं के बारे में खुद ही सोचना है और उन्हें हल करने में तुम्हें परेशानी नहीं होगी। छल-कपट कर ईमानदारी से उनके बारे में सोचने से ही तुम उनके सही हल जान लोगे। मैंने कहा, "गुरुदेव आपने एक तरह से गुरु और प्रक्रिया दोनों को पलायन-वाद कह कर उनकी भर्त्सना की, यह मेरी समझ में नहीं आया और मुझे अच्छा भी नहीं लगा।" गुरुदेव ने कहा, "तुम ने जैसा पढ़ रखा है या सुन रखा है उसे सामने रखकर तुम मुझे या मेरी बातों को समझने का प्रयास कर रहे हो। इसलिए तुम्हारे मन में भ्रांति है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, यदि तुम्हें केवल सम्यक् श्रवण करने का भी, ज्ञान होता तो तुम इस प्रकार नहीं करते। गुरु--इस शब्द का और उसके उपदेशों का वास्तविक अर्थ अब नहीं रहा। आज इन दो बातों का उपयोग

पलायन के साधन के रूप में हो रहा है। ये कम अधिक मात्रा में व्यापार की वस्तुएं बन गई हैं, और भौतिक लाभ अथवा राहत पर ही इनका मूल्यांकन किया जाता है। स्वाभाविक ही पलायन के अलावा वे कुछ नहीं। सच तो यह है कि गुरु को खोजने की आवश्यकता नहीं होती, उसे चुनना नहीं पड़ता। वही अपने शिष्य उन्हें जो कुछ नाम तुम दो, चुनता है, उन्हें ज्ञान प्रदान करता है अथवा ऐसा कहना चाहिए कि उनका अज्ञान दूर करता है। इस प्रकार के भाग्यशाली शिष्य अपने गुरु को जीवन में किसी भी चीज से बढ़कर मानते हैं और उसकी प्रसन्नता के लिए किसी भी त्याग को कम मानते हैं। ये शिष्य अपने गुरु के ज्ञान उसकी क्षमता या हैसियत को आंकने का प्रयास नहीं करते क्योंकि गुरू में उनका विश्वास पूर्ण और अडिग रहता है और वे गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर मानते हैं। गुरु अच्छी तरह जानता है कि अपने शिष्यों से कैसा बर्ताव करना चाहिए, उसे अपने शिष्यों से किसी भी प्रकार की अपेक्षाएं नहीं रहतीं। सब शिष्यों के लिए कोई एक निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं हो सकता किन्तु शिष्यों का स्वभाव और उनकी प्रकृति को पूरी तरह समझ कर प्रत्येक के साथ अलग तरह का व्यवहार करता है। अब मुझ बताओ, ऐसे कितने गुरुओं और शिष्यों से तुम मिल चुके हो?" मैंने नम्रता से अपनी अनभिज्ञता बताते हुए कहा, "आपका कहना ठीक है। इस प्रकार के किसी गुरु या शिष्य के बारे में मुझे निजी अनुभव नहीं है।" हम देर से घर लौटे और भोजन क बाद गुरुदेव ने कहा, "माधव, अब आराम करो।" मैं अपने कमरे में गया और गुरुदेव ने शाम को जो कुछ कहा था, उसे मैंने लिख लिया। मैंने सोचा कि अब तक मैंने जो कुछ पढ़ा है या सुना है उसके बारे में गुरुदेव ने मुझे एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। मुझे एक नई अन्तरदृष्टि प्राप्त हो रही थी और विचार और अनुमान छूट रहे थे। मानसिक उद्विग्नता उत्पन्न करने के लिए यह पर्याप्त था। मैंने सोचा कि यहां पर पूर्ण स्पष्टता है।

उन्होंने जो कुछ कहा, वह अपने वैयक्तिक अनुभवों पर आधारित उनकी दृढ़ मान्यताएं थीं। नींद आने से पहले मैं काफी देर तक सोचता रहा था।

दूसरे दिन जब मेरी आँख खुली तब सुबह होने वाली थी। मुझे ताजगी और हल्केपन का अनुभव हो रहा था, जैसे मेरे सिर पर का कोई भारी बोझ हट गया हो। सुबह सात बजे मैं तैयार होकर गुरुदेव के साथ दिन भर रहने के लिए कमरे से बाहर आया। श्री चैट्टियर के सुपुत्र से कक्ष में मुलाकात हुई। उन्होंने बताया कि गुरुदेव उनके पिताजी के साथ बगीचे में हैं। मेज के पास चाय पीने परिवार की महिलायें बैठी थीं। श्री चैट्टियर ने चाय ली थी और गुरुदेव ने दूध ग्रहण किया था। मैंने चाय ली और बगीचे में चला आया। श्री चेट्टियर के साथ गुरुदेव फूलों की क्यारियों की विधि रचनाओं के बारे में और पौधों के बढ़ने के सम्बन्ध में लगन से बातचीत कर रहे थे। गुरुदेव इतने विश्वास पूर्वक बता रहे थे मानों कि वे बागबानी के विशेषज्ञ हों और पौधों के बारे में सब कुछ जानते हों। उनके दर्शन के लिए बाहर के लोगों का आना शुरू हो गया था। चैट्टियर ने कहा कि ऊपर कक्ष में बैठेंगे। किन्तु गुरुदेव

ने बगीचे में ही किसी वृक्ष के तले बैठने की इच्छा प्रकट की। श्री चैटियर ने आवश्यक निर्देश दिये और बगीचे में गलीचे बिछाये गये। गुरुदेव एक घने पत्तों वाले अशोक वृक्ष के तले बैठ गये और उन्होंने लोगों से कहा कि गलीचों पर बैठें। उस दिन रविवार था इस लिए अवकाश का दिन होने से शीघ्र ही बगीचे का वह भाग लोगों से भर गया। मैं देख रहा था कि कुछ एक को छोड़कर अधिकांश लोग किसी न किसी अपेक्षा से दर्शन के लिए आये थे। प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि उसे कुछ न कुछ प्राप्त हो, गुरुदेव के हाथों उसे राहत मिले। मेरे मन में सन्देह था कि गुरुदेव उन्हें राहत दिलाने में सक्षम हैं भी या नहीं। किन्तु मैं कुछ भी सोचूं, उपस्थित लोग गुरुदेव को महान पुरुष के रूप में देख रहे थे जिसके पास अलौकिक शक्तियां हैं और जो उन्हें प्रार्थना करने पर राहत दे सकता है। एक क्षण के लिए मैंने सोचा कि गुरुदेव शरीर से हमारे इतने पास हैं, फिर भी विचारों से हमसे कितने दूर हैं जैसे किसी दूरस्थ व्यक्ति के सम्पर्क में हों। वे प्रत्येक के साथ बातें कर रहे थे, आनन्दित मुद्रा में विनोद कर रहे थे फिर भी उनकी अनासक्ति का मुझे हर क्षण अनुभव हो रहा था।

जिस समय लोग उनके चरण छू रहे थे और गुरुदेव उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनसे बातचीत कर रहे थे, उस समय किसी व्यक्ति ने कहा, "गुरुदेव क्या आपके कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर में विश्वास रखना अथवा किसी विशिष्ट देवता का पूजन करना, इनसे साधक को साक्षात्कार नहीं हो सकता?" तुरन्त ही पूर्ण शांति छा गयी और हर व्यक्ति गुरुदेव का भाषण सुनने के लिये तत्पर हो गया। गुरुदेव ने कहा, "दुर्भाग्य से ईश्वर और विश्वास ये शब्द बिना समझे वैसे ही उपयोग में लाये जाते हैं। वातावरण, पारिवारिक रूढ़ियां, संवर्धन, शिक्षा आदि के कारण आपने एक आदत बना ली है, या आप सोचने के ढांचे में ढल गये हैं और एक प्रकार से इन तत्वों से प्रभावित होकर बर्ताव करते हैं। इसलिये इन शब्दों का सही अर्थ अथवा अभिप्राय क्या है, यह आप समझ नहीं पाये हैं क्योंकि ये शब्द वैसे ही बोले जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि आपने जैसा समझ रखा है उससे भिन्न कोई बात सोचने की आवश्यकता आप ने कभी महसूस नहीं की और आप सारे समय यही मान कर चले कि आपका समझना ही सही है। दुर्भाग्य से आपने कभी अपनी सोचने की प्रक्रिया, और कार्य पद्धति का अवलोकन नहीं किया और इसका परिणाम यह हुआ कि आप ही की विचारधारा नहीं है, उसमें सुधार करने की आवश्यकता नहीं है— यह मानकर आप स्वयं को धोखा देते रहे। अब मुझे बताइये, ईश्वर को आपने कैसे समझा है? देवता से आपका क्या तात्पर्य है, और क्या आप समझ चुके हैं कि विश्वास क्या होता है?" उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर गुरु देव बोले, "आप गलत सोचते हैं यह दिखाने में, मैं समय बरबाद नहीं करूंगा किन्तु मुझे जो कुछ कहना है उसके प्रकाश में आप अपना परीक्षण कर सकते हैं। विश्वास

वह होता है जो अडिग रहता है, वहाँ पर अपेक्षायें नहीं होतीं, कृतज्ञता का भाव नहीं होता और वह कभी बदलता नहीं है। अब मुझे बतायें कि यदि आप दावा करते हैं कि ईश्वर में आपका विश्वास है जिसे मैं समझता हूं कि आप सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी मानते हैं, जो न्याय दान में समर्थ है, साधुओं का संवर्धन और दुष्टों का दमन करता है, आपकी इच्छायें, आशायें आदि पूर्ण करने की क्षमता उसमें है तो आप किसी भी देवी देवता में विश्वास नहीं कर सकते। यह बड़ी सरल सी बात है कि सर्वशक्तिमान प्रभु में विश्वास रखने वाले व्यक्ति को शारीरिक या अन्य दूसरे प्रकार के कष्ट से छुटकारा पाने के लिये किसी दूसरे के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। जब आप दूसरों के पास जाते हैं, तो मतलब यही होगा कि आप नहीं समझते हैं कि विश्वास क्या होता है। विश्वास खो गया है कि ऐसा कहना व्यर्थ है क्योंकि विश्वास कभी भी खोता नहीं। यदि आप समझते हैं कि ईश्वर क्या होता है तो आप पायेंगे कि उसमें अप्रसन्नता जैसी कोई बात नहीं होती। उसकी झूठी तारीफ करने की, उसे रिश्वत देने, भेंट चढ़ाने की, विशेष तरीके से उसकी पूजा या प्रार्थना करने की अथवा विशेष स्थान पर उससे मिलने जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये यह स्पष्ट है कि आप यह सब किये जा रहे हैं और ठीक तरह से सोचे बिना और जरा सी भी समझदारी न दिखाते हुए उसके बारे में बोल रहे हैं। इसलिये मैं आप से यही कहना चाहूंगा कि इन सब बातों के बारे में चिन्तित होना आप छोड़ दें किन्तु अपनी मानसिक मनोदशा से सम्बन्धित प्रक्रिया का तत्परता से अवलोकन करते रहें। और मुझे विश्वास है कि आप सत्य को पा जायंगे। आपके प्रश्नों के मैं जो उत्तर दे रहा हूं उनसे भी आप जहाँ हैं वहाँ से आगे नहीं बढ़ सकेंगे, और उससे आप दुविधा में पड़ सकते हैं क्योंकि यह मेरे द्वारा दी गई जानकारी मात्र होगी, अनुभव नहीं होगा। साक्षात्कार अथवा सत्य या आप उसे जो कुछ कहते हों उसकी ओर ले जाने वाली जीवन में महत्वपूर्ण वस्तु है—अनुभव।"

मुझे आशा थी कि कोई अन्य सज्जन भी प्रश्न करेंगे, तभी बगीचे में किसी हलचल की ओर हमारा ध्यान खिंच गया। सेवक चिल्लाते हुए एक बड़े पेड़ की ओर दौड़ रहे थे। क्या बात है यह जानने के लिए चेट्टियर जी के साथ मैं भी खड़ा हुआ। गुरुदेव शान्त और चुप थे। उन्होंने लोगों से कहा कि वे अपना ध्यान न छोड़ें। जिस स्थान पर सेवकगण एकत्रित हुए थे उसी ओर सबकी आंखें लगी थीं। हमें पता चला कि एक बड़ा सांप वहां पर देखा गया था। सेवक उसके पीछे पड़े थे। सांप एक बड़े नारिकेल वृक्ष की जड़ के खोखले भाग में छिपा हुआ था। सेवकों और मालियों ने मिलकर पेड़ को घेर लिया और वह सांप को खत्म करने के साधन जुटाने लगे। चेट्टियर जी के सुपुत्र को बताया गया कि वे बन्दूक लेकर चले आयें। हमने देखा कि हाथ में बन्दूक लेकर वे आ रहे हैं। उसी क्षण गुरुदेव ने अपनी दृढ़ वाणी में कहा, "रुको, गरीब जन्तु को मत मारो। गुरुदेव नारिकेल वृक्ष की ओर आने लगे। उन्होंने

सेवकों से कहा कि एक ओर हटकर खड़े रहें, और सांप बाहर आने पर उसे न मारें। जहाँ पर साँप के छिपने की सम्भावना थी, सेवकों ने वह स्थान गुरूदेव को बताया। गुरूदेव पेड़ के बहुत पास आ गये और उन्होंने हल्की सी सीटी बजाई। एक बहुत बड़ा, लगभग सात फीट लम्बा सांप अपना फन उठाये बाहर निकला। सचमुच यह भयानक साँप था और हर आदमी डर कर पीछे हटा। उसी समय मुझे ध्यान आया कि गुरूदेव को साँप काट लेगा और अपनी चिन्ता किये बिना मैं गुरूदेव की ओर झपटा। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया। आश्चर्य की बात थी कि वे हंस रहे थे, और जिस हाथ को मैंने पकड़ा था उसमें अपार सामर्थ्य की प्रतीति मुझे हुई। उन्होंने कहा, "माधव, डरने की बात नहीं है, जहाँ पर हो वहीं पर खड़े रहो और देखो कि आगे क्या होता है।" साँप ने अपना फन उठाया, एक क्षण तक चुप रहा, गुरूदेव की ओर देखा फिर धीरे-धीरे उनकी ओर आने लगा। उनके चरणों में उसने घेरा बना दिया। गुरूदेव ने नीचे झुक कर उसे ऐसे उठाया जैसे वह उनका पालतू जानवर हो। गुरूदेव के हाथों में वह इतना निरपराध लग रहा था कि मैं भूल गया था कि वह एक विषैला जीव है। गुरूदेव धीरे से उसे थपथपाते रहे और उन्होंने लोगों से कहा, कि वे सांप से न डरें, यह किसी को नहीं काटेगा। उन्होंने सेवकों से कहा, कि वे अपना काम करें और उस विषधर को हाथ में लिए गुरूदेव अपने स्थान पर बैठ गये। इतने आश्वासन देने पर भी जब तक सांप वहां पर था तब तक गुरूदेव के पास जाने का किसी ने साहस नहीं किया। गुरूदेव की इच्छानुसार, दूध मंगवाया गया। गुरूदेव ने उसे दूध पिलाया। इतना विषैला सांप इतनी सहजता से गुरूदेव के हाथों में खेल रहा था कि देखते ही बनता था। गुरूदेव ने कहा, "यह निरीह प्राणी है और किसी को पीड़ा नहीं देता। जब इसे दुःख पहुंचाया जाता है, सताया जाता है तभी अपनी रक्षा में यह काटता है और यह बात केवल प्राणियों में ही नहीं किन्तु मनुष्य में भी स्वाभाविक है, जो विचारशीलता का दावा करते हैं। यदि उसे प्रेम का विश्वास रहे, तो कोई भी प्राणी दूसरे को पीड़ा नहीं देता।" गुरूदेव के कथन को स्वीकार कर लेना कठिन था किन्तु उन्होंने जो कुछ किया था उसे देखकर, उनकी बात का विरोध करना भी उतना ही कठिन था। गुरूदेव उठे और सांप को गले में डालकर घर की तरफ चलने लगे। चेट्टियर जी ने कुछ उतावली आवाज में पूछा, "आखिर आप इस सांप का क्या करने वाले हैं ?" गुरूदेव ने कहा, "आप इसे घर में रख सकते हैं ? मैं विश्वास दिलाता हूं कि यह किसी को पीड़ा नहीं देगा।" चेट्टियर दम्पति ने कहा—"गुरूदेव हमें क्षमा करें। यह कोई अच्छा दृश्य नहीं होगा और इसे घर में रखने में हमें डर लगता है।"

अतः साँप को बिना सताये किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ देने की बात सोची गई। चेट्टियर जी और गुरूदेव साँप को लेकर कार से बाहर चले गये। उपस्थित लोग अपने घर जाने लगे और मैं चेट्टियर जी के सुपुत्र तथा अन्य महिलाओं के साथ घर की तरफ जाने लगा।

नवां प्रकरण

हम लोग कक्ष में प्रवेश कर रहे थे कि चेट्टियर जी की सुपुत्री ने एकाएक अपने भाई से कहा—"रविन्द्र, कितने आश्चर्य की बात है न, इतना भयानक सांप किसी निरीह प्राणी जैसे गुरूदेव के हाथों में खेल रहा था। मैं खुद तो यही सोचती हूं कि यह सब अलौकिक शक्ति का ही आश्चर्य है।" मैं देख सकता था कि उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में और उसके स्वर में केवल गुरूदेव के प्रति निर्मल श्रद्धा भक्ति का भाव ही झलक रहा था। उसने अपने भाई और मेरी ओर देखा, जैसे हमें अपनी धारणा से अवगत कराना चाहती हो। खिड़की की तरफ जाकर हम बातें करने लगे। रविन् ने अविश्वास भरे स्वर में कहा—"जब गुरूदेव एक मनुष्य हैं तो मैं नहीं कह सकता कि यह कोई अलौकिक बात है। मैं नहीं जानता कि ये सारी बातें कैसे की जाती हैं किन्तु इतना कह सकता हूं कि सम्भव है, गुरूदेव कोई युक्ति जानते हों, अथवा यह हो सकता है कि उनके पास ऐसी शक्तियां हों जैसे अक्सर संपेरों के पास होती हैं।' मृदुला और रविन्द्र की पत्नी को रविन्द्र की यह टिप्पणी अच्छी नहीं लगी। उसने गुरूदेव की तुलना संपेरों से कर दी, यह तो उन्हें जरा भी नहीं सुहाया। इस सम्बन्ध में उन दोनों ने मेरा मत जानना चाहा : मैंने कहा,--जो अलौकिक कहलाती है, ऐसी किसी बात में मेरा बहुत कम विश्वास है, लेकिन उस क्षण मैं गुरूदेव के बहुत पास खड़ा था, इसलिए मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि वह युक्ति नहीं थी। हम दोनों सांप के बारे में कुछ नहीं जानते थे और आप विश्वास रखें, हम उसे रामेश्वरम् से अपने साथ नहीं लाये थे। गुरूदेव ने कोई मन्त्रोच्चारण किया हो, संपेरों या सम्मोहन करने वाले लोगों जैसी कोई क्रिया की हो यह मैंने नहीं देखा। मैंने केवल उनकी हल्की सी सीटी भर सुनी और साँप ऐसे बाहर चला आया जैसे उसने भाषा समझ ली। सच पूछिये तो इस सारी घटना का बौद्धिक स्पष्टीकरण कुछ भी नहीं दिया जा सकता। इसलिए हम कोई धारणा मन मे बनायें इससे अच्छा यही होगा कि हम गुरूदेव से यह बात पूछ लें। मृदुला ने सोचा कि मैं प्रश्न को टाल रहा हूं, इसलिए उसने कहा,--"आप हमें सही बात नहीं बता रहे हैं। हो सकता है कि कोई मत प्रकट करने से आप कतरा रहे हों।" रविन्द्र ने कहा,—"बात कुछ भी क्यों न हो, हमें पता तो चले कि यह सब कैसे किया गया है और इसलिए इस बारे में हमें गुरूदेव से पूछ लेना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वे हमें अच्छी तरह जानते हैं इसलिए उन्हें इससे अप्रसन्नता नहीं होगी।" मृदुला

का कहना था कि निश्चित ही गुरुदेव के पास अलौकिक शक्तियां हैं और वे जड़ तथा चेतन दोनों को ही नियन्त्रित कर सकते हैं। अब तक श्रीमती चेट्टियर भी बातचीत में शामिल हो गई थीं, उन्होंने और रविन् की पत्नी ने इस बात का पूरा समर्थन किया। रविन् ने कहा,—"महिलाएँ श्रद्धालु होती हैं। उन्हें आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। इसलिए जो बातें उनकी समझ में नहीं आ पातीं उन्हें वे अलौकक कहने लगती हैं।" रविन् की पत्नी ने जबाव में कहा,—"पुरुषों को अपनी बुद्धिमत्ता और ज्ञान का गर्व होता है इसलिए अपने अभिमान और अहंकार के कारण वे किसी दूसरे व्यक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते जो उनकी बुद्धि और समझ को चकरा देता है।" मैंने सोचा कि अनावश्यक रूप से बात बढ़ने लगी है और हम लोग किसी बिल्कुल दूसरे विषय पर बात करने लगे हैं।

इसलिए मैं बातचीत का विषय बदलने की बात सोच रहा था कि कोई परिचित महिला अन्दर दाखिल हुई और श्रीमती चेट्टियर से पूछने लगी कि क्या बात चल रही है। बातचीत टूटने से मुझे बड़ा अच्छा लगा। मैंने कहा,—"हम बैठकर बातें करें।" पुनः चर्चा शुरू हुई। गुरुदेव को रविन् मानव कहता तो महिलाओं को जरा भी नहीं सुहाता। श्रीमती चेट्टियर ने कहा,—"गुरुदेव के बारे में इस प्रकार की बातें करना बड़ी खराब बात है, लेकिन रविन् अपनी बात पर अड़ा रहा। उसने कहा,—"जो बात घटती है उस हर बात का कोई न कोई स्पष्टीकरण हमेशा ही होता है, फिर चाहे उसे गुरुदेव ने किया हो चाहे किसी दूसरे ने।" मैंने कहा,—"रविन् की श्रीमती जी की बात से मैं कुछ-कुछ सहमत हूं। अपने अहं को अलग रखकर हमें अपनी बुद्धि और अब तक के ज्ञान की सीमाओं को स्वीकार करना चाहिए। हम यदि ऐसा सोचते हैं कि हमारी शिक्षा ने हमें सब कुछ समझने की योग्यता दे दी है तो यह हमारी गलती होगी। इस विशेष घटना के बारे में सोचें, तो हमने जो कुछ देखा, उसका कोई बौद्धिक स्पष्टीकरण नहीं है, सचमुच ही हमारा अहंकार हमारे समझने के मार्ग में बाधा डाल रहा है।" कार की आवाज सुनकर हमने बातजीत बन्द कर दी। जैसे ही गुरुदेव और चेट्टिलर जी ने कक्ष में प्रवेश किया, हम सब खड़े हो गये। एक क्षण गुरुदेव मुस्कराये, फिर सीधे अपने कमरे में चले गये। चेट्टियर ने स्थान ग्रहण किया। मृदुला ने कुछ उतावली से ही उन्हें पूछा,—"सांप का क्या हुआ ?" चेट्टियर जी ने कहा,—"हम शहर के बाहर गये थे। पहाड़ी के पास गुरूदेव ने धीरे से सांप को छोड़ दिया, घनी जाड़ी की ओर बढ़ये लगे। फिर गुरुदेब ने धीरे से सांप को नीचे छोड़ दिया, और साफ आवाज में उससे कहा, कि किसी को काटना मत। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। सांप जैसे गुरूदेव की भाषा समझ गया हो, क्योंकि खुला छोड़ देने पर थोड़ी दूर तक वह रेंगता रहा, फिर अचानक पीछे लौटा और जहाँ पर मैं और गुरूदेव खड़े थे, उस स्थान तक आया। यह दिखाने के लिये कि उसने गुरूदेव की भाषा समझ ली है वह अपना फन फैला कर शान से डोला, और विदा होने से पहले गुरूदेव के प्रति

जैसे आदर प्रदर्शित कर रहा हो, उसने उनके दोनों चरणों का स्पर्श किया और फिर वह पहाड़ी में चला गया। हम देख रहे थे कि साँप किधर जा रहा है। वह एक बड़ी झाड़ी में घुस गया और फिर आँखों से ओझल हो गया। गुरुदेव अभी भी खड़े थे जैसे किसी की प्रतीक्षा में हों। उसी समय झाड़ी में कोई हलचल सी होने लगी और एका-एक सांप ने अपना सिर बाहर निकाल कर बड़ी सुरीली आवाज में सीटी बजाई जो अभी तक मेरे कानों में गूंज रही है। मैं सोचता हूं कि उसने यह बात बता दी, कि वह झाड़ी में सुरक्षित है और अब किसी सकट की सम्भावना नहीं है। गुरुदेव लौटे और हम यहाँ चले आये।" श्रीमती चेट्टियर ने श्रद्धा से हाथ से हाथ जोड़कर कहा,–"इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरूदेव भगवान् ही हैं।" उन्होंने पुत्र से कहा,—"रविन्, गुरूदेव की प्रसन्नता प्राप्त कर लोगे, तो तुम जीवन भर सुखी रहोगे। ये सब झुठी धारणाए और खराब विचार त्याग दो। अपन को बड़ा सौभाग्यशाली मानना चाहिए क्योंकि गुरूदेव हमारे घर पधारे हैं और उनका अनुग्रह हमे प्राप्त हुआ है।" चेट्टियर जी ने उनकी बात का समर्थन किया।

भोजन तैयार था। गुरूदेव को देखने के लिए मैं उनके कमरे में गया। हम भोजन कक्ष में चले आये। मृदुला न अभी तक उत्सुकता दबाई थी, भोजन परोसने के बाद उसने चर्चा छेड़ दी। उसने कहा,—"गुरूदेव, आप हमें सुबह की घटना के बारे में बतायेंगे?" गुरूदेव ने एक क्षण के लिए उसकी ओर देखा, वे बोले, 'किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो कुछ घटा था उसे आपने देख ही लिया है। साँप ने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा था, फिर भी वह मारा जाता। इसलिए उस निरीह प्राणी को मारे जाने से मुझे बचाना पड़ा।" रविन्द्र ने कहा,—"इतने भयंकर साँप को आप निरीह कहते हैं। किसी को भी काट कर वह उसकी जान ले लेता। मैं नहीं सोचता कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे घात करने वाले जन्तुओं पर दया दिखानी चाहिए। साँप के काटने से कितने ही लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। आपके प्रति आदर रखते हुए, मैं यही कहूंगा कि कारण कैसा भी हो जिसकी वजह से साँप के प्राण बचाने का मोह आपको हुआ हो, आपकी करूणा गलत जगह थी। इस प्रकार के घातक जीव किसी भी प्रकार की दया के पात्र नहीं होते, जहां कहीं भी वे दिखाई पड़े, उन्हें अवश्य मार डालना चाहिये।" गुरुदेव ने कहा —"तुम भावना में बहकर बोल रहे हो, इसलिए तुम्हारी बात सही नहीं है। आवेश या भावना में आकर कोई बात कही जाती है या कोई काम होता है, तो उसके पीछे न तो कोई विवेक रखता है और न ही बुद्धि। इसलिए उसके गलत होने की सम्भावना अधिक होती है, केवल संयोग से ही वह ठीक हो सकता है। क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि जीवन क्या है, मृत्यु क्या है, जन्म क्यों होता है और प्राणी क्यों मरते हैं? यदि तुम सोचते हो कि तुम किसी को जन्म दे सकते हो या किसी का जन्म लेना रोक सकते

हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि तुम पूरी तरह से गलती पर हो। किसी को मारना, किसी को बचाना या ऐसी कोई बात करना किसी के बस की बात नहीं। केवल तुम्हारा अहंकार अथवा अज्ञान ही तुम्हारे से इस प्रकार कहलवा रहा है।" मृदुला को लगा जैसे बात दार्शनिकता की ओर जा रही है। वह दर्शन से अधिक साँप वाली घटना जानने के लिए उत्सुक थी। उसने बातचीत के बीच में ही कह दिया, "रविन्द्र को दर्शन तो गुरुदेव किसी और समय सिखा सकते हैं किन्तु अभी तो मैं यह जानने का प्रयास कर रही हूं कि आपके सीटी बजाने पर तत्काल साँप अपने छिपने के स्थान से बाहर कैसे निकल आया क्या। उसने आपकी भाषा समझ ली?" महिलाओं ने उसकी बात का समर्थन किया क्योंकि वे वातावरण में प्रसन्नता लाना चाहती थीं। उन्हें लग रहा था कि रविन्द्र के अनुचित आक्षेपों के कारण वातावरण गरम हो रहा है। रविन्द्र गुरुदेव से इस प्रकार से बातें कर रहा था यह चेट्टियर जी को भी पसन्द नहीं था। गुरुदेव हंस पड़े और उन्होंने कहा —"मुझे साँप की भाषा तो नहीं आती लेकिन मैं उसे यह समझा सका कि मेरे पास उसके लिए सीधे सच्चे प्यार के सिवा कुछ नहीं है और मेरे कारण उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। केवल साँपों के लिए ही नहीं संसार के हर जीव के लिए यही बात है। यही एक ऐसी भाषा है जिसे बोले बिना ही समझ लिया जाता है। यदि आप केवल यह जान लें कि प्रेम क्या होता है तो आप निर्भय हो जाएँगे और आपसे भी किसी को डर नहीं लगेगा। हिंसक जानवरों से लेकर छोटे-छोटे कीड़ों तक, आकाश को छूने वाले पहाड़ों से लेकर सागर जल की रेत तक, सब प्रेम की भाषा समझ जाते हैं। अहंकार, कब्जा करने की लालसा, कमाने की इच्छा, सत्ता, धन आदि का मोह, यह सब बातें ही प्रेम समझने के मार्ग में बाधा डालती हैं।" मृदुला ने कहा—"क्षमा करें गुरुदेव, यदि साँप आपकी भाषा नहीं समझता था तो फिर क्यों वह आपके चरणों में गिर पड़ा और उसे आपने उठा लिया?" गुरुदेव ने कहा— 'यह तो बड़ी सरल बात है। जब साँप ने जान लिया कि उसका जीवन बचा लिया गया है तो वह कृतज्ञ हुआ और केवल इसी प्रकार से वह अपनी कृतज्ञता व्यक्त करसकता था।" मृदुला अपनी बात पर अड़ी रही और उसने कहा—"मुझे लगता है कि आपके पास अलौकिक शक्तियाँ और सिद्धियाँ भी हैं।" गुरुदेव जोर से हस पड़े और उन्होंने कहा—"बेटी, केवल तुमने ही नहीं, वरन् सभी उपस्थित लोगों ने यहीं सोचा होगा। परिस्थिति वातावरण और जो शिक्षा आपने पायी है, उसके कारण आप इन घटनाओं की ओर ऐसे देखते हैं जैसे आपने तय कर लिया है या यह कहना चाहिए कि आप अपने तरीके से उनकी व्याख्या करते हैं। यदि आपको उचित स्पष्टीकरण नहीं मिलता, तो आप उसे अलौकिक कह सकते हैं। अभी आपके लिए जो अलौकिक है, वह आपको स्वाभाविक तभी प्रतीत होगा जब आप जान लेंगे कि वह क्या है? इसलिए ज्ञान और अज्ञान का ही यह भेद है।" मैं नहीं सोचता कि गुरुदेव के स्पष्टी-करण ने सबको सन्तुष्ट कर दिया, किन्तु रविन् और मृदुला चुप रहे। भोजन के पश्चात् मैं कमरे में चला आया।

मैं चाहता था कि मद्रास में अपने प्रवास के बारे में पिता जी और भाईयों को पत्र लिख दूँ। दोपहर में, मेरा मित्र अपनी पत्नी को साथ लेकर, मुझे मिलने आया था और हमने इकट्ठे ही चाय पी। वे मुझे भोजन के लिए निमन्त्रण देने आये थे। लेकिन मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। मैंने उन्हें बताया कि मुझ से अपेक्षित है कि मैं गुरुदेव की सेवा में उपस्थित रहूं और मेरी स्वयं की यह इच्छा है कि मैं अधिक से अधिक समय उनके साथ रहूं। मेरा दृष्टिकोण जानकर, फिर उन्होंने मुझे आग्रह नहीं किया। उन्होंने कहा—"हम दोनों गुरुदेव की कल शाम वाली बात चीत से बड़े प्रभावित हैं और सुबह की साँप वाली घटना भी हमने सुनी है।" वास्तविक घटना का सारा विवरण और साथ ही गुरुदेव ने इस विषय पर जो कुछ कहा था वह मुझे बताना पड़ा। मेरे मित्र ने कहा कि गुरूदेव का स्पष्टीकरण उसे नहीं जंचता, तब मैंने कहा—"ऐसी घटनाओं के लिए कौन सा दूसरा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हो सकता है? मुझे तो गुरुदेव का स्पष्टीकरण ही उपयुक्त प्रतीत होता है और यदि कोई प्रेम की उस कोटि को पा लेता है तो जड़ और चेतन दोनों को नियन्त्रित कर लेना सम्भव हो सकता है। अब यह समस्या बनी रहती है कि उस प्रेम को पायें कैसे? गुरूदेव जैसे महान् पुरूषों से यह सीख लेना सम्भव हो सकता है कि प्रेम कैसे किया जाता है? हम काफी समय तक इस विषय पर बातचीत करते रहे। तभी एक सेवक ने अन्दर आकर बताया कि कक्ष में लोग बैठ चुके हैं और गुरूदेव ने मुझे बुलाया है। हम लोग कक्ष में पहुंचे। कक्ष पूरी तरह भर चुका था। हम गुरूदेव के सामने बैठ गये। कल शाम जिस सज्जन ने प्रश्न किया था उसी ने उठ कर पूछा - "गुरूदेव, क्या कल के समान आज भी अपने प्रवचन से हमें लाभान्वित करेंगे?"

गुरूदेव ने कहा—"प्रत्येक व्यक्ति को प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता है। लेकिन प्रश्न किसी अकेले व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर सभी के लिए समान रूप से उपयोगी होने चाहिए क्योंकि मैं जो कुछ कहूंगा उससे केवल एक का ही नहीं, बल्कि बहुत लोगों की समस्याओं का हल निकल आना चाहिए।" उस सज्जन ने कहा—"कल आपने हमें बताया कि अपने जीवन के दुःखों के लिए हम ही उत्तरदायी हैं और यदि हम समझ लेंगे कि भावनाओं, वासनाओं आदि के द्वारा जीवन कष्टमय कैसे बनता है तो हमें अपेक्षित सुख मिल जायेगा और सुख के फलस्वरूप शान्ति प्राप्त होगी। आपने यह भी कहा था कि गुरू और प्रक्रिया केवल पलायन मात्र हैं। आपके कथन पर मैंने विचार किया है लेकिन अभी भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ हूं। मुझे लगता है कि प्रक्रिया के बिना भावनाओं, दुख, क्रोध, काम और लोभ को समझा नहीं जा सकता और उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए शांन्ति और सुख पाने की कोई न कोई प्रक्रिया अवश्य होनी चाहिए। उस व्यक्ति को, जो राह दिखाता है, गुरू कह सकते हैं, यदि आपको इस शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है।" गुरूदेव ने कहा—"मैंने कल जो कुछ कहा, उस पर आपने सही ढग से विचार नहीं किया। यह दोष आपका नहीं है।

परम्पराए, वातावरण, शिक्षा, पालन-पोषण, सामाजिक परिस्थिति आदि के कारण आप नहीं जानते कि किस प्रकार सोचना चाहिए और यह इससे भी कम जानते हैं कि अतीत की स्मृतियों और भविष्य की उपलब्धियों की आशा की सहायता लिए बिना अपनी समस्याएं कैसे सुलझनी चाहिएं। अब आप किसी समस्या को पहले से सोची मान्यताओं, पूर्वग्रह, पक्षपात अथवा अतीत की स्मृतियों को साथ में रखकर सोचते हैं तो मुझे कहना चाहिए कि समस्या को नहीं समझ सकते और आपके हल अधूरे होंगे और त्रुटिपूर्ण भी। समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में तभी देखा जा सकता है जब उसे समझने का भाव शुद्ध होगा, और किसी भी दूसरी बात से प्रभावित नहीं रहेगा। जब आप प्रक्रिया की बात कहते हैं तब आप सोचते हैं कि कोई तो इस मार्ग पर चला होगा, उसमें बाधाएं नहीं होंगी और जो व्यक्ति प्रक्रिया सिखा रहा होगा उसने जरूर लक्ष्य को पा लिया होगा। आप यह भी सोचते हैं कि केवल उसके निर्देशों का पालन भर करने से आप निश्चित रूप से लक्ष्य पा लेंगे। आपके सारे जीवन में आपको इसी प्रकार से सोचने के लिए कहा गया कि किसी व्यक्ति का अनुसरण करने पर उस विशेष उद्देश्य की प्राप्ति होती है। किसी निश्चित ध्येय तथा प्रक्रिया का विचार अपरिहार्य रूप से मानसिक विफलता और निराशा की ओर नहीं ले जाता है क्योंकि आकांक्षा, धन कमाने की इच्छा आदि की तृप्ति नहीं होती। तिस पर भी आप के ध्येय और आदर्श भी उनकी ओर प्रगति होने के साथ-साथ बदलते जाते हैं। इसी प्रकार से संसार चल रहा है और आप सब लोग दुःखों और कष्टों की शिकायत कर रहे हैं। इस बात पर तरस आता है, कि आप अनुभव से भी सीख नहीं ले पाते हैं जबकि आपकी वर्तमान तलाश किसी भी प्रकार आपको सुख शान्ति के समीप नहीं ले जाती। कितनी आश्चर्य की बात है कि, आज तक इतना अनुभव पाने पर भी आपकी अपनी मान्यताएं ही नहीं हैं। सच्ची बात तो यह है कि आपको प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है। यदि केवल आप अपने स्वयं के जीवन और कार्यों आदि की ओर दृष्टिपात करते हैं, उनका अवलोकन करते हैं, क्या मैं जान सकता हूं कि जब आपको किसी वस्तु के विषैली होने के बारे में पता चलता है तो उसका सेवन न करने के लिए आपको किस प्रक्रिया, किस उपदेश ने सिखाया है? उसी प्रकार यह भी बताइए कि किस प्रक्रिया ने आपको यह सिखाया है कि सांप को नहीं छूना चाहिए, जलती आग में नहीं कूदना चाहिए, अपने कपड़ों में आग नहीं लगा लेनी चाहिए अथवा समुद्र में छलाँग नहीं लगानी चाहिए। ये सारी बातें सिखाने के लिए कौनसा गुरु आया? गुरु अथवा प्रक्रिया के बिना ही इस नगर के प्रतिष्ठत नागरिक हैं। मैं कह सकता हूं कि केवल अवलोकन और चिन्तन से ही आपने यह स्थान प्राप्त किया है। चूंकि आपने इसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना इसलिए आपने इस प्रकार अपने जीवन को ढाल लिया। प्रतिष्ठा, धन आदि प्राप्त करने में आपने कई वर्ष बिता दिये क्योंकि आपने

सोचा कि इस प्रकार की प्राप्तियों से आपको सुख और शान्ति मिलेगी। अपने 'अहं' की तुष्टि के लिए आपने पर्याप्त समय और धन बरबाद किया है। कुछ सीमा तक आपका भ्रम दूर हो गया है। इसलिए आप शिकायत करते हैं कि इतना सारा कर चुकने के बाद अभी भी आप दुःखी और कष्टों में हैं। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि आपके सारे प्रयास गलत दिशा में थे ? आपने परिणाम का अनुमान कर सोचा होता तो आपको बहुत पहले विश्वास हो गया होता कि शान्ति और सुख इस प्रकार नहीं मिलते। जब हम किसी वस्तु की खोज वहां पर करते हैं जहां पर उसका अस्तित्व नहीं होता तो क्या हमें अपनी खोज रोककर अपनी गलतियों के बारे में गम्भीरता से सोच अपने को नहीं सुधारना चाहिए ? इसके लिए किसी गुरु अथवा प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने स्वतः का अवलोकन, प्रामाणिक चिन्तन और अनुभव हमें सही दिशा में ले जाते हैं।

"आप सभी ने शान्ति और सुख की खोज करने में बाह्य वस्तुओं पर प्रयास किया है। यही समय है जब आपको अपने अन्तर में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में सोचना और समझना चाहिए, उसका अवलोकन करना चाहिए और उसका ध्यान रखना चाहिए। जिस क्षण आपको विश्वास होगा कि लोभ, इच्छा, आकांक्षा आदि बातें आपके हितों को हानि पहुंचाती हैं अथवा ऐसा कहें कि आपके सुख शान्ति के मार्ग में बाधा बनकर खड़ी हैं तो आप बिना किसी प्रयास के उसी तरह उन्हें दूर कर देंगे जैसे कि आप सांप, आग, विष इत्यादि को अपने से दूर रखते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी प्रयास के बिना, केवल आपकी प्रतीति के कारण ही वे आपसे हट जायेंगी, आप उनसे मुक्ति पा लेंगे और मुझे पूरा विश्वास है कि इसके लिए आपको गुरू अथवा प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है। दृढ़ विश्वास और अनुभव में समय-अवकाश नहीं है। जिस क्षण आपको दृढ़ विश्वास होगा, उसी क्षण आप स्वतन्त्र हैं। इसलिए दृढ़ विश्वास और अनुभव के बीच किसी प्रकार की प्रक्रिया का अस्तित्व नहीं है। क्योंकि प्रणाली अपना विचार ही समय की अवधि के अर्थ का सूचक है (समय-अवकाश अथवा अवधि उसमें उपलक्षित रहती है)। प्रक्रिया में अपेक्षा और परितुष्टि का भाव ये उपलक्षित तत्व हैं और इसलिए उनका परिणाम मानसिक विफलता और निराशा में होता है।"

एक चतुराई से भरा प्रश्न पूछा गया, "क्षमा करें महाराज, आप जो हमें यह मनोदशा के कार्य का अवलोकन अथवा गम्भीर चिन्तन की बात बता रहे हैं उसे भी तो प्रक्रिया और आपको गुरू कहा जा सकता है क्योंकि आपने हमें सही ढंग से विचार करने का मार्ग बताया है। फिर, हम समझ नहीं पा रहे हैं कि आप प्रक्रिया की निन्दा क्यों करते हैं ?"

गुरूदेव ने कहा—"इस विचार के साथ आप चतुराई से खिलवाड़ कर रहे हैं और आप सही हैं यह सोचकर स्वयं को ही धोखा दे रहे हैं। मैं किसी चीज को बुरा नहीं कहता और प्रक्रिया को तो जरा भी नहीं, लेकिन मैं चाहता हूं कि आप यह समझ लें कि वह आपको सत्य की अनुभूति अथवा साक्षात्कार की ओर नहीं ले जाती।

प्रक्रिया तथा गरू इन शब्दों के पीछे का भाव इतना सुबोध और सरल नहीं है जितना कि आप समझ रहे हैं। इस वार्तालाप में, मैं जनसामान्य का ही विचार कर रहा हूं, कुछ थोड़े से अपवादों के बारे में नहीं सोच रहा हूं। जब कोई समस्या खड़ी हो जाती है, किसी परेशानी का सामना करना पड़ता है अथवा जब आपको अपना लक्ष्य अथवा महत्वाकांक्षा प्राप्त करनी होती है आप प्रणाली की बात करते हैं। जिस ध्येय अथवा हेतु के लिए आपने प्रक्रिया अपनाई होती है, वह आप पूरी तरह से जानते हैं। यह कोई अंधेरे में छलांग लगाने अथवा बिना उद्देश्य के भटकने जैसी बात नहीं होती। अपनी समस्याओं के हल या प्रक्रिया के परिणाम का निश्चित विचार आपके मस्तिष्क में रहता है। आप यह भी जानते हैं कि यदि आपको कोई राह दिखा दे तो आप निश्चित रूप से अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच जायेंगे। इसलिए आप प्रक्रिया बताने वाले गरू की खोज करते हैं। आपको इस बात का ध्यान रहता है कि किसी व्यक्ति ने अपनी महत्वाकांक्षा की प्राप्ति किसी प्रक्रिया का अनुसरण करके की है और प्रक्रिया को जानने के लिए अथवा उसे प्रदान करने के लिए गरू की आवश्यकता होती है इसलिए आप ऐसा करते हैं। सम्भव है कि धार्मिक अथवा अन्य पुस्तकें पढ़कर या उस प्रक्रिया का अनुसरण करने वाले लोगों के बताने से आपकी यह धारणा बनी हो। अतः आप इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आपको आवश्यकता है एक प्रक्रिया और गरू की और एक बार यह मिल गया तो आपकी महत्वाकांक्षा अथवा लक्ष्य चाहे कुछ भी हों, आप उसे प्राप्त कर लेंगे, जिस प्रकार रेलगाड़ी या गाड़ी या किसी दूसरे वाहन में बैठकर व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच जाता है। जब आप किसी रेलगाड़ी में बैठ जाते हैं तो आपको इस बात से संतोष रहता है कि मंजिल अथवा गन्तव्य स्थान तक पहुंचने के लिए प्राप्त परिस्थितियों में आपने पूर प्रयास कर लिए हैं। गरू के द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करते हुए यदि आपको वांछित फल की प्राप्ति नहीं होती तो आप संशय में पड़ जाते हैं और कभी-कभी आपको यह भी लगने लगता है कि आपके साथ धोखा हुआ है, बदमाशी की गई है। अब आप क्या करते हैं कि प्रक्रिया को पूरी तरह त्याग देते हैं अथवा उसे मूल रूप में बदल देते हैं, दूसरा गरू कर लेते हैं और नयी प्रक्रिया अपना लेते हैं। कभी-कभी तो आप अपना लक्ष्य बदल देते हैं अथवा अपनी महत्वाकांक्षा के साथ कोई समझौता कर लेते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि आपका सारा संघर्ष वास्तविकताओं का सामना करने, समस्या को समझ लेने में ही चल रहा है और इसलिए आप गुरू और प्रक्रिया खोजते रहते हैं। यह केवल पलायन के सिवा कुछ भी नहीं है।

"सत्य, आनन्द, साक्षात्कार, ईश्वर आदि ऐसे अनुभव हैं जो परिकल्पना की शक्ति और अभिव्यक्ति से परे हैं, अपरिभाषेय हैं और कभी भी निश्चित स्वरूप के नहीं हो सकते। इसलिए उन्हें आप प्राप्त आदर्शों अथवा अपनी समस्याओं के हल के रूप में नहीं देख सकते। वह एक अनुभव है शिक्षा अथवा संस्कृति की निश्चित शैली नहीं

है। अनुभव होने से वह तत्काल होता है, तात्पर्य यह है कि वह वर्तमान में होता है, भविष्य में नहीं। इसलिए किसी भी प्रक्रिया के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि प्रक्रिया क्रमशः एक चरण से दूसरे चरण, एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक होती है, उसमें समय का तत्व निहित है। अनुभव किसी भेंट के समान नहीं दिया जाता, ज्ञान अथवा जानकारी के समान प्रदत्त नहीं हो सकता, शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, अनुभव के सिवा ईश्वर, सत्य, आनन्द, सात्कार आदि को समझ लेने का कोई दावा चाहे वह बौद्धिक स्तर पर हो अथवा किसी अन्य प्रकार से किया गया हो केवल अज्ञान, अहं का दिखावा, शिक्षा का आडम्बर अथवा पुस्तकों में पढ़े ज्ञान के अलावा कुछ भी नहीं। इस प्रकार आप देखते हैं कि तथ्य से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करने अथवा किसी मूर्त्त वस्तु को पाने के लिए प्रक्रिया का एक निश्चित स्थान जीवन में है। वह आपको अनुभव नहीं करा सकती, अमूर्त्त तक नही पहुंचा सकती। गायन कला में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए आपको शिक्षक की आवश्यकता होती है, वहाँ पर एक प्रक्रिया है, क्रमिक प्रगति है, समय का तत्व है और समय-समय पर आपकी प्रगति भी आंकी जा सकती है। यही बात सभी तथ्यों से सम्बन्धित प्राप्तियों के लिये लागू होती है। योग अपने किसी भी रूप में तथ्य से सम्बन्धित प्राप्ति ही कहा जा सकता है, वह आपको योगिक क्रियाओं में प्रवीणता प्राप्त करा सकता है किन्तु आपको अनुभव अथवा साक्षात्कार करा देने की शक्ति उसमें नहीं है। योग की सारी शक्तियां जिसके पास हैं ऐसे व्यक्ति को भी साक्षात्कार न हुआ हो यह संभव है और यह भी सम्भव है कि योग के बारे में जरा भी कल्पना न हो तो भी किसी व्यक्ति को साक्षात्कार हो सकता है। इस तरह आप देखेंगे कि आवश्यकता है तो केवल अनुभव की। प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त होने वाली उपलब्धि की आवश्यकता नहीं है। आन्तरिक गतिविधि का अवलोकन, उसका चिन्तन और दृढ़ विश्वास का इनमें रूपान्तर का तत्काल प्रभाव रहता है। यह इतनी प्रचण्ड गतिविधि है कि आप केवल वर्तमान में जीते हैं और आपको अतीत अथवा भविष्य का बोध नहीं होता। उसमें किसी परम्परा या योजना का अस्तित्व नहीं रहता।

"इसलिए आपके अंतर में जो कुछ गतिविधि हो रही है उसका ध्यान रखकर आप अवलोकन करते रहें। आपने अपने समूचे जीवन में कुछ तो भी बनने के लिए, किसी ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किए हैं, काफी परिश्रम किया है। अर्थात् इसके पीछे सुख और शान्ति पाने का भाव ही था। अब आपको वास्तविकता जान लेनी चाहिए कि जहां तक आपके सुख का प्रश्न है, आपके सारे प्रयास व्यर्थ रहे हैं। इसके विपरीत आप में "मैं" का भाव आ गया है और जितनी अधिक उपलब्धियां हों, यह "मैं" उतना अधिक शक्तिशाली और बड़ा बनता जाता है। आपके शरीर, इन्द्रियों और मन आदि पर उसने पूरा कब्जा कर लिया है। उसने आपकी दृष्टि को अंधा बना दिया है, और वह आपके सही चिन्तन में और इमानदारी से समझ लेने में बाधा

डाल रहा है। आपका उसने जितना नुकसान किया है और वह किस प्रकार आप और सच्चे सुख के बीच रुकावट डाले खड़ा है, आप स्वयं को ही इसका अवलोकन करना चाहिए। जैसे ही आप प्रामाणिक चिन्तन और आन्तरिक गतिविधि का अवलोकन करना प्रारम्भ करेंगे आप कारणों और कार्यों से अवगत होंगे। आपका "मैं" गलने लगेगा और "मैं" का अहसास जैसे-जैसे कम होता जायेगा वैसे-वैसे आपको राहत मिलती रहेगी। "मैं" के घटते जाने से किसी बाहरी सहायता अथवा प्रक्रिया के बिना ही आपकी समस्याएं हल होंगी और परेशानियां दूर होंगी। आपको समस्या या परेशानी नहीं रहेगी।

"जब आप शान्ति चाहते हैं तब आप शोर मचाने वाले तत्वों को अपने कमरे से बाहर करते हैं या शोर से दूर किसी शान्त स्थान में बैठ जाते हैं। इसी प्रकार यदि आप आन्तरिक शान्ति चाहते हैं, तो आप शान्ति भंग करने वाले तत्वों की खोज कर उन्हें निकाल बाहर करें, यह केवल समझने से ही सम्भव है, दूसरे तरीके से नहीं। प्रामाणिक और गम्भीर चिन्तन किये बिना इस संसार में कुछ भी प्राप्त नही होता। सुख और शान्ति की खोज में जब आप गम्भीर और प्रामाणिक होंगे और अन्तर में ढूढना प्रारम्भ करेंगे तो आपको स्वयं अपनी सारी समस्याओं के लिए उत्तरदायी तत्वों और कारणों का पता चलेगा। जिस क्षण आप यह जान लेंगे, आप जो चाहते हैं वह आपको मिल जायेगा। फिर आप गुरु अथवा प्रक्रिया के लिए नहीं कहेंगे। मैं सोचता हूं कि मुझे जो कहना था, अपनी योग्यतानुसार उसे समझा देने का भरसक प्रयत्न मैं कर चुका हूं और उसका अभिप्राय आपने समझ लिया होगा।"

कक्ष में पूरी तरह शान्त थी। गुरुदेव के कथन ने हर व्यक्ति को गम्भीरता से सोचने के लिए मजबूर किया। कोई दूसरा प्रश्न नहीं पूछा गया। कुछ क्षण तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् गुरुदेव खड़े हुए। हम लोगों ने खड़ होकर उनके लिए मार्ग बना दिया। कुछ देर बाद कक्ष खाली हो गया। कक्ष के बाहर मेरा मित्र अपनी पत्नी के साथ खड़ा होकर मेरी राह देख रहा था। दोनों पर गुरुदेव ने मानो जादू कर दिया था। उन्होंने कहा—"गुरुदेव सच्चे सन्त हैं और निस्सन्देह महान् पुरुष हैं।" अपने निवास स्थान गुरुदेव को आमन्त्रित करने की उनकी इच्छा थी और इसलिए उन्होंने मुझ से यह बात कही। मैंने स्वीकार कर लिया कि अभी तक मैं गुरुदेव के स्वभाव से परिचित नहीं हू और यह नहीं कह सकता कि वे आमन्त्रण स्वीकार करेंगे या नहीं। फिर भी मैंने उन्हें कहा कि कल सुबह जब वे मिलने के लिए आयेंगे, उस समय उनकी ओर से मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूंगा।

दसवाँ प्रकरण

रात के समय हमें चेट्टियर जी के मित्र श्री मुदलियर के निवास पर आमंत्रित किया गया था। श्री मुदलियर भी एक सम्पन्न उद्योगपति थे। वहाँ पर हमारा अच्छा आदर सत्कार हुआ। जलपान के अतिरिक्त संगीत का भी कार्यक्रम था और गुरुदेव ने संगीत में बड़ा रस लिया। रात में हम घर लौट आये। दूसरे दिन प्रातः मेरा मित्र अपनी पत्नी के साथ गुरुदेव से भेंट करने आया। उन्हें साथ लेकर मैं गुरुदेव के कमरे में गया। जब उन्होंने हमें देखा तब वे बोले मैं जानता हूं कि आप किसलिए आये हैं। मेरे स्वास्थ्य के लिये भारी खाना ठीक नहीं रहता और अच्छा भोजन करने का मैं आदी नहीं हूं। आप निराश न हों, एक दिन मैं आवश्य आपके घर एक प्याला दूध ग्रहण करने जाऊंगा, यही चीज मुझे सबसे ज्यादा अच्छी लगती है। मेरे मित्र की पत्नी ने फिर भी गुरूदेव से आग्रह किया और गुरुदेव ने दोपहर के पश्चात् उनके घर आने के लिए स्वीकृति दी, तब मुझे बड़ी खुशी हुई। उसी समय मुदलियर जी के साथ चेट्टियर जी ने कमरे में प्रवेश किया और गुरूदेव के कमरे में चायपान का प्रबन्ध हुआ। चायपान के बाद मुदलियर जी ने कहा,—"गुरुदेव पिछले कुछ दिनों से आप हमें जो कुछ बता रहे हैं, उसे मैं बड़े ध्यान से सुन रहा हूं लेकिन आपके इस विचार से सहमत नहीं हो पाता कि हमारा जीवन केवल अपेक्षाओं और परितुष्टि के भाव से ही प्रेरित रहता है। अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो क्या आपके कथन का तात्पर्य यह है कि परिवार का पालन पोषण, मित्रों की सहायता, दान देना, सामाजिक कार्य करना आदि में केवल अपेक्षायें और परितुष्टि का भाव ही विद्यमान है?" गुरुदेव ने कहा,—"प्रमाणिकता से सोचने पर आपको यही दिखाई देगा कि आपके सारे प्रयास और परिश्रम केवल अपेक्षाएं और परितुष्टि के भाव से ही किये जाते हैं। आपकी पत्नी और सन्तान से आपको कुछ अपेक्षाएं होती हैं और आप सदैव यही चाहते हैं कि उनके द्वारा आप सन्तुष्ट होते रहें। यदि वे आपकी अपेक्षाओं की पूर्ति करने में असफल होते हैं तो आपको क्षोभ होता है, आप निराश होते हैं, क्रोधित होते हैं और आपको लगता है कि आपका निरादर हुआ है। प्रारम्भ से ही अपने परिवार के लिए कोई योजना अथवा आदर्श आपके सामने रहता है और आप चाहते हैं कि परिवार के सभी सदस्य उसके अनुसार चलें क्योंकि आप जो नहीं हैं वह बनने की आपकी महत्वाकांक्षा रहती है अथवा आप उसको प्राप्त करना चाहते हैं जो आपके पास नहीं है

क्या आप यह कहना चाहते हैं कि किसी अपेक्षा के बिना ही आप परिवार चलाते हैं? जब आपकी कोई महत्त्वाकांक्षा होती है तो आप स्पष्ट रूप से मान लेते हैं कि आपको अपेक्षाएं और परितुष्टि की कामना है। ठीक ये ही बातें प्रेम का आनन्द लेने से आप को रोकती हैं। प्रेम उदात्त शुद्ध और सरल होता है। वह अपेक्षाओं और परितुष्टि की कामना पर आधारित नहीं होता। आप प्रेम के बारे में जो बात करते हैं वह महत्त्वाकांक्षा, अपेक्षा तथा परितुष्टि की कामना पर आधारित सुविधा का लगाव मात्र है। मित्रों की सहायता, दान तथा सामाजिक कार्य करते समय आप उसके बदले में कृतज्ञता, यश, नाम, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आपके अच्छे कार्यों की मान्यता मिले, इसकी अपेक्षा रहती है। यदि आपके अच्छे कार्यों के बदले में आपको ये चीजें नहीं मिलती तो आप सोचने लगते हैं कि आपके साथ अन्याय हुआ है और कभी कभी आप निराश भी होते हैं। जिन्हें आपने सहायता दी है वे लोग जिस समय अपने शब्दों अथवा व्यवहार से आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं तो आपको प्रसन्नता होती है। जब आपकी दानवीरता के लिए आपकी प्रशंसा की जाती है अथवा आपके द्वारा दिये गये धन को लोगों से मान्यता मिलती है तो आपका दिमाग चढ़ जाता है। आपका मन्दिर में जाना, भगवान से प्रार्थना करना भी परितुष्टि की भावना से रहित नहीं होता है। आप अपने सारे आचरण भावनाओं, संवेदनाओं और मन के सुख की छानबीन करें तो आपको यही बात दिखाई देगी। इसलिए मैं चाहता हू कि आप ईमानदारी से इन सारी बातों पर सोचे और आप स्वतः ही मेरे कथन की सत्यता परख लें। आयु अनुभव, यश, सम्पत्ति, पद के साथ प्रत्येक व्यक्ति में यह भाव बढ़ जाता है और वह उसकी सच्ची समझ, प्रसन्नता, सुख, शान्ति, प्रेम तथा दूसरा सब कुछ तो उदात्त है, उसमें बाधा डालता है।"

रविन्द्र को साथ लेकर मृदुला शोर मचाती हुई अन्दर आई। गुरुदेव का कथन समाप्त हो चुका था। सभी लोग उसकी ओर देखने लगे। वह गुरुदेव के पास बैठकर बोली,—"मुझे आप से एक शिकायत है। आप सन्त हैं और महान् पुरूष हैं। आप हमेशा कहते हैं कि आप हमें प्यार करते हैं। लेकिन आपने हमें कुछ नहीं दिया, कुछ नहीं सिखाया; हमारे परिचित लोग हमें पूछते हैं कि गुरूदेव से तुम्हें क्या मिला, उन्होंने तुम्हें क्या सिखाया? तो हमें लज्जित होकर यही कहना पड़ता है कि हमें कुछ नहीं मिला। आपका प्रेम और आशीर्वाद हमें प्राप्त है, इसलिए हम अपने आपको भाग्यवान् और गौरवशाली समझते हैं, लेकिन इससे ज्यादा स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली कौन सी उपलब्धि हमारे पास है? क्या आप हमें किसी बात को ग्रहण करने के योग्य नहीं मानते या आप नहीं चाहते कि हमें कुछ दिया या सिखाया जाये?" गुरुदेव जोर से हंस पड़े और हम सब लोग उसका उतना स्पष्ट प्रश्न सुनकर चकित हो गये यद्यपि हमने अपने मन में उसके धैर्य और स्पष्टवादिता की प्रशंसा की।

गुरूदेव ने कहा,—"तुम बड़ी शरारती हो, तुम उम्र मे तो बढ़ गयी हो पर

समझ में नहीं । मुझे बताओ कि कौन सी बात है जिसे तुम्हारे पूछने पर मैंने नहीं बताया ? जब तुम छोटी बच्ची थीं, तब मैंने तुम्हें लाड-प्यार दिया है, मैं तुम्हारे साथ खेला हूं और तुमने और रविन् ने जो कुछ मांगा मैंने तुम्हें दिया है ; मुझे लगता है कि तुम्हें किसी ने बहका दिया है, तुम्हारे मन में यह नई बात बैठा दी है ।"

चेट्टियर जी ने बीच में बोलने का प्रयास किया किन्तु गुरूदेव ने उन्हें कहा— "कृपया उसे बोलने दीजिये । मुझे अच्छा लग रहा है ।" मृदुला ने कहा,—"एक प्रकार से आपने मुझे और रविन्द्र को धोका दिया है । प्रकट दिखाने वाली अथवा स्थायी रूप से रहने वाली कोई भी बात आपने हमें नहीं दी । आप तो हमें अभी भी ऐसे मानते हैं जैसे हम बच्चे हों, आप नहीं सोचते कि अब हम बड़े हो गये हैं ।" गुरूदेव ने कहा— "अब मैं तुम्हें बड़ी लड़की मान कर बोल रहा हूं । मैं सोचता हूं कि तुम्हारे पास वह सब कुछ है जो कि किसी लड़की के पास होना चाहिए । तुम्हारे माता-पिता सम्पन्न हैं, तुम्हारा विवाह एक धनी, सुशिक्षित, तरूण, सुन्दर युवक के साथ हुआ है और वह तुम्हे प्यार करता है । तुम्हारी सेहत अच्छी है । तुम्हें शीघ्र ही एक स्वस्थ शिशु की भी प्राप्ति होगी, यदि तुम उसकी कामना लेकर मेरे पास आई हो ।" हम सब हंस पड़े । मृदुला के गालों पर गुलाब खिल गए । उसने कहा,—"कृपया मेरी हँसी न करें । मैं सचमुच गम्भीर हूं । मुझे आपके विरूद्ध एक सही शिकायत है और जब तक आप मुझे उत्तर देते नहीं, तब तक मुझे सन्तोष नहीं होगा ।"

गुरूदेव ने कहा,—"अब मुझे बताओ, वह क्या है जिसकी तुम इच्छा करती हो ? ऐसी कौन सी चीज है जो तुम्हें नाखुश और दुखी बना रही है ? वह क्या हो सकता है जिससे तुम सन्तुष्ट नहीं हो ? यह जान लेना, कि कब्जा करने की चाह, कामना, एकाधिकार, सत्ता, प्रतिष्ठा, उच्च पद आदि का कोई अन्त नहीं, इनकी तृप्ति कभी नहीं होती । जब तुम नाव में बैठी हो तब तुम उसका चलना नहीं रोक सकतीं । उसी प्रकार संसार में रहकर सांसारिक दुःखों को तुम नहीं टाल सकतीं । जब तुम विवाह कर लेने पर सन्तान चाहती हो, तो तुम गर्भावस्था के कष्ट और प्रसूति वेदनाएं नहीं टाल सकतीं ।"

मृदुला ने कहा,—"मैं आपकी बात समझ रही हूं । मुझे पूरा विश्वास है कि पहले की तरह आगे भी आप हमारी कठिनाईयों, दुःख दर्दों और दुर्भाग्य के प्रसंगों में हमारी सहायता करते रहेंगे ।" उसके चेहरे के भावों से साफ जाहिर था कि वह सत्य बोल रही है । गुरूदेव ने कहा,—"यदि तुम्हें इतना दृढ़ विश्वास है, मुझ में तुम इतना अधिक विश्वास रखती हो, तो मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि फिर तुम शिकायत क्यों कर रही हो ?" रविनू ने कहा,—"मृदुल ठीक ही कहती है कि आप हमें अभी बच्चे मानते हैं और तर्क देकर टाल देते हैं । स्पष्ट कहें तो उसकी शिकायत सही है । क्योंकि आपने

हमें बताने लायक कोई बात नहीं दी है ।" गुरुदेव ने कहा,—"तुम दोनों भ्रम में हो । तुम कुछ मांगने के लिए आए हो लेकिन शब्दों में उसे किस प्रकार प्रकट करना चाहिए यह तुम्हें नहीं आता । बहुत लोगों के साथ यही होता है । ध्येय यदि स्पष्ट रूप से सामने न हो तो प्रत्येक व्यक्ति भ्रम में रहता है ।

अब तुम्हारा उदाहरण ही लें । तुम कुछ मांगने आये हो । इसका अर्थ हुआ कि तुम ऐसी वस्तु पाना चाहते हो जो तुम्हारे पास नहीं है अथवा तुम वह बनना चाहते हो, जो अभी नहीं हो । अतः यह स्पष्ट है कि अभी तुम्हारे पास जो कुछ है उससे तुम्हें सन्तोष नहीं है । अब साफ-साफ बता दो, किस बात से तुम्हें सन्तोष नहीं है ? या तुम वर्तमान जीवन क्रम में बदल चाहते हो । दीर्घकाल तक अपार धन सम्पत्ति रहने से तुम्हें इसमें विशेष रस न रहा हो, यह सम्भव है । अब तुम्हें स्वयं यह जान लेना होगा कि क्यों और कैसे तुम अपनी वर्तमान परिस्थितियों से असन्तुष्ट हो और तुम्हें किसी बात की आवश्यकता है । यदि तुम लोग यह सोच रहे हो कि मैं तुम्हें योगशास्त्र के पाठ पढ़ाऊं तो मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि यह एक पूरी तरह से अलग बात है और तुम्हारी प्रकृति और आयु से मेल नहीं खाती ।

चेट्टियर ने कहा,—"गुरुदेव, योगशास्त्र सिखाने के लिए आपसे प्रार्थना करना बहुत बड़ी बात होगी क्या ?"

गुरुदेव ने कहा,—"बड़ी या छोटी बात का प्रश्न नहीं । सामान्यतः जब लोग योगशास्त्र की बात करते हैं तो वे उसे एक विज्ञान के रूप में स्वीकार नहीं करते, केवल आलौकिक शक्तियों को लेकर ही उसके बारे में सोचते रहते हैं । इन शक्तियों के दिखावटी और अवस्था परिणामों का ही आकर्षण उन्हें रहता है । वे यह बात बिल्कुल नहीं सोचते कि इन शक्तियों को प्राप्त करने के लिए कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, त्याग करना पड़ता है, वर्षों तक अध्ययन करना पड़ता है । मेरी बात का विश्वास रखो, जिन्हें तुम शक्तियां कहते हो वे जिन लोगों के पास हैं, वे लोग तो उन शक्तियों को पाने से पहले ही उनमें रुचि छोड़ देते हैं ।

"जहां तक अपने पास बनाये रखने, कब्जा करने अथवा हासिल करने की इच्छा का प्रश्न है, उसका कोई अन्त नहीं है । पूर्ति के साथ इनके आयाम और तीव्रता में बढ़ोत्तरी होती है, यह बिल्कुल आग में तेल डालने के समान है । अतः अपनी इच्छाओं के मूल कारण की आपको खोज करनी होगी । अभिलाषाओं की सन्तुष्टि के लिए किए गए आपके प्रयासों ने एक बड़ी कीमत चुका कर आपके अहं को बढ़ा दिया है और आप अभी भी असंतुष्ट । जब आप चिन्तन करते हैं, तब आप यह पाते हैं कि जहां तक आपके सुख और शान्ति की बात है आपने सारहीन चीजों पर अपना समय और शक्ति को बरबाद किया है ।" गुरुदेव ने रबिन् और मृदुला की ओर देखकर कहा,—"अब

मुझे बताओ। तुम्हें ठीक-ठीक क्या चाहिए ?"

मदुला और रविन् चुप रहे। गुरुदेव की सरल किन्तु स्पष्ट बात सुनकर वे भ्रम में पड़ गए। मैं देख रहा था कि जब उन्होंने यह प्रश्न पूछा था उस समय उनकी कामना पूर्ण करने के लिए गुरुदेव तत्पर थे और बच्चों को बहलाने वाली कोई बात नहीं थी। उसी समय, मैंने अच्छी तरह महसूस किया कि किसी को अपनी इच्छा क्या है यह तय कर पाना कितना कठिन है, जब गुरुदेव जैसा कोई महापुरुष उसे इस बारे में पूछता है। इतने महान् व्यक्ति से कोई अल्पमोल की तुच्छ वस्तु मांग लेना तो उपहासास्पद ही होगा। रविन् और मृदुला दोनों के पास ही बड़ा धन था, धन से मिल सकने वाली सब चीजें उनके पास थीं। मैं सोचने लगा, यदि गुरुदेव ने मुझे ही यह प्रश्न पूछ लिया होता तो मैं तुरन्त यह निर्णय न कर पाता कि मुझे वास्तव में चाहिए क्या ? सम्पत्ति के द्वारा हमेशा बनी रहने वाली शारीरिक स्वस्थता, अथवा मनःशान्ति नहीं मिल सकती। अतः इस समस्या के लिए गम्भीर विचार की आवश्यकता थी।

चेट्टियर जी ने कहा,— "क्षमा करें गुरुदेव, क्या आप हमें कोई ऐसा व्यक्ति बता सकते हैं जिसे कोई आकांक्षा अभिलाषा नहीं है और जो पूर्ण रूप से सुखी है, शान्त है ?" गुरुदेव बोले,—"ऐसे कई व्यक्तियों को मैं जानता हूं। वे कम परिचित होते हैं क्योंकि उन्हें कोई इच्छाएं आवश्यकताएं नहीं होतीं। वे धन दौलत के पीछे भागते नहीं हैं और अपरिग्रही होते हैं। वे किसी की झूठी तारीफ नहीं करते, किसी को खुश करने के लिए अपनी राह से अलग नहीं हटते इसलिए आप उन्हें कम जानते हैं। निजी तौर से मुझे भी कोई चाह या कोई इच्छा नहीं है। दुखी होना, खिन्न होना मुझे मालूम नहीं। मेरी शान्ति अबाध बनी हुई है। मुझे चाहे संत कहो, चाहे ढोंगी, हूं मैं तुम्हारे समान ही एक सीधा सादा आदमी। खोने के लिए न मेरे पास धन सम्पत्ति है और प्राप्त करने के लिए न कोई लक्ष्य। मैं न तो किसी परम्परा, मत सम्प्रदाय अथवा धर्म का अनुगामी हूं और न उनका प्रचारक ही। ईश्वर की रचना और उनके बीच किसी भी बाधा को मैं अनुभव नहीं करता।

"मैं निर्भय हूं क्योंकि भय पैदा करने वाली कोई वस्तु ही मेरे पास नहीं। आप सब लोग जानते हैं कि जो नाशवान् हैं उसकी विशेष चिन्ता करना ठीक नहीं। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न वस्तुओं को नष्ट होने में भिन्न-भिन्न समय लगता है। द्रव्य से बनी हर वस्तु को किसी न किसी दिन नष्ट होना है. उदाहरण के लिए सब्जी फल आदि वस्तुएं कुछ घण्टों में ही नष्ट हो सकती हैं किन्तु किसी दिन ठोस वस्तु को नष्ट होने में अधिक समय लगता है। यही नियम मानव देह को लागू होता है। यदि यह बात किसी की समझ में आ जाती है तो यह समझने में देर नहीं लगती कि शरीर नाशवान् है और विशेष चिन्ता करने लायक नहीं है। व्यक्तिगत रूप में मैं यह

मानता हूं कि जब तक मेरा शरीर काम दे रहा है तब तक उसके अस्तित्व की चिन्ता करनी चाहिए लेकिन इससे अधिक कुछ भी नहीं। अपने वस्त्र तभी तक साफ रखते हैं जब तक उनका उपयोग होता है। जब वे काम के नहीं रहते तब आप उन्हें छोड़ देते हैं। अब आप समझ लेंगे कि इसलिए मुझे कोई भय नहीं है। और इस बात से मुझे शान्ति और सन्तोष मिला है। मैं सुखी हूं और मेरी शान्ति भंग नहीं होती क्योंकि मेरे अन्दर ऐसी कोई चीज नहीं जो क्षुब्ध हो सकती है। यदि आप यह बात या इसका कोई अंश भी समझ सकते हैं तो मैं सोचता हूं कि आपने काफी कुछ समझ लिया है।"

भोजन के बाद अचानक गुरुदेव ने मुझे कहा,—"आज शाम बम्बई जाने की तैयारी करो। मित्रों से मिलना हो तो मिल लो और बाजार से कुछ खरीदना हो तो खरीद लेना। गुरुदेव के वचन सुनकर केवल मुझे ही नहीं बल्कि सभी लोगों को आश्चर्य हुआ। मैं नहीं समझ पा रहा था कि गुरुदेव मुझ पर नाराज हैं या अब उन्हें मेरी सेवा नहीं चाहिए। गुरुदेव ने मेरे विचार पढ़ लिए होंगे। वे बोले,—'देखो, मुझे गलत न समझो। मैं तुम पर नाराज नहीं हूं या ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे सहवास में मैं ऊब गया हूं, किन्तु तुम्हारा अपने माता-पिता के पास होना जरूरी है। इसलिए तुम्हें जाना होगा"। भोजन के बाद मैं कमरे में आया और घर जाने के लिए सामान बांधने लगा। मृदुला और रविन् बहुत निराश से लगे। उन्होंने मेरे पीछे कमरे में आकर कहा,—"तुम सचमुच जा रहे हो ?" मैंने कहा,—"मुझे गुरुदेव में विश्वास उत्पन्न हुआ है और उनके आदेश का पालन करने का निर्णय मैंने कर लिया है। मुझे पूरा विश्वास है कि उनकी आज्ञा का पालन करने से मेरा भला ही होगा। मद्रास में मैं उनकी सेवा करने के लिये हूं। यदि वे कहते हैं कि तुम चले जाओ तो मुझे जाना ही होगा, यह मैं नहीं पूछ सकता कि मुझे क्यों भेजा जा रहा है। मैं जानता हूं कि आज्ञा का पालन कैसे किया जाता है और उनकी आज्ञा के बारे में प्रश्न उठाने का कारण नहीं है। आप लोगों के मधुर सहवास से वंचित होने का दुःख है। आपके घर के सभी लोगों का स्नेह मुझे मिला, यह मुझे हमेशा याद रहेगा।" चेट्टियर जी भी अपनी पत्नी के साथ मुझ से मिलने आये और इतनी जल्दी मद्रास छोड़ने के बारे में कहने लगे। मैंने सभी को आश्वासन दिया कि अगली बार मद्रास आने पर मैं उन्हीं के घर रुकूंगा। मैंने शहर में जाकर कुछ वस्तुएं खरीद लीं और मित्रों से मिल कर मैं लौट आया। गुरुदेव से मिलने मैं उनके कमरे में गया। वे बोले,—"मैं मद्रास में कुछ दिन और रुकूंगा। तुम्हारा आचरण देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हूं। जब भी तुम्हारे ऊपर कोई संकट हो या तुम्हें मेरी जरूरत हो, तुम्हारे जरा से चाहने पर मैं तुम्हारे पास चला आऊंगा। ऐसा मत समझो कि मैं किसी भी प्रकार से तुमसे दूर हूं। तुम्हारे भविष्य में मेरी रुचि है और मैं तुम्हारी देखभाल करता रहूंगा।" उनका आश्वासन

सुनकर मैं गद्गद् हो उठा और उनके चरणों में गिर पड़ा। इतने महान् सत्पुरुष से आश्वासन पाकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

इसी बीच चेट्टियर जी कमरे में आ गए। उन्होंने पूछा—"बम्बई जाने के लिए पैसे की आवश्यकता तो नहीं है।" उन्होंने बम्बई का टिकट, और शायिका के आरक्षण का टिकट भी मेरे हाथ में दिया। धन्यवाद के साथ मैं टिकट के पैसे लौटाने लगा। उन्होंने पैसे नहीं लिए। मैंने काफी कुछ कहा कि अपनी जरूरतों के लिए मेरे पास पर्याप्त पैसे हैं और घर में भी पैसे की कमी नहीं इसलिए अपना किराया मैं आसानी से दे सकता हूं। तब जाकर उन को संतोष हुआ। हम बातचीत कर रहे थे कि उसी समय एक सेवक ने अन्दर आकर मेरे नाम का तार मुझे दिया। जल्दी से मैंने लिफाफा खोला। मेरे भाई का तार था। पिताजी की अस्वस्थता के कारण मुझ तुरन्त बम्बई चले आने के लिए लिखा था। अब हमारी समझ में आया कि गुरुदेव ने आज शाम ही बम्बई लौटने के लिए क्यों कहा था। मैंने गुरुदेव की ओर देखा। उन्होंने कहा,—"मैं जानता हूं कि तुम्हारे पिता अस्वस्थ हैं, इसलिए उनसे मिलने के लिए तुम्हारे भाई ने तुम्हें बम्बई बुलाया है। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। कुछ दिनों में वे बिल्कुल ठीक हो जाएंगे।" उनका आश्वासन सुनकर मुझे काफी राहत मिली। मैंने उनका चरण स्पर्श किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया। शीघ्र ही सबसे विदा लेकर मैं स्टेशन के लिए निकला। उस समय चेट्टियर परिवार के सभी लोग वहां पर आए थे।

दूसरा भाग

प्रथम प्रकरण

बम्बई यात्रा के दौरान मैंने काफी थकान महसूस की। गुरुदेव ने पिताजी के स्वास्थ्य के लिए मुझे आश्वासित किया था, किन्तु मुझे चिन्ता बनी थी। लगभग चौबीस घंटे की यात्रा के बाद मैं बम्बई पहुंचा तो पूरी तरह थक चुका था। भाई साहब स्टेशन पर आए थे। उन्हें देखकर मुझे बड़ी राहत मिली। भाई साहब ने कहा, "पिताजी को दिल का दौरा पड़ा था किन्तु अब उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार है।" घर जाकर मैं माता-पिता से मिला। घर में हमारा सम्पूर्ण परिवार एकत्रित हुआ था। पिताजी अब खतरे से बाहर हैं यह जानकर मुझे तसल्ली हुई। वह काफी थके से लग रहे थे। मुझे देखकर वे काफी खुश हुए। उन्होंने गुरुदेव के बारे में पूछताछ की और कितने समय तक मैं गुरुदेव के साथ था यह भी पूछ लिया। अपनी यात्रा का सारा विवरण देते हुए मैंने गुरुदेव के सहवास के बारे में उन्हें बता दिया।

लगभग एक महीने तक हम बम्बई रहे। पिताजी का स्वास्थ्य काफी कुछ ठीक था। इसलिए हमने सोचा कि अहमदनगर लौट लें। जिस दिन हम अहमदनगर जाने वाले थे उसी दिन बम्बई सरकार का एक पत्र मुझे मिला। एक वर्ष पूर्व मैंने सरकारी सचिवालय में किसी स्थान के हेतु आवेदन-पत्र दिया था। उसके जवाब में मुझसे उस पद को स्वीकार करने के बारे में पूछा गया था। मुलाकात के लिए मुझे बुलाया गया था। मैं इस पद को स्वीकार करना नहीं चाहता था क्योंकि अपने भविष्य के बारे में मैं कोई निर्णय नहीं ले सका था। फिर भी भाई साहब और माताजी की इच्छा थी कि मैं प्रस्तावित पद स्वीकार लूँ। थोड़ा परिवर्तन भी होगा। माताजी ने कहा "तुम यह नौकरी स्वीकार कर लो। इससे तुम्हें जीवन में आनन्द आने लगेगा।" दक्षिण भारत की यात्रा और गुरुदेव के सहवास के कारण भविष्य के बारे में मेरा कोई निर्णय नहीं हो रहा था। वैसे मैं कुछ भी नहीं कर रहा था और ऐसे बेकार बैठने का कोई औचित्य नहीं था। इसलिए मैंने उनकी बात मान ली और शासकीय सेवा में जाना स्वीकार कर लिया। मेरे निर्णय से वे बड़े प्रसन्न थे। मेरे सुयश के लिए उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिए।

मुलाकात के बाद बम्बई सरकार ने मुझे प्रान्तीय सेवा के लिए चुन लिया। मैंने बम्बई में कार्यक्रम किया और प्रशिक्षण और परिवीक्षा का काल समाप्त होने पर काम करके मुझे पूना भेजा गया। मैं पूना में गोखले काका के यहाँ रहा। मेरे उनके

परिवार में रहने से वे सब लोग बड़े खुश थे। उनका बेटा श्रीकान्त अब विलायत से विधिवेत्ता बनकर लौट आया था और पिता के साथ उसने वकालत शुरू कर दी थी। मालती भी स्नातक बन चुकी थी। वह बड़ी सुन्दर लगने लगी थी। गोखले पति-पत्नि अब वृद्ध हो चले थे। वकालत का व्यवसाय बेटे के हाथ में सौंपकर अब गोखले काका ने वकालत छोड़ दी थी। उन्होंने काफी कमा लिया था और आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति उनके पास थी। अब अपनी सन्तानों का गृहस्थ जीवन देखने की उन की इच्छा थी। उनके बेटे और बेटी के विवाह के बारे में बातें चल रही थीं। अपनी कन्या के लिए मनपसन्द वर के रूप में वे मुझे देख रहे थे। मुझे पता चल गया कि गोखले काका ने इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरे पिताजी को पत्र लिखा था। पिताजी ने जवाब में लिखा था कि ये सारी बातें मेरे निर्णय पर निर्भर करती हैं। अब चूँकि मैंने नौकरी करना स्वीकार कर लिया था इसलिए गोखले काका ने यह सोचकर कि मैं घर-संसार के विचार की ओर बढ़ रहा हूं, बात आगे बढ़ाने की सोची। जहाँ तक मेरे अपने विचारों की बात है, मुझे इतनी जल्दी विवाह कर लेने की इच्छा नहीं थी और यद्यपि मैं मालती को जानता था और वह मुझे अच्छी लगती थी, फिर भी अपने जीवन साथी के रूप में उसे मैं नहीं देख सका था। मैं इस बात का भी अनुभव कर सका था कि किन्हीं अनजान कारणों की वजह से वह मेरे साथ विवाह करने के लिए उत्सुक नहीं है। अर्थात् ऐसी बात नहीं थी कि हम दोनों में से किसी ने भी विवाह प्रस्ताव के लिए स्पष्ट रूप से मना किया था, किन्तु यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि हममें परस्पर इतना सक्रिय प्रेम भी नहीं था जिसकी परिणति विवाह में हो पाती। यदि हम विवाह कर भी लेते तो दोनों पक्षों को ही कुछ न कुछ सहना पड़ता। इससे हम दोनों कितने सुखी हो पाते यह भी एक समस्या थी और यह एक प्रकार का जुआ खेलना होता। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार विवाह के लिए उचित आयु हमारी थी और वैयक्तिक रूप से विवाह को मना करने के लिए मेरे पास कोई अच्छा सा कारण नहीं था। इस प्रकार मैं उधेड़बुन में फंस गया था और मेरे मन की अनिश्च-यात्मक दशा बनी हुई थी। मैंने मालती के मन का अनुमान लगाने का प्रयास किया किन्तु वह दूसरी बातों में तो खुलकर बोलती, इस बात पर चुप हो जाती। मेरा मित्र रमेश, जो अब डेक्कन कालेज में प्राध्यापक हो गया था, गोखले काका के यहां अक्सर आया करता। जब मैंने उसे गुरुदेव और उनके साथ मेरे अल्पकालीन सहवास के बारे में बताया तो उसे अच्छा लगा। हालांकि मुझे यह भी महसूस हुआ कि गोखले काका, काकीजी और मालती को मेरा गुरुदेव में रुचि लेना पसन्द नहीं था। मैं सोचता हूं कि उन्हें यह आशंका होगी कि स्वामी जी और गुरुदेव से अत्याधिक प्रभावित होने के कारण कहीं ऐसा न हो कि मैं उनके पथ का अनुसरण करने लगूँ। कई प्रकार से मुझे यह समझाने का प्रयास किया गया कि मुझे जल्दी विवाह कर जीवन में बस जाना चाहिए। पता नहीं क्यों, किन्तु मुझे उस समय बड़ी राहत का अनुभव हुआ जब मुझे पूना कैन्ट में सरकारी बंगला रहने

के लिए मिला, जिसे मेरे समान पद पर काम करने वाले अधिकारी ने खाली किया था। बंगले में सब सामान था और मेरे पास कई सेवक भी थे। मेरे माता-पिता मेरे साथ रहने के लिए या ऐसा कहूं कि मेरे घर को व्यवस्थित रूप देने के लिए पूना आए थे। एक अचरज वाली बात यह भी थी कि मुझे लगा जैसे मालती ने भी उस समय राहत का अनुभव किया जब मैंने उनका घर छोड़ दिया। हो सकता है कि विवाह प्रस्ताव के कारण उसके मन पर अनावश्यक तनाव पड़ा हो। मैं अपने कार्यालय के काम में अत्यन्त व्यस्त हो गया। मुझे किसी विभागीय परीक्षा की भी तैयारी करनी थी जो आगे पदोन्नति के लिए आवश्यक थी। इतना सब कुछ होने पर भी मैं गुरुदेव और उनकी शिक्षा के बारे में सोचने के लिए पर्याप्त समय पा लेता था। ईमानदारी से सोचने और अवलोकन की तथाकथित प्रक्रिया का अभ्यास मैं कर रहा था जिसे गुरुदेव ने मद्रास में हमें बताया था। हालांकि मुझें नहीं मालूम था कि यह मुझे कहाँ तक ले जाएगी। गुरुदेव ने जो कुछ कहा था और जिस बात की शिक्षा दी थी कि सोचने और अवलोकन से सुख और शान्ति की प्राप्ति यदि नहीं भी होती तो भी जीवन की कई समस्याओं का हल उससे मिल जाएगा, उसकी सत्यता का अनुभव मुझे हो रहा था। मुझे पूरा विश्वास था कि ईमानदारी से सोचने और अवलोकन से संसार की आधी समस्याएं हल हो जाएंगी और जीवन की अनावश्यक जटिलताएं दूर होंगी। हम अनावश्यक दुविधाओं को जन्म देते हैं और अपने जीवन को जकड़ लेते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि हम अपने साथ ही सच्चे और ईमानदार नहीं रहते फिर बाहरी संसार की बात ही क्या है। कोई व्यक्ति यदि कायर नहीं है या परिणामों से नहीं घबड़ाता तो कोई वजह नहीं कि वह झूठ बोले; जहां तक किसी व्यक्ति की बाहरी गतिविधियों का सम्बन्ध है, इसके भी कुछ मायने हो सकते हैं किन्तु अपने साथ ही बेईमान या झूठा बनने का कोई औचित्य नहीं है। हालांकि मैं इस प्रकार की मनोदशा में था, फिर भी मैं अशान्त नहीं था; हो सकता है कि इसका कारण यह भी हो कि मुझ पर कोई जिम्मेदारियाँ नहीं थीं अथवा चिन्ता की कोई बात नहीं थी।

एक दिन भोजन करने के बाद मैं अपने माता-पिता से किन्हीं घरेलू बातों पर बातचीत कर रहा था कि मेरी माताजी ने एकाएक मुझे पूछ लिया कि विवाह के बारे में मैंने क्या सोचा है? अब तक मैं इस विषय को टालता रहा था किन्तु अब मुझे उससे निबटना आवश्यक था। फिर भी मैंने बात को हल्की बनाने की कोशिश करते हुए कहा कि क्या वे मुझसे किसी बात पर नाराज हैं या मैं इतना तकलीफदेह हो गया हूं कि मुझे विवाह के बन्धन में जकड़ना आवश्यक हो गया है। किन्तु मुझे किसी प्रकार का अवसर न देकर पिताजी ने गम्भीर भाव से कहा कि वे भी मुझे यही प्रश्न करना चाहते थे। यदि मैंने किसी दूसरी तरह से जिन्दगी गुजारना तय नहीं किया है तो यही उचित समय है जब जीवन में व्यवस्थित हो लेना चाहिए। उनकी दृष्टि में मेरे पास वह सब कुछ था

जिसकी मुझे इच्छा होनी चाहिए। मैं सरकारी नौकरी में था, उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ थीं, अच्छा स्वास्थ्य था, व्यक्तित्व और शिक्षा थी और शेष जीवन तक बना रहे इतना धन भी था। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मैं कभी नौकरी छोड़ना भी चाहूं तो अपने पास इतनी जायदाद है कि केवल उसकी देखभाल करने से ही मेरा अच्छी तरह गुजारा हो सकता है। अब उन दोनों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता इसलिए यदि मैं जल्दी विवाह कर लूंगा तो उन्हें बड़ी खुशी होगी। मेरी माताजी ने बात पर जोर देते हुए कहा कि विवाह की दृष्टि से मालती के बारे में मेरी क्या राय है ? मेरे पिताजी और माताजी को लड़की पसन्द थी और हम सब लोग उसके बचपन से ही उसे जानते थे। वह सुशिक्षित थी, सुन्दर थी और स्वस्थ भी। मेरी माताजी ने कहा कि गोखले काका ने यह प्रस्ताव रखा था। मुझे इसे स्वीकार कर लेना चाहिए और मूर्खता भरी बातों पर सोचने में समय नहीं गवाना चाहिए। मैंने माताजी को बताया कि मैंने विवाह के बारे में गम्भीरता से सोचा नहीं है और इस बारे में सोच लेने के लिए समय दिए बिना उन्हें जबर्दस्ती नहीं करनी चाहिए। दोनों इस बच्चों वाले उत्तर को सुनकर हँस पड़े और उन्होंने कहा "हम तुम्हें समय अवश्य देंगे लेकिन इतना नहीं कि तुम इस बात को स्थगित ही कर दो।" माताजी बोलीं, "मालती को जीवन साथी बनाने में तुम्हें कोई आपत्ति है क्या ? ऐसी बात तो नहीं है कि तुम किसी दूसरी लड़की से प्यार करते हो जिसे हम नहीं जानते हैं ?" पिताजी बड़ी उत्सुकता से मेरी ओर देख रहे थे। मैंने कहा, "माताजी सुनिये, सच यह है कि मैं किसी भी लड़की से प्यार नहीं करता और मालती के बारे में अच्छी धारणा रखता हूं; मैं उसे जानता हूँ और कई दिन तक उसके साथ रहा हूं, किन्तु उससे प्रेम करने का विचार मेरे मन में नहीं था और उसे अपने जीवन साथी के रूप में मैंने कभी नहीं देखा।"

फिर भी मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि उनकी बात पर मैं गम्भीरता से सोचूँगा और मालती से भी बातचीत करूँगा कि इस विषय पर उसे क्या कहना है। माताजी ने कहा कि अभी हाल ही में गोखले दंपति की ओर से यह प्रस्ताव आया है। अवश्य ही उन्होंने मालती को पूछ लिया होगा। पिताजी ने, फिर भी, यह कहा कि हम सब के हित में यही होगा कि जिन्हें विवाह करना है वे लोग ही आपस में बातचीत कर लें और हमें अपने निर्णय से अवगत करा दें। इसके बाद मैंने विषय बदल दिया और हम लोग शाम को अधिकारियों के मनोरंजन गृह में गए। सारे समय मैं इसी वार्तालाप पर विचार कर रहा था और मैंने तय किया कि मैं मालती से जल्दी मुलाकात करुंगा।

दूसरे दिन कार्यालय में भी मुझे यही समस्या सताती रही। इस उलझन से बाहर निकलने का रास्ता मुझे नहीं सूझ रहा था। सच कहूँ तो विवाह के दायित्व के भार से

मैं अपने को मुक्त रखना चाहता था क्योंकि तत्व-मीमांसा की गहराई में जाकर खोज करने की मेरी इच्छा थी और मैंने यह भी सोचा था कि मेरी वर्तमान मनोदशा विवाह के लिए अनुकूल नहीं है। तिस पर भी, गुरुदेव जैसे पूर्ण ज्ञानी पुरुषों का अनुकरण कर मैं सत्य को जान लेना चाहता था ताकि जीवन में सदा बनी रहने वाली समस्या भी हल हो जाए। मैं सोचता था कि ईमानदारी से प्रयास किए जाएं तो शांति और सुख को प्राप्त किया जा सकता है। मुझे लगा कि विवाहबद्ध होने पर मैं केवल अपने लिए ही समस्या नहीं खड़ी कर लूंगा, इस कारण गुरुदेव जैसे पुरुषों द्वारा मेरी सहायता किए जाने के मार्ग में भी बाधा निर्माण होगी। इसलिए मेरी यह इच्छा थी कि विवाह न करने की बात यदि असम्भव हो तो मैं कम से कम उसे आगे के लिए टाल तो दूँ, किन्तु इसे किस प्रकार करना चाहिए यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। इस समय की परिस्थितियों में विवाह को मना करने के लिए कोई सबल कारण मेरे पास नहीं था और माता-पिता की वृद्धावस्था में उनकी इच्छा का सम्मान न करना मेरे बस के बाहर की बात थी।

माताजी मुझे कितना प्यार करती हैं, यदि मैं विवाह के लिए मना कर दूँ तो उन्हें कितना दुख होगा। भविष्य के बारे में मेरे अपने विचार भी स्पष्ट नहीं थे। उनसे मुझे ही सन्तोष नहीं था तो माता-पिता को किस प्रकार विश्वास दिलाया जा सकता था। इस प्रकार उद्विग्न मनोदशा में मुझे गुरुदेव के आश्वासनों का स्मरण हुआ। गुरुदेव ने कहा था कि किसी भी संकट में वे मेरी सहायता करेंगे। इसलिए मैंने गुरुदेव से सहायता करने के लिए प्रार्थना की। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेरी प्रार्थना उन तक पहुंच जाएगी और वे मुझे सहारा देंगे। रात के समय मेरे माता-पिता गोखले काका के यहाँ गए थे और रात में वहीं रुकने वाले थे। बंगले में मैं बिल्कुल अकेला था और मुझे अकेलेपन का अनुभव हो रहा था। मैं कार्यालय की पंजिकाएँ देखता रहा और रात में देर से सोया। ऊषाकाल के समय मैंने स्वप्न देखा। गुरुदेव मेरे कमरे में खड़े थे। जल्दी से उठकर मैंने उनका चरण स्पर्श किया। मुझे उठाकर उन्होंने कहा—"माधव तुम्हारा संदेश मुझे मिला। मैं तुम्हारी सहायता के लिए ही आया हूँ। किसी बात की चिन्ता न करो। तुम्हारे मन के अनुकूल ही समस्या का समाधान मिल जाएगा। सब कुछ तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही होगा।"

अत्यन्त श्रद्धा के साथ मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। गुरुदेव प्रसन्न और सन्तुष्ट दिखाई दे रहे थे। उन्होंने कहा कि वे बंगाल में हैं और हिमालय की ओर जा रहे हैं। मैंने आँखें खोलीं तो सुबह के पाँच बजे का समय था। मुझे अनुभव होने लगा कि मेरी सारी समस्याएँ समाप्त हो गयी हैं और मैंने फिर से सोने का प्रयास किया। प्रातःकाल मेरे माता-पिता लौट आए थे और हम चाय ले रहे थे कि उसी समय जिलाधीश की ओर से मुझे निर्देश प्राप्त हुए कि किसी आवश्यक जांच पड़ताल के काम से मुझे

जिला जाना है और लगभग एक मास तक इस कार्य में व्यस्त रहना होगा। इस प्रकार का बदल आने से मुझे बड़ी राहत मिली और मैंने सोचा कि यह परिवर्तन मेरे लिए अच्छा रहेगा। इसलिए तय हुआ कि दोपहर वाली गाड़ी से माता-पिता अहमदनगर चले जाएं और रात की गाड़ी से जिला जाने के लिए मैं पूना से चल पड़ूंगा। सब कुछ इतना अचानक हुआ कि दौरे की तैयारी करने में ही मैं सारा दिन व्यस्त रहा और विवाह के बारे में बातचीत करने के लिए माताजी को समय ही नहीं मिला।

दूसरा प्रकरण

इस प्रकार एक महीने तक मैं पूना से बाहर रहा था। शनिवार की सायंकाल मैं दौरे से लौट आया। दूसरे दिन रविवार होने के कारण मुझे कार्यालय नहीं जाना था इसलिए अच्छी तरह विश्राम करने का मेरा विचार था। रात में अच्छी नींद लगने से रविवार की प्रातः में मुझे ताजगी लग रही थी। चाय लेकर मैं समाचार पत्र देख रहा था कि मुझे गोखले काका की कार की परिचित आवाज सुनाई दी। समाचार पत्रों से अपनी नजर हटाकर मैंने देखा तो गोखले काका की कार प्रांगण में आ चुकी थी। मालती का स्वागत करने के लिए मैं उठ गया। मालती मुस्कराती हुई अन्दर आ रही थी और उसकी सुन्दर कमनीय आकृति की ओर अभिलक्षित दृष्टि से देखने का लोभ मैं संवरण न कर सका। वह स्वस्थ और उत्साही प्रतीत हो रही थी। टकटकी लगाए मुझे अपनी ओर देखते देखकर उसके कपोलों पर गुलाब खिल गए। उसने हंस कर पूछा, "तुम चाय पी चुके हो ?" मैंने कहा, "मैं यहाँ सोमवार को आने वाला था। आखिर तुम जान कैसे गईं कि आज मैं घर मिलूंगा।" उसने कहा, "मुझे भी अन्तर्ज्ञान होता है। तुम आज घर मिलोगे यह मैं जानती थी इसीलिए आज तुम्हें भोजन का निमन्त्रण करने आई हूं।" मैंने कहा, "अन्तर्ज्ञान आदि की फालतू बातें कब से कहने लगी हो। ये सारा तुमने कहां से सीख लिया है ?" मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर उसने कहा, "माधव, तुम मुझे बैठने तक के लिए नहीं कह रहे हो। गांवों में घूमने और एकदम अकेले रहने के कारण तुममें बुरी आदतें आने लगी हैं।" मैंने कहा, "तुम अभी बच्ची हो, शिष्टाचार का ज्ञान मुझे तुमसे अधिक है। मुझे ही सिखाना सोच रही हो ?" अब तक सेवक उसके लिए चाय लेकर आ गया था। मालती ने उससे कहा, "तुमने कैसे जान लिया कि मैं चाय लूंगी ?" सेवक ने कहा, "मालिक ने हमें पहले ही बता रखा है और मुझे लगा कि आप चाय लेना पसन्द करेंगी।" मैंने समाचारपत्र एक ओर रख दिए और चाय लेने के बाद हम बातचीत करने लगे।

मुझे लगा कि मैं पुनः एक बार उसकी ओर अभिलाषा से देखने लगा हूं। उसने अपनी निगाहें उठाकर मेरी ओर देखा। वह लजा गई और फिर एक बार उसके गालों पर लाली छा गई। वह कुछ विचलित हुई और मेरी निगाहों से अपनी निगाहें हटाकर नीचे देखने लगी। थोड़ी देर तक हम चुप बैठे रहे। उसने मेज पर पड़े समाचारपत्र उठा लिए और पढ़ने का बहाना करने लगी। समाचारपत्रों के पीछे से वह बोली, "माधव, आज तुम्हें क्या हो गया है ? ऐसा अजीब सा व्यवहार क्यों कर रहे हो ?" मैंने जब उसके सवालों का कोई जवाब नहीं दिया तो वह बोली, "देखो माधव, यदि तुमने चाय पी ली है और चलने के लिए तैयार हो तो हम साथ ही चलेंगे।"

मैंने कहा, "जल्दबाजी करने की क्या बात है ? घर जल्दी से लौट आने का आदेश है क्या ? इस बंगले का वातावरण तुम्हें इतना गरम तो नहीं लग रहा कि तुम यहां कुछ देर और नहीं बैठ सकतीं ?" उसने मेरी निगाहों से निगाहें मिलाकर कहा, "आखिर तुम्हारे मन में क्या है ? तुम इस प्रकार से क्यों पूछ रहे हो ? तुम्हारे मन में भी तो कुछ चल रहा है, तुम अपने काबू में नहीं हो।" मैंने पूछा, "कहीं तुम्हें मुझसे डर तो नहीं लग रहा ?" वह हंस पड़ी और बोली, "इस संसार में तुम सबसे आखिरी व्यक्ति हो जिससे मुझे डर लग सकता है।" मैंने कहा, "मालती, सुनो, मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं। हम दोनों से ही उनका सम्बन्ध है।" वह कुछ शरमाई और बोली, "तुम क्या कहने वाले हो, इसका अनुमान मैं कर सकती हूं। लेकिन यह प्यारी सुबह खराब करने की मेरी इच्छा नहीं। जब हम दोनों को सुविधा होगी, तब तक के लिए हम इस गंभीर बात को स्थगित कर दें।" मैंने उससे पूछा, "मैं जो कुछ तुम्हें कहने जा रहा हूं उसे तुम कैसे जान सकती हो ?" उसने कहा, "मैंने तुम्हे पहले ही बताया था कि मुझे छठी इन्द्रिय है और किस बात पर तुम मुझसे सलाह लेना चाहते हो यह मैं सोच सकती हूं।" मैंने बात को आगे बढ़ाने का विचार कर उसका मन टटोलना चाहा लेकिन उसी समय मेज साफ करने के लिए मेरा सेवक आ गया और उसने बताया कि कोई व्यक्ति मिलने आया है। मालती ने इसका लाभ उठाकर कहा, "अभी मुझे भोजन की तैयारी करनी है। इसलिए मैं घर जा रही हूं। तुम बिल्कुल देर न करना।" वह इतनी तेजी से उठी कि मैं थोड़ी देर के लिए उसे रोक नहीं सका। मैंने सोचा कि मैं शीघ्र ही अवसर मिलने पर उसके साथ विवाह के विषय में बात करूंगा।

कक्ष में एक व्यक्ति मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बताया कि वह सरकारी काम से मुझे मिलने के लिए आया है। लगभग एक घंटे बाद वह चला गया और मैं स्नान करने गया। गोखले काका के घर जाने के लिए मुझे तैयार होना था। स्नान करके मैंने सोचा कि कपड़े पहन कर घर से निकलूं लेकिन फिर मैंने सोचा कि अभी से जाकर क्या करूंगा ? इसलिए कुछ देर तक विश्राम करना चाहिए। स्वाभाविक

ही मेरे मन में विवाह के बारे में विचार आने लगे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मालती ने इस विषय को टाल कैसे दिया जबकि ऐसा माना जाता है कि लड़कियां इस बारे में बड़ी उत्सुक रहती हैं। वह किसी दूसरे से प्रेम तो नहीं करती? मैंने कहीं उसे नाराज तो नहीं कर दिया? मुझे ऐसा भी लगने लगा कि शायद वह सोचती हो कि उससे विवाह करने के लिए उचित प्रतिष्ठित पद पर मैं काम नहीं करता हूं अथवा हो सकता है कि उसमें अहंभाव आ गया हो। इस प्रकार के विचार बड़ी तेजी से दिमाग में आ रहे थे। मैं ईमानदारी से सोच रहा था कि जिस प्रकार की शिक्षा उसने प्राप्त की है, उसके अनुसार अपने पति को चुनने में वह पूर्ण स्वतंत्र है और उसने अवश्य किसी ऐसे व्यक्ति को चुना होगा जो उसे सुखी कर सकता है। उसके ऊपर जबर्दस्ती विवाह थोपने में कोई लाभ नहीं था और अपने मुक्त स्वभाव और उच्च शिक्षा के कारण वह किसी ऐसी चीज को बर्दाश्त भी नहीं करती। अपने स्वतः की भावनाओं का परिशीलन करने पर मुझे दिखलाई पड़ा कि जिस प्रकार की प्रवृत्तियां मेरे अन्दर बन रही थीं, उनके कारण मैं एक आदर्श विवाहित जीवन के लिए अनुपयुक्त हो जाता।

बाहरी संसार का जो अल्प सा अंश मैंने देखा था उससे मेरी राय बन चुकी थी कि अपनी सारी धन-सम्पत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा और पद के कारण जिन्हें सम्मानित व्यक्ति कहा जाता है वे वास्तव में सुखी नहीं हैं जैसा कि बाहर से दिखाई देता है। कारण इसका कुछ भी हो, तथ्य यही है कि किसी के भाग्य में सुखी होना नहीं लिखा था। इसके विपरीत स्वामीजी और गुरुदेव के पास संसार की कोई भी चीज न रहने पर भी वे सुखी और शान्त दिखाई देते थे।

इसलिए अपनी मान्यता की सच्चाई जानने के लिए मैं उत्सुक था। यदि मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुख और शान्ति की प्राप्ति करना हो सकता है तो मुझे स्वामीजी और गुरुदेव के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए और तमाम लोगों द्वारा अपनाए गए विवाहित जीवन के मार्ग पर नहीं चलना चाहिए जिससे शायद ही किसी को सुख की प्राप्ति हुई हो। किसी भी दृष्टिकोण से सोचने पर, इस प्रकार जीवन का दांव लगाना तो मूर्खता ही होती। अपने माता-पिता को इसका विश्वास कैसे करा पाऊंगा, मैं जीवन के साथ जो प्रयोग करने जा रहा हूं उसमें सफलता मिल सकेगी या नहीं। यह भी एक समस्या थी। मुझे स्वामीजी और गुरुदेव के अनुकरण में जीवनवृत्ति को त्यागना पड़ता, अपनी आशाएं और प्रेरणाएं छोड़नी पड़तीं।

मेरे माता-पिता, भाई, मित्र या संक्षेप में मेरे सभी हितचिन्तकों को मुझे निराश करना पड़ता जो मुझ में इतनी आस लगाए बैठे थे। मुझे दृढ़ विश्वास था कि मेरी महत्वकांक्षाएं चाहे कुछ भी हों मैं उन्हें अवश्य पूर्ण कर सकता हूं। यदि मैं गम्भीरता से बात लूं तो मैं जीवन में कितना बड़ा पद प्राप्त कर सकता हूं। केवल सरकारी सेवा की बात नहीं, मैं किसी भी काम में लग जाऊं तो जरूर सफल रहूंगा इसमें रंच

मात्र संदेह नहीं था। टेलिफोन की आवाज से मैं विचारों से जग गया। मैंने घड़ी की ओर देखा तो काफी समय बीत गया था। मैं टेलिफोन के पास गया। दूसरी ओर से मालती बोल रही थी। वह कह रही थी कि तुम बड़ी देर कर रहे हो इसलिए मैंने जल्दी से कपड़े पहने और कार में बैठकर मैं गोखले काका के घर जाने के लिए चल पड़ा।

गोखले काका के घर पहुंचा तो मुझे लगा कि वास्तव में ही देर हो चुकी है। सारे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरा पुराना मित्र रमेश भी आया था यह देख कर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। अब तक प्राध्यापक के रूप में रमेश ने अच्छा नाम कमा लिया था और मैंने सोचा कि श्रीकान्त का मित्र होने के कारण उसे आमंत्रित किया होगा। फिर भी मैं नहीं समझ सका कि हम सबको भोजन के लिए क्यों बुलाया गया है। थोड़ी देर में ही मुझे मालूम हुआ कि आज गोखले काका की सालगिरह है। हम सभी ने उनका अभिनन्दन किया और उनके लिए दीर्घ जीवन की कामना प्रदर्शित की। श्री गोखले प्रसन्न मुद्रा में थे और श्रीमती गोखले अपने स्वभाव के अनुसार आनन्द और उत्साह में थीं। हमेशा बोलती रहने वाली मालती उस दिन चुप बैठी थी और उसकी चुप्पी सभी को खल रही थी। भोजन अच्छा बना था और विविध प्रकार के व्यंजन परोसे गए थे। भोजन के पश्चात् मैंने मालती से कहा, "तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है न, शाम को सिनेमा चलोगी?" उसने कहा कि उसके सिर में दर्द हो रहा है लेकिन मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने उसे पूछा, "कहीं तुम मुझसे नाराज तो नहीं हो?" उसने कहा, "माधव, ऐसी बात नहीं। आज मुझे अच्छा नहीं लग रहा है और सिर में दर्द भी है।" इतना कहकर वह उठ गई और अपने कमरे में चली गई। शाम की चाय लेने के बाद मैं क्लब चला गया और रमेश अपने घर। कुछ देर तक क्लब में बिलियर्ड खेलने के बाद मैं एक मित्र के साथ सिनेमा चला गया क्योंकि रात में भोजन करने की इच्छा नहीं थी। फिल्म अच्छी थी और कुछ देर के लिए अपनी सारी चिन्ताएं मैं भूल गया। रात में देर से मैं घर लौटा और सो गया।

तीसरा प्रकरण

पूरे सप्ताह में कार्यालय के काम में व्यस्त था और कुछ उलझे हुए मामलों के कारण मुझे घर पर भी आराम नहीं मिला। अगले महीने मेरी विभागीय परीक्षा थी और मुझे उसकी तैयारी करनी थी। इसलिए मैंने छुट्टी ले ली और सोचा कि घर जाने की अपेक्षा पूना में रहकर ही परीक्षा की तैयारी करनी चाहिए। पिताजी की इच्छा थी

कि मैं घर चला आऊं और वहीं पर अध्ययन करूं लेकिन मैंने सोचा कि पूना रहकर ही कार्यालय से मुझे आवश्यक पुस्तकें और अभिलेख मिल सकते हैं। मालती से मिलने के ठीक एक सप्ताह के बाद गोखले दम्पत्ति मुझे मिलने और विभागीय परीक्षा की तैयारी कैसी चल रही है यह देखने के लिए मेरे बंगले पर आए। मेरे यहां आने के पीछे उनका क्या हेतु था यह मैं जानता था। चाय के समय श्री गोखले ने मेरे विवाह के विषय पर बातचीत प्रारम्भ की और पूछा कि इस विषय पर मैंने पिताजी से क्या बात की है? श्रीमती गोखले ने कहा, "अब तुम्हारी आयु विवाहोचित हो चुकी है और तुम्हें इस बारे में शीघ्रही निर्णय कर लेना चाहिए।"

गोखले काका ने कहा, "तुम्हें औपचारिकता निभाने की आवश्यकता नहीं, मैं तुमसे स्पष्ट बातें सुनने की आशा रखता हूं। मैंने मालती के विषय में तुम्हारे पिता से बात की है। तुमने कुछ तय किया क्या?" मैंने दोनों से कहा, "माता-पिता के द्वारा शादी की बात पक्की करना अब पुरानी बात हो चुकी है। संसार काफी आगे बढ़ चुका है और स्वाभाविक रूप से उन्हीं पर ये बातें छोड़ी जानी चाहिए जिन्हें परस्पर विवाह करना है। मालती की शिक्षा अच्छी तरह हो चुकी है और मेरी भी। ऐसा मानकर चलें कि शेष बातें विवाह के लिए अनुकूल हैं तो भी सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि इस विषय पर मालती की और मेरी पूरी सम्मति होनी चाहिए।"

यह सुनकर दोनों ही हंसने लगे। उन्होंने कहा, "बचपन से ही तुम और मालती एक दूसरे को जानते हो। हमें समझ में नहीं आता कि तुम्हें परस्पर जीवन-साथी बनने में कौन सी बाधा हो सकती है? अर्थात् तुम दोनों में से किसी ने या दोनों ने भी इससे भिन्न कुछ तय कर लिया हो तो बात दूसरी है।" मैंने कहा, "इस विषय पर माता-पिता से मेरी बातचीत हो चुकी है लेकिन मालती से बातचीत किए बिना मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं बता सकता। केवल मेरी स्वीकृति का ही प्रश्न नहीं, मालती की अनुमति का अधिक महत्व है और मेरे मत में उसी की बात अंतिम माननी चाहिए। मुझे विश्वास है कि आप नहीं चाहेंगे कि हमारा परस्पर विवाह कोई समझौते वाली, सुविधा देखने की अथवा सहन करने की बात हो जाए जिससे हम में से कोई भी सुखी नहीं होगा। विवाह का उद्देश्य तो सम्पूर्ण समन्वय और सुख होता है।"

"आप विश्वास रखें, मेरे मन में किसी दूसरी लड़की का विचार नहीं है और मैं किसी दूसरी लड़की से प्रेम नहीं करता" इस प्रकार का आश्वासन मैंने उन्हें दिया। तथापि, जब तक मालती के साथ विचारों का आदान-प्रदान होने का अवसर नहीं मिलता और वह मुझे स्वीकार नहीं कर लेती तब तक मैं उन्हें कोई निश्चित उत्तर देने की स्थिति में नहीं था। जहाँ तक मेरा प्रश्न था, मैं मालती को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता। मैंने उन्हें पूछा, "जब आप मेरा अभिमत जानने के लिए

यहां पधारे हैं तो मैं यह भी जानना चाहूंगा कि आपने इस विषय पर मालती के विचार जान लिए हैं क्या?" श्रीमती गोखले तुरन्त बोल पड़ीं, मालती ऐसी लड़की नहीं है कि वह हमारे निर्णय के प्रतिकूल रहेगी।" श्री गोखले मेरे कथन का आशय जान गए थे इसलिए वे बोले, "कुछ भी हो, सभी के हित में यही होगा कि इस विषय पर हम मालती से बातचीत कर लें तो दोनों पक्षों को सुविधा होगी।" उन्होंने मुझे कहा, "मालती का मन जानने के बाद मैं तुम्हें सूचित कर दूंगा, फिर तुम उसके साथ बात कर लेना।" कुछ ही समय पश्चात् वे चले गए और आश्चर्य की बात यह थी कि मुझे बड़ी राहत मिलने का अनुभव हुआ। अगले सप्ताह पिताजी का खत मुझे मिला। उन्होंने लिखा था, "तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? पढ़ाई ठीक तरह से चल रही है?" विवाह के बारे में मालती से बातचीत हुई? मुझे लगता है कि उसकी ओर से किसी प्रकार की आपत्ति होने का प्रश्न नहीं उठता। पूना से यहाँ आने के पूर्व हम दोनों ने गोखले दंपति के साथ इस विषय पर पूरी बातचीत की थी। वास्तव में यह प्रस्ताव उन्हीं की ओर से आया था और हम दोनों ने उसे मान भी लिया था। केवल तुम्हारी राय जानना बाकी था। तुम्हारे साथ जब हमारी बात हुई तो उस समय तुमने कोई आपत्ति नहीं उठाई, इसलिए मैं सोच रहा हूं कि बात लगभग तय हो चुकी है।" उत्तर में मैंने गोखले दम्पति के साथ मेरी जो बातचीत हुई थी उसके बारे में विस्तारपूर्वक लिख दिया।

"मालती की राय भी मेरी राय के समान ही महत्व रखती है। उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, वह समझदार है और इस महत्वपूर्ण विषय पर अपना निर्णय लेने में खुद ही सक्षम है। विवाह के बारे में अवश्य ही उसके अपने विचार हो सकते हैं और जिस प्रकार का, जिस स्वभाव का व्यक्ति उसे पति के रूप में स्वीकार होगा, उस पर भी उसने जरूर सोच लिया होगा। अतः प्राप्त परिस्थितियों में उसके ऊपर माता–पिता अथवा किसी अन्य व्यक्ति का विचार थोप देना उचित, या युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। उसे खुले मन से सोचने का अधिकार है। खुद अपना निर्णय लेने के लिए उसके ऊपर बन्धन नहीं, यही मान लेने में शोभा है। अब इस विषय पर गोखले काका की ओर से उत्तर मिलना शेष रह जाता है और तब तक अपनी ओर से पहल करने की मेरी इच्छा नहीं है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। मैं सोचता हूं कि परीक्षा की तैयारी करने के लिए पूना रहने में ही अधिक सुविधा होगी।"

परीक्षा समाप्त हुई। अपने प्रयासों से मैं पूर्ण सन्तुष्ट था। केवल परीक्षा में सफलता की आशा ही मुझे नहीं थी बल्कि मुझे यह भी आशा थी कि अभ्यर्थियों की सूची में मैं सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करूंगा। इस पूरे महीने मैं मालती से नहीं मिला था। मैं इस विषय पर अधिक आग्रह वाली बात नहीं चाहता था क्योंकि मुझे विवाह

के लिए उत्सुकता नहीं थी और मैंने भविष्य के बारे में कोई निर्णय नहीं लिया था। किसी न किसी कारण से मामला खटाई में पड़ जाने से, चिन्ता के स्थान पर मुझे राहत ही मिली थी। अर्थात् ही यह बड़ी विचित्र बात थी कि गोखले काका चुप हो गए थे। सम्भव है कि मालती ने यह सोच लिया हो कि अभी से विवाहबद्ध होकर जीवन बदलने की क्या आवश्यकता है। आगे अध्ययन की बात उसने सोची हो। ये सारी मेरी अटकलें ही थीं किन्तु सत्य जान लेने का मैंने प्रयास नहीं किया क्योंकि मेरी वर्तमान मनोदशा से इस बात का कोई मेल नहीं था।

चौथा प्रकरण

मुझे आदेश मिल चुके थे कि मेरा तबादला धारवाड़ हो गया है। वहां पर कार्यभार ग्रहण करने के पूर्व, इस अवकाश के दिनों अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए मैं अहमदनगर गया। माताजी ने घर पर मुझे पूछा कि मुझे गोखले काका से आगे की बात का पता चला, और मैंने मालती से मुलाकता की या नहीं। जब मैंने उन्हें बताया कि मुझे गोखले काका से कोई सूचना नहीं मिली और पूना छोड़ने से पूर्व मालती से भी मेरी मुलाकात नहीं हुई तो उन्हें आश्चर्य हुआ किन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि अब सारी बात गोखले काका पर ही निर्भर है और उनके द्वारा इस सम्बन्ध में मालती की निश्चित राय जानने के बाद ही मैं आगे की बात कर सकूंगा। में दो दिन तक अपने माता-पिता के साथ रहा और फिर धारवाड़ चला गया। कार्यग्रहण के बाद अब तीन मास बीत चुके थे और सब कुछ ठीक चल रहा था। एक दिन सुबह के समय मैं बिस्तर से उठ ही रहा था कि टेलिफोन की घण्टी बजी। दूसरी ओर से धारवाड़ के जिलाधीश बोल रहे थे। इतनी सुबह उनकी आवाज सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने यह सुखद समाचार मुझें सुनाया कि सफल अभ्यर्थियों की सूची में मेरा नाम सर्वप्रथम है। सहायक जिलाधीश के पद के लिए भी मेरा चयन हो चुका है। उन्होंने हार्दिक अभिनन्दन करते हुए मुझे तुरन्त अपने यहाँ आने के लिए कहा। उनकी श्रीमती जी ने भी मेरा अभिनन्दन किया और सुबह की चाय के लिए आमन्त्रित किया। स्वाभाविक ही अपने प्रयासों की सफलता पर मुझे खुशी हुई थी और अपने चयन के बारे में मैंने घर पर तार भेज दिया। दोपहर के पश्चात तार आने शुरू हुए। टेलीफोन पर भी लगातार बधाई सन्देश आ रहे थे। अपने माता-पिता, बन्धु, गोखले काका और मित्र रमेश ने भी मुझे बधाइयां दीं। मुझे लगा जैसे मुझमें किसी न किसी प्रकार रुचि रखने वाले हर व्यक्ति को परीक्षा फल और चयन के बारे में भी पता लग चुका था। बाद के

दो दिनों में बधाई सन्देशों का उत्तर देने में मैं व्यस्त रहा। इसी सप्ताह मुझे शासन से आदेश मिले कि धारवाड़ के सहायक जिलाधीश का कार्यभार मैं संभाल लूं क्योंकि वे अवकाश पर जा रहे थे। दूसरे निर्देश प्राप्त होने तक मुझे उनका काम देखना था।

मैं काम से अच्छी तरह परिचित था और कार्यभार ग्रहण करने में मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। मुझे कई पत्र मिल रहे थे। उनमें मेरे और पिताजी के परिचित व्यक्तियों के पत्र भी थे जिनमें मेरे विवाह के बारे में पूछताछ की गई थी। उनके पत्रों का सीधा जवाब देने के बजाय मैंने उन्हें लिख दिया कि वे पिताजी को ही पत्र लिखें और उनके लिखे पत्र मैंने पिताजी के विचारार्थ भेज दिए। पिताजी ने उत्तर देते हुए मुझे लिखा कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ दिन पूर्व उन्होंने गोखले काका को पत्र लिखा है और पत्र का उत्तर अब तक मिल जाना चाहिए था। मैं कुछ उलझन में था। क्योंकि मैं समझ नहीं रहा था कि गोखले काका चुप क्यों थे। मुझे लगा कि मालती ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया होगा अथवा इस बात पर सोचने के लिए समय माँग लिया होगा। फिर भी उचित तो यही था कि गोखले काका सारी बात बताते हुए मुझे और पिताजी को पत्र लिखते। लगभग आधे मास के पश्चात जब मैं जिले के नियमित दौरे से लौटकर धारवाड़ आया तो मेरे पत्रों में एक खत मालती का भी था। मैं चाहता था कि उसका खत ध्यान से पढ़ूं इसलिए सबसे अन्त में उसे खोलने की बात मैंने सोची। काफी समय तक बन्द लिफाफा हाथ में लेकर मैं सोचता रहा कि मालती ने क्या लिखा होगा? यदि उसने प्रस्ताव मान लिया होगा तो मेरा जीवन प्रवाह ही बदल जाएगा। यदि मैं विवाहित जीवन स्वीकार करता हूं तो पारिवारिक उलझनों से बाहर निकलने की समस्या मेरे सामने खड़ी हो जाएगी। उस स्थिति में तत्व-मीमांसा के रहस्यों की गहराई में जाकर खोज करने का उद्देश्य और आकांक्षा मुझे त्यागनी पड़ेगी। अर्थात् मैं पारिवारिक जीवन की गभीरता और व्यक्ति को उसके द्वारा व्याप लेने की कल्पना ही कर सकता था। मैं अपने अनेक मित्रों और परिचितों को जानता था जो एक बार विवाहित जीवन स्वीकार लेने पर अपने आदर्शों को भूल गए थे, अपने ध्येयों को त्याग चुके थे और अपने जीवन मार्ग को पूर्णतः बदल चुके थे। निश्चित रूप से इसमें सन्देह ही था कि मैं उन सारी बातों का मुकाबला करते समय अडिग बना रहूंगा जो विवाहित जीवन में किसी व्यक्ति को निगल जाती हैं और मालती के सहयोग से अथवा अकेले ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति में लगा रहूंगा। यह विचार भी मेरे मन में आया कि केवल अपने माता-पिता की प्रसन्नता के लिए मुझे अपने ध्येय को इस प्रकार दाँव पर नहीं लगाना चाहिए था। इस प्रकार पत्र को खोले बिना ही उसके भावों पर सोचते रहने और कल्पना तरंगों में मग्न होने में मेरा काफी समय बीत गया। पत्र मैंने दो बार पढ़ा, जो इस प्रकार था--

प्रिय माधव,

पूना

अनेक बार असफल प्रयास करने के बाद ही मैं तुम्हें यह खत लिख रही हूं। मुझे विश्वास है कि इसके लिखने के पीछे जो भावना है उसे तुम समझ लोगे। यदि कहीं पर मैं अपने को ठीक तरह व्यक्त नहीं कर सकी हूं तो मुझे गलत मत समझना, यह मेरी दुर्बल अभिव्यक्ति का ही दोष है। शायद मैं तुम्हें पहली बार पत्र लिख रही हूं। इसे स्त्रीत्व की अमर्यादा न मानों। वास्तव में, मुझे तुम्हीं से पत्र मिलने की आशा थी। हमारे घर के लोग हम दोनों के विवाह की बात सोच रहे हैं। इस बारे में तुम मेरे विचार जानना चाहते हो लेकिन मैं प्रतीक्षारत रही। तुमने कोई चिट्ठी नहीं लिखी। आखिर मैंने तय किया कि मैं ही तुम्हें पत्र लिखूंगी। अपने लम्बे परिचय और मित्रता को ध्यान में लाकर, सारी औपचारिकताएं ताक में रखकर मैंने सोचा कि एक बार इस बात का निर्णय हो जाए तो सारी दुविधा समाप्त हो।

कुछ मास पूर्व रविवार के दिन हम दोनों तुम्हारे बंगले पर मिले थे। तुम मुझसे कोई बात करना चाहते थे। तुम्हारा कहना था कि विषय गम्भीर और महत्व-पूर्ण है। मैंने बात टाल दी लेकिन तुम क्या कहने वाले हो यह मैं जानती थी। हमारे विवाह के बारे में बातचीत काफी समय पहले से ही चल रही है। कदाचित् तुम नहीं जानते लेकिन मुझे मालूम था, हमारे माता-पिता ने यह विवाह हमारी बाल्यावस्था में ही तय कर लिया था लेकिन सौभाग्य से जल्दबाजी में कोई कदम उठाने से पूर्व हमारे परिवार सुशिक्षित, सुसंस्कृत और प्रगतिशील विचार के होने के कारण उन्होंने मेरी पूरी क्षमता के अनुसार मुझे शिक्षा प्रदान की। मैं सोचती हूं कि उनका उद्देश्य सफल हुआ है। जहां तक हम दोनों की बात है, हम एक दूसरे को बचपन से ही जानते हैं और मेरा विचार यही था कि हमारा मिलन आदर्श विवाह के रूप में होगा। मैं तुम्हें देवता के रूप में देखती थी। खेलों में तुम्हारी प्रवीणता पर विद्यालयों, महाविद्यालयों में तुम्हारी कुशाग्र मेधा पर, तुम्हारे उज्ज्वल चारित्र्य पर मुझे बड़ा गर्व था। लेकिन जब म अपनी बात सोचती थी, तो मुझे निराश होना पड़ता। तुम खेलों में और पढ़ाई में ही अधिक ध्यान देते थे। तुमने नारी सहवास की कभी चिन्ता ही नहीं की। तुमने कभी भी मेरी ओर ध्यान नहीं दिया, कभी भी मुझ में रुचि नहीं दिखाई। हो सकता है कि तुम में प्रेम की ज्योति जलाने में मैं असमर्थ रही हूंगी। लेकिन मुझे यह भी मालूम हुआ कि आकर्षक व्यक्तित्व के बावजूद महाविद्यालय में तुम्हें रूखा ही माना जाता था। इस प्रकार तुम रूखे से रहते थे और ऐसे बन रहे थे जिससे नारी के अन्तःकरण को कभी संतोष नहीं मिल सकता। यह बात मेरी आंखों से ओझल न हो सकी। न जाने इसका क्या कारण था। हो सकता है कि तुम्हारे जीवन में ऐसी कोई घटनाए घटी हों जिन्हें मैं नहीं जानती, जिनके कारण तुम नारियों के बारे में रूखे बने रहे। सांसारिक पुरुष की अपेक्षा एक

दार्शनिक के जीवन की ओर तुम्हारा झुकाव था, इसने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। यदि मेरा अनुमान सही है, तो आश्चर्य की एक बात और थी कि वस्तुओं में तारतम्य भाव देखने, जीवन के मूल्य तोलने, हृदय से अधिक बुद्धि का प्रमाण्य मानने की तुम्हारी आदत बन गई है। जीवन के बारे में मेरे भावुक दृष्टिकोण पर इससे तुषारापात हो गया। जिस क्षण तुम स्वामी जी से मेरे घर पर मिले हो, तभी से तुम्हारे में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ है। उस क्षण को मैं कोसती रहती हूं।

मद्रास से लौटने पर तो तुम्हारा कायापलट हो चुका था। युवकों पर छायी रहने वाली और विवाहित जीवन सफल बनाने के लिए अत्यावश्यक बातों का मूल्य तुमने पूरी तरह से भुला दिया। तुम्हारी योग्यता के प्रति मुझे आदर है, तुम्हारे व्यक्तित्व के लिए मेरे मन में बड़ा सम्मान है और तुम्हारी अपनी उपलब्धियों के बारे में मैं बड़ा अच्छा मत रखती हूं।

अब मुख्य बात पर विचार करें। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम्हारे साथ विवाह करने से हमारा विवाहित जीवन सफल नहीं होगा। दुर्भाग्य की बात है कि सफल पति होने के लिए आवश्यक ऐसी कोई बात मुझे तुममें नहीं दिखाई देती। जीवन के बारे में जो हमारे दृष्टिकोण हैं, उनमें दो ध्रुवों का अन्तर है। और मेरा विश्वास है कि विवाह के उपरान्त मैं तुम पर बोझा बन जाऊंगी और तुम्हारे जीवन के साथ समरसता के साथ एकरूप नहीं हो सकूंगी। हमारा विवाहित जीवन सफल नहीं होगा। हम में से कोई भी सुखी नहीं हो सकता। मुझे भी अपने जीवन में अपेक्षाएँ हैं, महत्वाकांक्षाएँ हैं और तुम्हारे साथ विवाह करने से वे पूरी नहीं होंगी ऐसा मैं मानती हूं। सूक्ष्मरूप से देखने पर तुम्हें मालूम होगा कि हमारे स्वभाव मौलिक रूप से भिन्न हैं। कृपा कर मुझे छोटी बच्ची न समझें। मैंने दो वर्षों से लगातार इस समस्या पर गहराई से सोचा है और मैं इस निश्चित निर्णय पर आ पहुंची हूं। मैं भावुक हूं, अगम्भीर हूं। जीवन के सुखों को भोगना चाहती हूं।

तुम रूखे हो, हिसाबी हो और मैं यह भी कहूंगी कि विरक्त लोगों की प्रवृत्तियां तुम में उत्पन्न हुई हैं। तुम्हें दूसरों पर छाये रहने की आदत है और पारिवारिक जीवन में तुम किसी की बात नहीं मानोगे। मैं भी आज्ञाकारी स्वभाव की नहीं, मुझे भी छाये रहने की आकांक्षा है। मैं तुम्हारी पिछलग्गू बनकर रहना पसन्द नहीं करूंगी। किसी पर भार बनकर रहूं यह मैं नहीं सह सकती। इन सारी बातों के कारण में इसी निश्चित निर्णय तक पहुंची हूं कि हम विवाहबद्ध नहीं हो सकते। मित्र रहकर हम एक दूसरे की सहायता कर भी सकते हैं और यदि ऐसा नहीं भी होता तो कम से कम अपनी प्रगति में बाधक तो नहीं बनेंग। सौभाग्य से मेरा पालन पोषण भी तुम्हारे ही समान अच्छी तरह हुआ है और पिता की आर्थिक

संपन्नावस्था के कारण मुझे किसी बात की कमी नहीं है। स्वतन्त्र रूप से जीवनवृत्ति चलाकर अपनी अपेक्षाएं पूर्ण करने के लिए आवश्यक शिक्षा भी मैं ग्रहण कर चुकी हूं।

तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए अस्वीकृति देना मेरे माता-पिता के लिए क्या मायने रखता है यह मैं जानती हूं। उनको बड़ी भारी निराशा होगी। वे मेरी बात का गलत अर्थ भी लगा सकते हैं। उनकी जिन्दगी समाप्त प्रायः है और मुझे अपनी जिन्दगी अभी प्रारम्भ करनी है। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं अपना जीवन और भविष्य नहीं त्याग सकती। तुम हमेशा कहते हो कि सत्य निर्भय होता है और सारी समस्यायें हल कर देता है। इसलिए मैं अपनी समस्या सत्य के आधार पर ही हल कर रही हूं और इससे मेरे मन का बड़ा भारी बोझ हल्का हो गया है यह मैं स्वीकार करती हूं। दूसरी बातों को ध्यान में लाकर सत्य को दबाने से हमारा अपना जीवन नष्ट हो जाएगा। विश्वास रखो, मैं किसी दूसरे से प्रेम नहीं करती। भविष्य के बारे में मैंने नहीं सोचा है।

कारण तो क्या बताऊं, लेकिन मेरी धारणा बन चुकी है कि हमारे माता-पिता ने विवाह का प्रस्ताव तुम्हारे पर थोप दिया है। जो भी हो, जहाँ तक मेरा प्रश्न है, इस प्रकार के किसी प्रस्ताव से तुम मुक्त हो। इच्छानुसार अपना जीवन साथी चुनने की तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है। तुम्हें विवाहबद्ध होकर जीवन में बसा हुआ मैं देख सकूं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यद्यपि मैं नहीं सोचती कि तुम कभी विवाह करोगे भी। जैसा कि मैं सोचती हूं विवाह करना तुम्हारे जीवन का विचार कदापि नहीं हो सकता या ऐसा कहूंगी कि तुमने यह धारणा मन में बैठा रखी है कि जिस ध्येय की ओर तुम्हारी लौ लगी है उस ओर तुम्हारी प्रगति में विवाहित जीवन बाधक बना रहेगा। इस निर्णय से मैंने अपने माता-पिता को अवगत करा दिया है और आशा करती हूं कि कृपा कर तुम भी अपने माता-पिता को यह बता दोगे। इस अति स्पष्ट पत्र के लिए कृपया मुझे माफ कर देना और मुझे सदैव अपना मित्र मानते रहना अथवा जब कभी तुम गुरु का स्थान प्राप्त कर लो तब मुझे अपना शिष्य बना लेना। अपने माता-पिता को मेरा सादर प्रणाम कहकर मेरी ओर से विनती कर देना ताकि वे मुझे कहीं गलत न समझ लें।

तुम्हारे अच्छे स्वास्थ्य और खुशी की कामना में,

तुम्हारी निश्छल मित्र
मालती

मालती के पत्र ने जरूर कुछ मात्रा में मुझे व्याकुल कर दिया। मेरे मन में बड़ी उथलपुथल मची थी और मैं ठीक तरह से नहीं सोच पा रहा था। मालती की सोचने और समझने की क्षमता के लिए मेरे मन में प्रशंसा का भाव था। अपनी

समस्या इतनी अधिक योग्यता से हल करने और बारीकी से अवलोकन के लिए मैंने आज तक उसे इतना अधिक श्रेय नहीं दिया था। मेरे आचरण का विश्लेषण करने में वह कुछ ज्यादा बन गई थी। टिप्पणी करते समय उसने कुछ धृष्टता की थी ऐसा मुझे लगा। इससे निश्चित ही मेरे अभिमान को ठेस पहुंची थी और मुझे लगा कि मेरी अवज्ञा हुई है। फिर भी उसका आकलन सही नहीं था ऐसा मुझे नहीं लगा। मैंने उससे प्यार नहीं किया था यह बात सही थी लेकिन मैं सोचता हूं कि मेरा अपने कार्यकलापों में मग्न रहना ही इसका कारण था। अब मेरी समझ में आया कि नारी जाति का मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं था और जितनी मात्रा में उनका ध्यान रखना चाहिए उतना मैंने नहीं रखा। स्वाभाविक ही मालती ने चाहा होगा कि मैं उसका ख्याल रखूं और उससे प्रेम करने के बाद ही विवाह के प्रस्ताव को स्वीकृति दूं। नारी जिस प्रेम की अपेक्षा करती है उसमें वासना, यौवन और जोश ही रहता है। इस में वास्तविकता और प्रेरणा होनी चाहिए। मालती से वास्तविक प्रेम किए बिना केवल माता-पिता की प्रसन्नता के लिए मालती के साथ विवाह करने के लिए अनुमति देना केवल गलत ही नहीं, तो अक्षम्य अपराध था। मैं मालती को प्रेमविहीन मिलन में खींचने का प्रयास कर रहा था जिससे निश्चित ही उसका जीवन दुःखी हो जाता, मुझे इसका कोई हक नहीं था। मैंने केवल अपना विचार किया, अपने बारे में सोचा और जिसे मैं अपना जीवनपर्यन्त साथी बनाना चाहता था उस मालती के, उसकी भावनाओं के बारे में मैंने कुछ भी नहीं सोचा। निश्चित ही मैं स्वार्थी था, आत्मकेन्द्रित था। उसके पत्र से मेरी भावनाओं को ठेस पहुंची थी पर उसने मेरी आंखें खोल दीं। अब नारी मन के सोचने के ढंग के बारे में अपना अज्ञान मुझे मालूम हुआ। मालती के पत्र ने मुझे इस बात का स्मरण करा दिया कि माता-पिता के द्वारा शादी तय किए जाने के पुराने दिन अब लद गए। बिना प्रेम के विवाह अब बर्दाश्त नहीं होगा, कम से कम मालती जैसी सुशिक्षित और सुसंस्कृत लड़कियों के द्वारा तो कभी भी नहीं।

दूसरे दिन मालती को मैंने यह पत्र लिखा—

प्रिय मालती,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा और उसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं।

मेरे चरित्र का निर्भीक विश्लेषण करने के लिए मैं तुम्हारा बड़ा आभारी हूं। मैं अपना बचाव करना नहीं चाहता और न मैं यह बताना चाहता हूं कि तुम कहां पर गलत हो। पिछली बार जब हम पूना में मिले थे उस समय मैंने तुम्हारा मत जानने का प्रयास किया था लेकिन तुम्हारे कुछ निजी कारणों से तुमने मुझे इस प्रकार का अवसर ही नहीं दिया कि मैं अपने को स्पष्ट कर सकूं। तुम्हारे माता-पिता के साथ

जब मेरी मुलाकात हुई थी, उस समय हम दोनों के विवाह के विषय पर अपने विचार मैंने स्पष्टतापूर्वक उनके समक्ष रखे थे।

मैं नहीं जानता कि किस सीमा तक उन्होंने तुम्हें विश्वास में लिया है। दर्शनशास्त्र और तत्वमीमांसा की ओर मेरे झुकाव के बारे में तुम्हारा कथन कुछ अंश तक सही है, लेकिन भविष्य में उनके द्वारा मेरा जीवन किस प्रकार प्रभावित होगा, यह मैं इस समय नहीं बता सकता। स्वामी जी और गुरुदेव का मेरे पर केवल प्रभाव ही नहीं बल्कि मेरे जीवन में उनके लिए एक विशेष स्थान है जिसे मैं अस्वीकार नहीं करता। आज मैं एक सामान्य सरकारी सेवक की जिन्दगी जी रहा हूं लेकिन मैं नहीं बता सकता कि भविष्य में मेरे जीवन में कौन सा मोड़ आएगा। खेलों में रुचि लेने और जीवन को सुकोमल भावनाओं की ओर उदासीन मनोवृत्ति के कारण मैं नारी जगत की ओर ध्यान न दे सका। मैंने प्रेम को कभी खेल नहीं समझा। तुम्हें मैं रूखा लगा हूं इसका मुझे दुख है। स्त्री स्वभाव का ज्ञान न होने से मैं तुम्हारा मन नहीं जान सका इसके लिए मुझे खेद है। तुमने बड़ी स्पष्टता से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं और मैंने उन्हें सही ढंग से समझ लिया है।

मुझे हमेशा ही तुम्हारी भलाई की चाह रही है और मैं आशा करता हूं कि जीवन में तुम्हें सुख मिलना चाहिए। तुम अपना जीवन साथी चुनने और भविष्य का निर्धारण करने में सक्षम हो। तुम्हें पूरी सफलता मिले और संसार की सारी अच्छाइयाँ तुम्हें प्राप्त हों, इसके लिए मैं अपनी मंगल कामनाएं प्रकट करता हूं।

कृपया यह भी ध्यान रखना कि मैं सदैव ही तुम्हारी सहायता के लिए तत्पर रहूंगा।

तुम्हारे मंगल स्वास्थ्य की कामना में

निश्छलता से तुम्हारा
माधव

मालती के निर्णय के बारे में मैंने पिता जी को खत लिख दिया। मैंने यह भी लिख दिया कि वे अब आगे विवाह के प्रस्तावों का विचार न करें क्योंकि मैंने अविवाहित रहने का निर्णय कर लिया है।

पिताजी और मालती को पत्र लिखने के पश्चात् मुझे बड़ी राहत का अनुभव हुआ जैसे कि मैं एक बड़ी भारी जिम्मेदारी से मुक्त हो गया हूं। जिस प्रकार मैं इस समस्या को हल करना चाहता था, उसी प्रकार इसका हल मिलने के लिए गुरुदेव ने मेरी बड़ी सहायता की है यह मैं जान गया। अब मैं अपनी इच्छानुसार जीवन को मोड़ने में स्वतन्त्र था।

पांचवां प्रकरण

एक सप्ताह के भीतर पिताजी का पत्र मुझे मिल गया। उन्होंने लिखा था, "मालती के मना करने से निराश क्यों होते हो? तुम्हें यह बात दिल में नहीं रखनी चाहिए। यदि तुम छुट्टी लेकर घर आ सको तो चले आओ। आजकल तुम्हारी मां की तबीयत ठीक नहीं रहती, इसलिए तुम कुछ दिन तक यहां रहो तो उन्हें सुख होगा।"

यद्यपि मुझे कार्यालय में काफी काम रहता था, मैं घर में अकेलेपन का अनुभव कर रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि मैं कहां जा रहा हूं। इस सारे समय मुझे गुरुदेव की याद बराबर आती रही। उनसे मिलने की बड़ी इच्छा हो रही थी। स्वामी जी और गुरुदेव से सम्पर्क स्थापित करना बड़ा कठिन था क्योंकि उनके रहने के स्थान के बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं था। इसलिए मैंने सोचा कि रविन्द्र चेट्टियर को पत्र लिखकर गुरुदेव के बारे में कुछ पता करूं। काफी समय से मैंने पत्र नहीं लिखा था इसलिए अपनी गतिविधियों आदि के बारे में मैंने उसे पत्र लिखा। रविन्द्र ने बड़ी तत्परता से जवाब भेजा। उसने मुझे बधाई देते हुए अपने परिवार के अन्य सदस्यों की ओर से शुभकामनाएं प्रकट की थीं। मेरा काम ठीक चल रहा है यह जानकर उन्हें प्रसन्नता थी। लेकिन उसने लिखा था कि गुरुदेव के बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं है। इस प्रकार मैं अशान्त मनोदशा में था और मेरी चितवृति उदास हो गई थी। उसी समय रमेश का पत्र मुझे मिला। उसने लिखा था कि आगे की पढ़ाई करने वह आक्सफोर्ड जा रहा है और मुझसे मिल लेना चाहता है। मुझे यह परिवर्तन अच्छा लगा और मैंने सोचा कि उससे भेंट होने पर मेरी चित्तवृति उद्कासित होगी। इसलिए मैंने उसे तार दिया कि मैं धारवाड़ में हूं और वह यथाशीघ्र यहां पर आ जाए।

उस दिन शनिवार था। सुबह स्टेशन पर मैं रमेश को लेने गया। रविवार की छुट्टी होने से उसके साथ पूरा दिन बिताने की बात सोचकर मैं खुश था। गाड़ी समय पर पहुंची और रमेश अपने डिब्बे से नीचे उतरा। उसका स्वास्थ्य अच्छा था और वह प्रसन्न मुद्रा में था। लम्बे प्रवास के कारण वह थक गया था। मुझे देखकर उसने कहा, "तुम कमजोर हुए हो। तुम्हें कौन सी चिन्ताएं सता रही हैं?" मैंने हंसकर कहा, "घोड़े जैसे काम में जुटा हूं। आजकल बड़ा काम रहता है।" घर आने पर

मुझे लगा कि मेरी मनोवृत्ति में प्रसन्नता आ रही है। रमेश विनोदी स्वभाव का था। वह मेरा पुराना साथी था और मित्र भी। हमने कई वर्ष एक साथ बिताए थे और हमें बहुत सारी बातें करनी थीं। वह विलायत जाने की बात सोच रहा था। उसकी दृष्टि में विलायत हो आना उसके भविष्य निर्माण में एक बड़ी सीढ़ी पार करने जैसी ही थी। मैं अच्छी तरह जानता था कि परीक्षाओं में वह विशेष योग्यता के साथ सफलता प्राप्त करेगा क्योंकि वह बुद्धिमान था और मेहनती भी। उसे विश्राम करने के लिए कह कर मैं कार्यालय चला गया।

उस दिन शनिवार होने से मैं जल्दी घर लौट आया। घर पहुंचा तो रमेश अभी विश्राम ही कर रहा था। थकान मिट जाने से अब वह प्रसन्न लग रहा था। चाय लेते समय उसने मालती से मेरे विवाह के विषय में बात छेड़ दी। उसने कहा "माधव, यदि कोई छिपाकर रखने वाली बात न हो और तुम बुरा न मानो तो मुझे बताओ कि तुम्हारी और मालती की शादी लगभग पक्की बतायी जा रही थी, फिर बात कहां पर अड़ गई? तुम्हारी सगाई टूट गई यह जानकर हम सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।" मैंने कहा, "न तो हमारी सगाई हुई थी और न ही शादी पक्की होने की कोई बात थी। मुझे नहीं पता था कि सब लोग ऐसा ही कह रहे थे और हमारे परिचित लोग इस बात में रुचि ले रहे थे। हां, एक बात जरूर थी कि हम दोनों के ही माता-पिता चाहते थे कि हम लोग विवाह सूत्र में बंध जायें। लेकिन केवल चाहने मात्र से तो कुछ होता नहीं। मौलिकतः हमारे स्वभाव एक दूसरे से भिन्न हैं। केवल यही बात नहीं, हम दोनों की भिन्न-भिन्न रुचियां हैं और जीवन विषयक दृष्टि-कोणों में भी भिन्नता है।

"हमारे उद्देश्यों, आदर्शों और ध्येयों में किसी प्रकार की समानता नहीं है और तुम तो समझ ही सकते हो कि केवल माता-पिता के द्वारा शादी की बात पक्की नहीं की जा सकती। तुम यह भी जानते हो कि आजकल मुझे जिस बात से लगाव हो गया है, वह विवाह के अनुकूल नहीं है। मेरे निर्धारित मार्ग में विवाहित जीवन कदाचित् बाधक ही सिद्ध होगा। वर्तमान स्थिति में मैं किसी जिम्मेदारी का भार खुद पर लेने के लिए तैयार नहीं हूं और अपने अंगीकृत कार्य में यदि मुझे सफलता मिलती है तब तो मेरे जीवन में विवाह जैसी कोई बात नहीं हो सकती। इसलिये मैंने तय कर लिया है कि शादी नहीं करूंगा और अविवाहित बना रहूंगा। इसलिए मैं नहीं चाहता कि मालती का जीवन दुःखी कर दूं।" यह सुनकर रमेश कुछ गम्भीर हो गया।

उसने कहा, "इतने वर्षों से मैं तुम्हारा मित्र हूं फिर भी तुम्हें जरा भी नहीं समझ सका। तुम इतनी तेजी से बदलते जा रहे हो कि दूसरे क्षण क्या होगा इसकी

कल्पना करना कठिन है। मैं दर्शनार्थ का विद्यार्थी हूं और मैंने ही इस विषय में तुम्हारी रुचि पैदा की है। इस विषय में विदत्ता अथवा प्रवीणता, जो भी कहा जाये मैंने प्राप्त कर ली है और अपनी शिक्षा विषयक सफलता से मुझे सन्तोष भी है लेकिन तुम में इसका केवल व्यावहारिक पक्ष ही मैं देख रहा हू तो मुझे सन्देह होता है कि कहीं तुम कोई बड़ा दांव लगाकर जुआ तो नहीं खेल रहे?" मैंने उससे कहा, "ऐसी बड़ी बात कुछ नहीं। लेकिन मैं किसी खोज मे हूं और इस प्रकार की जटिलताएं पैदा करना नहीं चाहता, जो मेरी आकांक्षाओं की पूर्ति होने में बाधक बनें।"

किसी दूसरे विषय पर बातचीत करने के लिए मैंने उससे पूछा, "तुम मालती से कब मिले थे?" उसने कहा, "यहां आने के एक ही दिन पूर्व में वहीं पर था। मालती को विलायत में सामाजिक विज्ञान पर अध्ययन के लिए छात्रवृति मिलने की सम्भावना है।" रमेश मेरे साथ दो-तीन दिन रहा और मनोविनोद में हमारा समय अच्छी तरह बीत गया। उसके बंगलौर चले जाने पर मैं पूर्ववत् काम में अपना मन एकाग्र करने में समर्थ हो गया। रमेश से मेरी भेंट हुई यह बात मालती को मालूम थी, फिर भी मैंने इस सम्बन्ध में पत्र लिख दिया और अवसर का लाभ उठाकर विलायत जाने की सम्भावना के लिए बधाई भी दी और सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं पहले ही प्रकट कर दीं। मैंने यह भी लिख दिया कि विलायत जाने से पर्याप्त समय पहले वह मुझे सूचित कर दे ताकि उसके समुद्र यात्रा पर निकलते समय विदाई के अवसर पर मैं भी उपस्थित हो सकूं।

छठा प्रकरण

कुछ फौजदारी मामलों की लंबी जांच पड़ताल के लिए मुझे कुछ अधिक समय तक जिले में रहना पड़ा। यह जिला मलेरिया के लिए कुप्रसिद्ध है और सावधानी बरतने के बावजूद मुझे मलेरिया का बुखार आ गया। अपना काम पूरा कर जब मैं मुख्यालय लौट आया तब मैं बीमार ही था और सिविल सर्जन ने मुझे पूर्ण विश्राम की सलाह दी। मेरी छुट्टी मंजूर हो गई और मैंने सोचा कि बंगलौर चला जाऊं और फिर ऊटी रुकूं ताकि स्थान बदल हो जायेगा। जिस दिन मैं धारवाड़ से प्रस्थान करने वाला था, उसी दिन पिता जी का तार मुझे मिला जिसमें लिखा था कि गुरुदेव बम्बई में हमारे किसी परिचित के यहां रुके हैं। इसलिए अपनी योजना बदल दी और बंगलौर के बजाय मैं बम्बई चला गया।

मेरे डाक्टर भाई ने जाँच के बाद बताया कि मुझे मलेरिया हुआ है उन्होंने मुझे दवाइयां दीं और पूर्ण विश्राम के लिए कहा। दोपहर मैंने गुरुदेव के बारे में पूछ-ताछ की तो पता लगा कि वे बम्बई से चले गये हैं। उन्होंने मेरे लिए संदेश छोड़ रखा था कि मैं अहमदनगर चला जाऊं, वे निश्चित रूप से वहीं पर मुझे मिलेंगे। इसलिए भाई से पूछकर मैं उसी रात अहमदनगर के लिए चल दिया। मुझे देखकर माता-पिता बड़े खुश थे। माता जी बोलीं, "तुम बहुत दुबले हुए हो, तुम्हारा वजन भी घट गया है।" पिताजी ने कहा कि मलेरिया की वजह से ही ऐसा हुआ है। जब मैंने उन्हें बताया कि गुरुदेव ने मुझे आश्वासन दिया है कि वे यहां आयेंगे, किसी भी दिन उनका आगमन हो सकता है यह सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई, माता जी तो बहुत अधिक खुश थीं और वे बोलीं, "गुरुदेव का स्वागत करने के लिए हमें घर को व्यव-स्थित रखना चाहिए। इसके लिए समय गंवाना ठीक नहीं।" उन्होंने सब नौकरों को बुलाकर जरूरी हिदायतें दीं और स्वयं भी बड़ी तत्परता से काम में जुट गईं। पिताजी भी प्रसन्न थे। उन्होंने मुझे बताया कि कुछ वर्ष पहले गुरुदेव से उनकी मुला-कात हुई थी लेकिन उस समय उन्हें ऐसा नहीं लगा कि गुरुदेव इतने महान होंगे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि जीवन के इस पहलू पर उन्होंने गंभीरता से कभी ध्यान ही नहीं दिया। दो दिन तक माता जी बहुत व्यस्त थीं। सारी चीजें अपने मन के मुताबिक सही ढंग से रखते हुए उन्होंने घर की काया पलट कर डाली। बार-बार मुझे पूछने लगतीं कि गुरुदेव को क्या अच्छा लगता है, उन्हें किस प्रकार प्रसन्न किया जा सकता है?

मैंने उन्हें बताया कि मैं रामेश्वरम् और मद्रास में उनके साथ था। रामे-श्वरम् में हम एक सामान्य सब्राह्मण परिवार के साथ छोटे से घर में ठहरे थे। गुरुदेव वहाँ पर बड़े आराम से थे और उन्हें कोई परेशानी नहीं थी। मद्रास में हमारा निवास एक करोड़पति के यहां था लेकिन वैभवशाली वस्तुओं के कारण गुरुदेव ने विशेष रुचि नहीं दिखाई। इसलिए मैंने उन्हें बताया कि आर्थिक परिस्थितियों, आरामदेह वातावरण या अन्य बातों से गुरुदेव प्रभावित होने वाले नहीं हैं। मेरी माता जी को यह सुनकर सन्तोष नहीं हुआ और वे सारे समय तक इसी बात के लिए परेशान रहीं कि गुरुदेव का निवास अधिक सुख सुविधापूर्वक हो। नौकर भी यह नहीं समझ पा रहे थे कि यह आने वाला व्यक्ति आखिर था कौन जिसके लिए इतने परिश्रम से व्यवस्थाएं हो रही हैं। आखिर माता जी की दृष्टि से सारी व्यवस्थाएं पूरी हो गईं।

सुबह के समय हम चाय ले ही रहे थे कि बंगले के सामने ताँगा रुकने की आवाज सुनायी दी। जब मैंने देखा कि स्वामी जी और गुरुदेव तांगे से नीचे उतर रहे हैं तो मैं अपनी कुर्सी से उछल पड़ा और बाहर की ओर दौड़ने लगा। मैं जोर से

चिल्लाया और उनसे मिलने के लिए जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा। नौकर सामान लेने दौड़े लेकिन उठाने के लिए कुछ सामान ही नहीं था। स्वामी जी के पास कपड़ों से भरे थैले थे। गुरुदेव के कंधे से एक झोला लटक रहा था। उनके बायें हाथ में कमंडल था और दायें हाथ में मोटा सा दंड। कितने लम्बे समय बाद मैं गुरुदेव से मिल रहा था और उन्हें देखकर अपनी खुशी व्यक्त नहीं कर पा रहा था। मेरे गालों पर आँसू लुढ़क रहे थे। मुझे पता नहीं था कि गुरुदेव ने मुझ पर इतना अधिक प्रभाव डाल रखा है। बड़ी श्रद्धा से माता-पिता ने द्वार के पास गुरुदेव का स्वागत किया। गुरुदेव की उपस्थिति के कारण हम सभी को भिन्न-भिन्न प्रकार से राहत मिलने का अनुभव हुआ। ऐसा लग रहा था कि हम सभी किसी प्रकार के मानसिक तनाव में थे और गुरुदेव की उपस्थिति से हमें उससे छुटकारा मिल गया। गुरुदेव अपनी स्वाभाविक मनोवृत्ति में थे और स्वामी जी हमेशा की तरह विनीत शिष्य के रूप में। स्वामी जी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कितने वर्ष बीत चुके थे, उनसे मिले हुए। जब से वे रामेश्वरम् से गए थे तभी से मैं उन्हें नहीं मिल पाया था। मुझे जैसी आशा थी, गुरुदेव घर की तरह ही, आराम से बैठे थे। उन्होंने कहा, "माधव, मैं तुम से और तुम्हारे पिता से मिलना चाहता था, इसलिए यहाँ चला आया। कहो, कैसा चल रहा है, तुम कमजोर दिखाई दे रहे हो?" मैंने अपनी बीमारी के बारे में बताते हुए कहा कि मुझे मलेरिया हुआ था उसी का इलाज चल रहा है। गुरुदेव और स्वामी जी अपने कमरे में गये। माता जी खाने का इन्तजाम देखने रसोई में गईं। मैं गुरुदेव के कमरे में यह देखने गया कि किसी बात की आवश्यकता तो नहीं है। स्नान करने के बाद स्वामी जी मेरे कमरे में आये और मेरा हालचाल पूछा। उन्होंने कहा, "मैं तुम से मिलना चाहता था किन्तु इस ओर आने का मौका नहीं मिला क्योंकि मैं बंगाल में प्रवास कर रहा था। मद्रास में गुरुदेव के साथ कैसा लगा? गुरुदेव में तुम्हारी श्रद्धा है, यह देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई। गुरुदेव भी तुम्हारे में रुचि रखते हैं इसके लिये तुम्हें बधाई है। तुम अच्छी नौकरी में हो यह भी खुशी की बात है।"

हम लम्बे समय के पश्चात् मिल रहे थे, इसलिए हमारे पास बहुत सारी बातें थीं। हमारी बातचीत चल रही थी कि माता जी ने कहा कि खाना तैयार है। गुरुदेव ने आनन्द के साथ भोजन किया और इतना परिश्रम लेने के लिए माता जी की सरा-हना की। हम लोग सामान्य विषयों पर बातें कर रहे थे। इस शहर में कई लोगों से गुरुदेव का परिचय था और उनके बारे में वे पिता जी से पूछ रहे थे। उन्होंने पिता जी से कहा—

"माधव की माताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं लग रहा है, आप उनके स्वास्थ्य विशेष ध्यान रखें और आप भी कमजोर हो गए हैं। आपका भी स्वास्थ्य ठीक

नहीं लगता। पिताजी ने कहा, हमारा बुढ़ापा नजदीक आ रहा है और अब तो हमारे स्वास्थ्य की चिन्ता माधव को ही करनी है। गुरुदेव मुस्कराये। बोले कुछ नहीं। पिताजी ने कहा—

"अब मैंने वकालत छोड़ दी है और निवृत्त हो गया हूं गुरुदेव, आप हमारे साथ कुछ दिन रहें, और यदि परलोक जैसी कोई बात हो तो वह हमें सुलभ हो इसके लिए हमारा मार्ग दर्शन करें।" गुरुदेव ने जवाब नहीं दिया। उन्होंने यह कहा कि ये कुछ दिन तक रुकने वाले हैं क्योंकि अहमदनगर के आसपास के स्थानों पर उन्हें जाना है। नगर जिले का परिसर उन्होंने इतनी अच्छी तरह ज्ञात था और हरेक स्थान का वर्णन उन्होंने इतनी बारीकी से किया कि मेरी माता जी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने गुरुदेव से पूछा, "आप कितने साल यहाँ रहे हैं ?" गुरुदेव ने कहा—"मैं यहां कई बार आया हूं। यहाँ के कण-कण को, पत्थर या पेड़ को मैं अच्छी तरह जानता हूं फिर दूसरी चीजों की बात ही क्या है ? मैं संसार भर में घूमता रहता हूं और हिन्दुस्तान में ऐसी एक भी जगह नहीं है जहाँ मैं नहीं गया हूं।" भोजन समाप्त हुआ। गुरुदेव और स्वामी जी अपने अपने कमरे में विश्राम लेने चले गए।

दोपहर हम लोग कक्ष में बैठे। गुरुदेव के आगमन के बारे में पिताजी के कुछ मित्रों को पता चल गया था इसलिए वे भी उनसे मिलने आए थे। गुरुदेव ने पिताजी को बताया था कि उनके आने की बात का प्रचार न हो और वे सम्भव हो तो अकेला रहना चाहते हैं। इसलिए यह पारिवारिक सम्मेलन सा ही था क्योंकि किसी कम परिचित या बाहरी व्यक्ति को आने के लिए मना ही था। इसलिए दर्शन के लिए भीड़ या अनचाहे लोगों का आगमन नहीं था। हम सब लोग आराम से बैठकर स्नेह भरी बातचीत कर रहे थे।

मेरी माता जी ने कहा—"गुरुदेव, माधव हमारा सबसे छोटा लड़का है। स्वाभाविक ही हम दोनों की इच्छा है कि वह जीवन में बस जाये। वह अच्छे पद पर काम कर रहा है और यही समय है जब उसका विवाह हो जाना चाहिए। वह कहता है कि शादी नहीं करूँगा। आपका उस पर बड़ा प्रभाव है और मुझे विश्वास है कि यदि आप उसे कहते हैं तो वह आपके आदेश की अवहेलना नहीं करेगा। क्या आप नहीं सोचते कि अब उसे जीवन में स्थिर हो लेना चाहिए ?" गुरुदेव मुस्कराये। उन्होंने मेरी ओर देखा और पिता जी से पूछा, "आप अपने बेटे का हित चाहते हैं या यह चाहते हैं कि उसके लिए आपने जो कार्यक्रम बना रखा है वह उसी पर चले ?" पिता जी ने कहा—"माधव के लिए अब जीवन में बसने के अलावा क्या रह गया है ? उस की शिक्षा पूरी हो चुकी है, उसे पक्की नौकरी मिल चुकी है, वह जो भी चाहता है वह उसके पास है और यदि वह विवाह करके जीवन में स्थिर हो लेता है, जैसा कि

हम सबने किया है, तो हमें संतोष होगा। मुझे नहीं पता कि उसके अविवाहित रहने से कौन सा हल निकलने वाला है। वह किसी भी लड़की से शादी कर सकता है और हमें विश्वास है कि उसका चुनाव अच्छा ही रहेगा और वह अपनी जाति और समाज के बाहर की किसी लड़की से शादी करता है तो भी हम आड़े नहीं आयेंगे। अपने हितों का ध्यान रखने में वह समर्थ है। हम तो हमारे आखिरी वर्षों में यही चाहते हैं कि वह सुखी हो।" गुरुदेव कुछ गम्भीर हो गए। उन्होंने कहा—"क्या आप यह सोचते हैं कि इतनी शिक्षा पाने और संस्करित होने के बावजूद माधव अपने जीवन का मार्ग निर्धारण करने में सक्षम नहीं है ? क्या आप अब भी यही सोचते हैं कि वह बच्चा है और खुलेपन से सोचने की क्षमता उसमें नहीं है ? क्या आप ईमानदारी से अपने पुत्र का हित चाहते हैं या आप इस बात के लिए उत्सुक हैं कि उसे आपकी जीवन-शैली अपनानी चाहिए ? क्या आपको पूरा विश्वास है कि आपकी जीवन-शैली ही धरती पर सबसे अच्छी है और सब लोगों को उसी को अपनाना चाहिए ? क्या आपने कभी यह सोचा कि किस आदर्श को लेकर आपने विवाहित जीवन चुना, अपने दोनों पुत्रों पर वही भार रखा और क्या आपने या उन्होंने उस आदर्श को पा लिया ?" मेरे पिता जी ने कहा, "शान्ति, सुख और सन्तोष के अलावा और दूसरा आदर्श क्या हो सकता है ?' गुरुदेव ने कहा—"अब मैं आपकी सही स्वीकृति और प्रामाणिक कथन चाहूंगा कि क्या आप जीवन भर में या इस अवस्था में भी सुखी, शान्त और संतुष्ट हैं ? ईमानदारी से सोचे बिना या अपने अतीत और वर्तमान का निकटता से अवलोकन किए बिना कृपया आप इस प्रश्न का उत्तर न दें। मैं चाहता हूं कि आप दोनों इस बात पर सोच लें और अपनी सुविधानुसार इसका जवाब दें। यदि आप समझते हैं कि आप शान्त, सुखी और सन्तुष्ट हैं, आपको किसी बात की आकांक्षा, इच्छा अथवा अभिलाषा नहीं है, और आप यह भी सोचते हैं कि आपको कोई क्लेश चिन्ताएँ और उद्वेग नहीं रहे तो इन सारी आपत्तियों से रहित और निश्चित रूप से सुख की ओर ले जाने वाले अपने मार्ग पर चलने के लिए आप पुत्र से कह सकते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो जिस प्रकार की जीवन शैली उसे दुःख, आपत्ति, कष्ट, नित्य नई बढ़ने वाली इच्छाओं और अभिलाषाओं की ओर ले जाती है और संपूर्ण सुख की ओर नहीं ले जाती, उसी का अनुसरण करने के लिए उसे कहना केवल मूर्खता ही नहीं तो एक प्रकार से घातक ही होगा। इसलिए मैं जानना चाहता हूं कि आपके अन्तःकरण में अपने पुत्र के कल्याण की कामना है या नहीं है, अर्थात ही यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि आप जान बूझ कर उसे आपत्तियों के मुंह में धकेलना चाहते हैं। आप सबके जीवन का उद्देश्य स्वाभाविक ही, सुख, शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति करना रहा है लेकिन क्या आपने इतने वर्षों की मेहनत और कठिन परिश्रम के बाद भी उसे प्राप्त कर लिया ? यदि आप सबको उपरोक्त बातें नहीं मिली तो यह स्पष्ट है कि आपका मार्ग सही मार्ग नहीं

है। मैं समझ सकता हूं कि जब आप प्रवाह के बीच फंस गये हैं और धारा के वेग से बहे जा रहे हैं तो अपने मार्ग को बदलना और धारा से विपरीत तैरते रहना बड़ा ही कठिन काम है। बहुत कम लोग ही इसमें सफलता प्राप्त कर सके हैं। क्या इसलिए यह बुद्धिमानी नहीं कि जान बूझ कर प्रवाह में जाने से बचा जाये जिससे स्वाभाविक ही विपदा, निराशा और कुण्ठा आदि दूर होंगी। यदि आप वास्तव में अपने पुत्र का भला चाहते हैं तो आप उसे अपने अनुभव बतायें और निराशाओं, कुण्ठाओं और जीवन की दूसरी आपत्तियों से उसे दूर रखने का प्रयास करें जो इस प्रकार की जीवन-शैली अपनाने वाले लोगों के भाग्य में बदी हैं। आपके अनुभवों के सन्दर्भ में आप वस्तुओं का मूल्यांकन करें, आपके समाज, पद, जीवन के दर्जे, सामाजिक नियम, कुलाचार अथवा पैतृक महत्वाकांक्षाओं के सन्दर्भ में नहीं। केवल ऊपरी तौर पर या लौकिक दृष्टि से किसी समस्या पर सोचने से लाभ नहीं होगा जो आपके पुत्र के हित से गहरा सम्बन्ध रखती है। जो सारवान् और महत्व की बात है वह है आंतरिक चिन्तन, आपके अंतरंग अनुभव और इन दोनों पर आधारित आपके निष्कर्ष। इसलिए, मुझे आपसे आग्रह करना है कि आप दोनों मिलकर और अलग-अलग भी, इस बात पर बड़ी गम्भीरता से सोचें और देखें कि आपके क्या अनुभव रहे हैं और फिर मुझे बतायें कि अपने प्रिय पुत्र को आप क्या सलाह देंगे? ईमानदारी से सोचने में अरुचि, सूक्ष्म अवलोकन का भय ताकि कहीं निष्कर्ष अप्रिय न हों, इसी कारण आपमें से अधिकांश व्यक्तियों के जीवन दुःखी हो गए हैं। यह केवल आप या आपकी पत्नी के साथ ही नहीं बल्कि उस प्रत्येक के साथ है जिससे समाज, विश्वास, श्रम रूढ़ियों, राष्ट्र एवं विश्व बनता है। जिसे आप समाज या सामाजिक व्यवस्था कहते हैं उसमें लोग दुःखी होते आये हैं और आश्चर्य की बात है कि अपनी सन्तान पर भी वे किसी न किसी प्रकार वही शैली, वही योजना लादना चाहते हैं। इसी बात ने संसार में दुःख और कष्टों को बढ़ाया है। हो सकता है यह कुछ तो अज्ञानवश हो और कुछ प्रामाणिक चिन्तन और अवलोकन के अभाव के कारण हो। मुझे पूरा विश्वास है कि जब आप प्रामाणिक चिन्तन और अवलोकन करेंगे तो आप वह शैली अपनी सन्तान पर लादने का प्रयास नहीं करेंगे जो आप को सुखी बनाने में असमर्थ रही है और जिसके कारण आपके दुःख बढ़े हैं।

इसलिये मैं चाहूंगा कि अपना मत बनाने से पहले आप अपने स्वयं के अतीत और वर्तमान के बारे में अच्छी तरह सोच लें उसे देख ले। आपको ऐसे रास्तों को खोजना चाहिए जो आपके पुत्र का जीवन कुण्ठा और निराशा से रहित, कम जटिल और उदात्त बना दें। मैं आपको सोचने के लिए पर्याप्त समय देता हूं और कल जिस समय हम पुनः इस समस्या को समझने का प्रयास करेंगे, उस समय मैं आपका मत चाहूंगा। मैं आपको इस बात से अवगत करा

दूं कि मैं आपकी और आपके पुत्र की सहायता करने के लिए ही यहाँ पर उपस्थित हुआ हूं, मुझे आपसे कोई अपेक्षाएं नहीं हैं और आपसे या आपके पुत्र से परितुष्टि भी नहीं चाहता हूं।" थोड़ा चुप रहकर गुरुदेव ने कहा कि वे घूमने के लिए बाहर जाना चाहते हैं। स्वामी जी और मैं उनके साथ जाने के लिए घर से बाहर निकले। हम लोग काफी दूर तक घूमते रहे और देर से घर लौटे। गुरुदेव ने भोजन नहीं किया, केवल एक प्याला दूध ग्रहण किया। भोजन के समय पिता जी ने स्वामी जी से पूछा, आप कब से गुरुदेव के साथ हैं?" स्वामी जी ने कहा कि उन्हें गुरुदेव के साथ रहे लगभग तीस वर्ष बीत चुके हैं। माताजी ने कहा, "तब तो आपने काफी कुछ सीख लिया होगा।" स्वामी जी ने कहा, "सीखने के लिए कुछ भी नहीं है, किन्तु हां, मैंने जरूर ऐसी कई बातें भुला दी होंगी जिनके कारण मेरा जीवन अहवादी और दुःखी बना था।" पिताजी ने कहा, "स्वामीजी, साफ-साफ बतायें, क्या आपने आत्म-साक्षात्कार पा लिया है? "स्वामी जी ने कहा, "क्षमा करें, आपके प्रश्न का उत्तर मैं हां या ना में नहीं दे सकता और स्पष्ट कर दूं तो, साक्षात्कार एक अनुभव है, उपलब्धि नहीं आप उस वस्तु के बारे में निश्चिन्त नहीं हो सकते जो मूलतः अनिश्चित है, आप उसे नहीं जान सकते या आप उसे जानते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता जो अज्ञात है। साक्षात्कार इस प्रकार का होता है जिसमें अज्ञान दूर किया जाता है अथवा जिन तत्वों ने ज्ञान को ढक लिया होता है उन्हें हटाया जाता है। इसलिए किसी व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं कि वह कहे कि उसे साक्षात्कार हो गया है। साक्षात्कार में 'मैं' पूरी तरह मिट जाता है यह ज्ञान के विशाल सागर में विलीन हो जाता है। एक नदी की, अपने संपूर्ण मार्ग तक, एक अलग हैसियत होती है, किन्तु उस बिन्दु पर नहीं जहाँ वह विशाल सागर में मिल जाती है। अनेक नदियां भिन्न-भिन्न दिशाओं से आती हैं और अनेक स्थानों पर समुद्र में मिलती हैं, किन्तु एक बार वे सागर में मिलीं तो उनकी अलग हैसियत इतनी पूरी तरह समुद्र के पानी में खो जाती है कि वे केवल दूसरे को ही नहीं तो खुद को भी अपने को पृथक रूप में पहचान नहीं सकतीं। सागर में मिलने से पहले हर नदी की अपनी अलग हैसियत थी और उसी प्रकार सागर का भी अलग अस्तित्व था, किन्तु एक बार मिल जाने पर केवल नदियाँ ही अपनी हैसियत नहीं खोतीं, किन्तु जहां तक नदियों का सम्बन्ध है, सागर भी अपना अलग अस्तित्व खो देता है। इसलिए उस व्यक्ति को, जिसका अज्ञान दूर हो चुका है अथवा जिसने दृढ़ विश्वास पूर्वक अद्वैत क्या है और द्वैत क्या है यह समझ लिया है, और कुछ नहीं बल्कि अनुभव होता है, जहां 'मैं' का अलग अस्तित्व या हैसियत नहीं रहती। मेरे कमजोर शब्द भण्डार और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य के लिए आप मुझे क्षमा करें, उसकी वजह से मैं आगे बताने में असमर्थ हूं।" माता जी ने पूछा, "क्या आप बताएंगे कि संसार का त्याग करने से और अविवाहित रह कर आप सुखी और चिंतामुक्त रहे हैं? क्या आपके कहने का मतलब यह है कि आपकी जीवनशैली निष्कलंक और सुस्पष्ट है?" स्वामीजी ने कहा, "माताजी, उचित

रूप से समझे बिना आपने यह सवाल मुझे इसीलिए पूछा है क्योंकि आप धारणा बना-कर उस दृष्टिकोण से इसे देख रही हैं। स्पष्ट कहूं तो न तो मैंने संसार का त्याग ही किया है और न मैं उसके बाहर ही हूं। मैंने केवल एक ही चीज की है कि जीवन की जटिलताओं से दूर रहा हूं। यदि संसार से आपका तात्पर्य संसार के आनन्दों और सामाजिक जीवन से है तो मैं आपको बता दूं कि मैंने किसी स्थापित शैली को नहीं थपनाया है, अवलोकन से मैंने पाया कि किसी भी शैली का अनुसरण किया जाये, वह अनावश्यक जटिलताएं पैदा करती है और दुःख और परेशानियों की ओर ले जाती है। इन्हीं कारणों से अर्थात् जटिलताओं से बचने के लिए मैंने विवाह नहीं किया। मेरी दृष्टि में विवाह और विवाहित जीवन, जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चुकाई गई बहुत बड़ी कीमत है। नतीजा आज यह है कि मेरे सामने कोई समस्याएं नहीं, कोई अपेक्षाएं और तज्जन्य निराशाएं और कुण्ठाएं नहीं है। सर्वथा और सब दृष्टि से मैं सचमुच सुखी और शांत हूं। आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर, बड़ा सरल है। मेरे जीवन की कोई शैली ही नहीं अतः उसके सुस्पष्ट होने का प्रश्न नहीं उठता। दुर्भाग्य से हमें गलत ढ़ंग से देखा जाता है और इसलिए गलत समझ लिया जाता है। हम अपने को किसी विचार प्रणाली, सम्प्रदाय अथवा धर्म के साथ नहीं जोड़ते, हमारे पास पढ़ाने के लिए कोई सिद्धान्त या मत नहीं है, हमें किन्हीं परिपाटियों का अनुकरण या नियमों का पालन करना नहीं है और इसलिए कोई शैली नहीं। हमारे पास उपदेश देने के लिए कुछ नहीं है और शिष्यों को इकट्ठा करने या शिष्यमंडली पर गर्व करने की कोई इच्छा हमें नहीं है। किसी आपेक्षा या परितुष्टि से रहित, प्रामाणिक और मुक्त चिन्तन, अपनी खुद की आन्तरिक प्रक्रिया का अवलोकन इसे ही यदि शैली कहना हो तो मुझे इस शब्द से कोई आपत्ति नहीं है जो अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखता है। माता जी बोलीं, "यदि आप बुरा न माने तो मैं जानना चाहती हूं कि सारे हिन्दुस्तान में इधर-उधर बिना उद्देश्य के घूमते रहने के पीछे आपका क्या ध्येय है, इसका क्या उपयोग है ?" स्वामी जी ने कहा, मैं बुरा नहीं मानता और अपने को अपमानित अनुभव नहीं करता। जैसा कि मैंने पहले बताया, बुरा या अपमानित अनुभव करता है 'मैं' और यह 'मैं' अब मेरे अपने अस्तित्व का अंग नहीं है। 'मैं' जो आहत हो सकता था उस 'मैं' की समग्र धारणाओं से मैं मुक्त हो चुका हूं।

यह मैं नहीं पाता जो मेरे में इतना प्रभावशाली था। घूमते रहने की जहाँ तक बात है, निश्चय ही वह उद्देश्यहीन है क्यों कि प्राप्त करने के लिए कोई ध्येय नहीं है; किन्तु विभिन्न स्थानों पर जाने, परिचितों से मिलने और सम्भव हो तो मानवता की सहायता करने में मैं अपना समय बिताता हूं। भोजन समाप्त हुआ। स्वामी जी अपने कमरे में चले गये। पिता जी और माता जी विचारमग्न मुद्रा में थे, फिर भी गुरुदेव अपने घर आये थे इसलिए उन्होंने बड़ा सन्तोष प्रकट किया।

माता जी ने कहा, "माधव गुरुदेव को समझना बड़ा कठिन है और इसीलिए उन्हें क्या अच्छा लगता है यह मैं नहीं समझ सकी हूं।" मैंने उन्हें बताया कि गुरुदेव की रुचियों के बारे में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वे अपनी सुख सुविधाओं के बारे में काफी उदासीन रहते हैं। पिता जी ने कहा, "हमें आशा है कि वे कुछ दिन और हमारे साथ रुकेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनके समागम से हम काफी लाभान्वित होंगे।"

सातवां प्रकरण

गुरुदेव जल्दी उठे थे और हम तीनों शहर गए। गुरुदेव मंदिरों के साथ मस्जिदों में भी गए और वहाँ भी उनका स्वागत आत्मीयतापूर्वक हुआ, यह देखकर मुझे आश्चर्य लगा। सभी स्थानों के लोग उन्हें जानते थे और वे सब के साथ खुले थे। हर स्थान पर हमें चाय और मिठाई दी गई। गुरुदेव ने हर चीज थोड़ी मात्रा में ग्रहण की। मुझे लगा कि उनके लिए धर्म की बाधाओं का अस्तित्व नहीं है। उन्हें धर्मग्रंथों, पुस्तकों, धार्मिक आचारों और क्रियाओं का अच्छा ज्ञान था। प्रामाणिक और चिन्तन के स्थान पर उन्होंने लोगों को अपने धर्म का ही आचरण करने के लिए कहा। जब गुरुदेव धर्म आदि के खिलाफ हैं तो उन्होंने लोगों को भिन्न-भिन्न धर्मों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन करने के लिए क्यों कहा होगा ? यह मेरी समझ में नहीं आया। उस समय तो मैं पूछ नहीं सका किन्तु मैंने सोच लिया कि उचित समय पर मैं बात छेड़ दूंगा। गुरुदेव के साथ मुझे देखकर शहर के लोगों को विस्मय हुआ क्यों कि हमें नास्तिक और सुधारक माना जाता था।

हम भोजन करने घर चले आये। गुरुदेव अपने स्वाभाविक मनोभाव में थे और जब खाना चल रहा था उस समय उन्होंने माता जी से पूछा "अपने पुत्र के विवाह की समस्या के बारे में आपने सोच लिया ?" माता जी ने कहा, "हमारे जीवन के अनुभव चाहे जो रहे हों किन्तु विवाह करने से मेरे पुत्र का जीवन निश्चय ही सुखी होगा, विवाह के बिना जीवन में स्थिरता नहीं आती। यदि वह विवाह नहीं करता तो उसका कोई घर नहीं हो सकता। घर का मतलब ही पत्नी और बच्चों से होता है। घर के बिना कोई आराम नहीं, कोई सन्तोष नहीं। यदि उसका कोई घर नहीं है तो उसके मित्र और सगे सम्बन्धी उसके यहां नहीं जायेंगे, वहाँ पर नहीं रुकेंगे, समाज में उसका अपना स्थान और प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। मुझे विश्वास है कि आप जैसे सन्तों

के आशीर्वाद से, विवाह कर लेने पर भी वह सुखी और शान्त रहेगा और चिन्ताओं और परेशानियों से बचा रहेगा। "गुरुदेव मन से हसे जैसे माता जी के निष्कर्षों का आनन्द लिया हो। उन्होंने पिता जी की ओर देखा। पिता जी बहुत धीमे स्वर में बोल रहे थे जैसे लम्बे सोच विचार के उपरान्त बोल रहे हों। उन्होंने कहा, "माधव की मां ने जो कहा वह सत्य नहीं है। मैं बड़े धनी परिवार में जन्मा था, मैंने उच्च शिक्षा भी प्राप्त की और बड़ी धन-दौलत भी कमाई। मुझे स्मरण है कि बिल्कुल बचपन से ही कुछ बनने किसी बात को मिलाने, कोई पद प्रतिष्ठा प्राप्त करने, धनार्जन करने आदि के लिए संघर्ष चलता रहा है इसीलिए इतनी सारी शिक्षा, धन सम्वृद्धि, सम्मान पाने पर भी जीवन आज तक सघर्षमय रहा है। सौभाग्य से माधव की मां के रूप में मुझे बड़ा अच्छा साथी मिला और इस बारे में मेरी सारी अपेक्षाएं पूरी हो गई मेरे दोनो लड़के भी सुशिक्षित हैं, अच्छी तरह कमा रहे हैं और पैसा भी उनके पास बहुत है किन्तु दोनों को शांति, सुख अथवा सन्तोष नहीं है। यदि माधव अविवाहित रहता है तो उसका पैर फिसलने की सम्भावना बनी रहेगी। इसी भय ने इस इच्छा को जन्म दिया है कि उसने विवाह कर लेना चाहिए और हमारी जीवन शैली अपनानी चाहिए। सम्भव है कि अविवाहित रहने पर माधव कोई ऐसी बात करने के लिए उद्यत हो, किसी ऐसे जीवन का अनुसरण करे जिनके कारण कई बुद्धिमान व्यक्तियों के जीवन का सर्वनाश हो चुका है। हम यह भी सोचते हैं कि विवाह बन्धनों की जंजीरों से वह एक विशेष जीवन शैली में जकड़ लिया जायेगा, वह उसको अवहेलना नहीं कर सकेगा, उससे आसानी से बाहर नहीं निकल सकेगा। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि सर्वनाश की तुलना में हम उससे कुछ कम बुराई का चुनाव कर रहे हैं।"

गुरुदेव ने माता जी की ओर देखा। माता जी ने कहा, "एक बार जब आप स्वीकार करते हैं कि यह शैली बुरी है तो फिर किसी को भी उसे अपनाने के लिए, चाहे वह आपका पुत्र ही क्यों न हो, आपको सलाह नहीं देनी चाहिए। अपने जीवन के बारे में सोचने के बाद आपने यह स्वीकार कर लिया है कि आप सुखी और शान्त नहीं हैं। अब आप को सोच कर यह खोज लेना चाहिए कि ऐसे कौन से तत्व थे जो आपके सुख और शान्ति के मार्ग में बाधा डाल रहे थे। एक बार इसका पता लगा ले मुझे विश्वास है कि आपकी समस्या हल हो जायेगी। यदि आप सोचते हैं कि जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अथवा अनैतिक मार्ग अपनाने के भय से बचने के लिए उसका विवाह हो जाना चाहिए तो उसे इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी कि सारे जीवन पर्यन्त उसे बन्धन मे रहना पड़ेगा। इसके बाद भी जीवन के अन्तिम दिनों में उसे मानना ही पड़ेगा कि उसे सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। किसी तुच्छ वस्तु के लिए बहुत बड़ा त्याग किया गया है ऐसा ही मैं कहूंगा। विवाह के "संस्था रूप" के विरोध में मुझे कुछ नहीं कहना है। इस समय हम लोग आपके पुत्र

के विवाह की समस्या पर सोच रहे हैं और मेरी टिप्पणियों को तोड़ मरोड़ कर या गलत ढंग से नहीं समझना चाहिए। अस्वास्थ्यकारी जीवन अपननाना और फिर अनेक विध बीमारियों के इलाज खोजते रहना कोई बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। यदि कारण का पता लग जाता है तो उसी का निराकरण करना चाहिए न कि उसके परिणामों को न्यूनतम करने के उपाय खोजने चाहिए। जब तक कारण को नहीं हटाया जाता तब तक कोई भी इलाज सदा बने रहने वाले परिणाम नहीं ला सकता। बुद्धिमानी हमेशा इसी में होगी कि बीमारी के कारण को जड़ से उखाड़ फेंका जाये ताकि बीमारी के उलटने से बचे रहें। आपने पहले ही स्वीकार कर लिया है कि आप जो नहीं है वह बनने, जो आपके पास नहीं है उसे पाने, जो आपने नहीं बनाई उस वस्तु को अपने पास रखने की इच्छा और अभिलाषा के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे और संघर्ष के बावजूद आप सुख, सन्तोष और शान्ति नहीं पा सके। इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि कोई व्यक्ति अपनी अभिलाषाओं और इच्छाओं का निरसन अपने जीवन से कर सकेगा तो उसे संतुष्ट, सुखी और शान्त बनने का अवसर प्राप्त है।"

एकाएक गुरुदेव चुप हो गए और हम लोग बड़े आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे। मेरे पिता जी तो स्थान से लगभग उठ चुके थे। गुरुदेव ने मुस्कराकर कहा, "सब कुछ ठीक है किन्तु दोपहर में हम लोग आगे बात करेंगे, जब हमारे जैसे माधव का हित चाहने वाले ही अन्य व्यक्ति भी उपस्थित रहे।" हम में से कोई भी गुरुदेव के कहने का आशय नहीं समझ सका और हम स्पष्टीकरण के लिए उनकी ओर देखने लगे। उसी समय दरवाजे के पास कार रुकने की आवाज हमने सुनी। हम में से प्रत्येक के होठों पर यही सवाल था कि कौन हो सकता है। गुरुदेव ने पिताजी से कहा, "यह आपका सबसे बड़ा लड़का आया है।" उन्होंने अपना वाक्य पूरा किया भी नहीं था कि मेरे सबसे बड़े भाई भोजन कक्ष में आये। गुरुदेव और स्वामी जी को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। गुरुदेव और स्वामी जी को आदरपूर्वक प्रणाम कर उन्होंने कहा, "कृपया भोजन समाप्त करें। मुझे कुछ समय लगेगा, आप भोजन करें।" माता जी ने कहा, "तुमने आने के बारे में बताया क्यों नहीं" ? उन्होंने कहा, "किसी मामले के सम्बन्ध में पूना आया था, किन्तु उसे कल तक के स्थागित किया गया इसलिए मैं यहाँ चला आया। मैं सुबह ही वहां से चला हूं, ताकि भोजन के लिए घर पहुच सकूं। बम्बई में सब लोग मजे में हैं। भाई-साहब का स्वास्थ्य अच्छा लग रहा था। हम सब लोगों को उन्हें इस समय अपने बीच पाकर बड़ी खुशी थी जब मेरे विवाह की समस्या पर गंभीर विचार हो रहा था। हमने भोजन समाप्त किया और गुरुदेव अपने कमरे में चले गये। भोजन लेकर मेरे भाई साहब कक्ष में आये। माता जी ने मेरे विवाह के बारे में गुरुदेव के साथ जो बातचीत हुई थी उसके बारे में उन्हें बताया। जब माता जी ने इस सम्बन्ध

में उनका अभिमत पूछा तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, "आखिर माधव को अपने जीवन मार्ग को निर्धारित करना है। हमारी इच्छाएं कुछ भी हों, माधव को ही जानना है कि उसके लिए अच्छा क्या होगा। हमारे वैयक्तिक मतों के कारण कहीं वह मुश्किल में न पड़ जाये। माधव को ऐसा निर्णय लेना है जो उसके समूचे जीवन पर असर डालने वाली है और वह अपना हित समझने में पूरी तरह सक्षम है। मैं केवल यही कह सकता हूं कि यही उचित समय है जब माधव को कोई निर्णय कर लेना चाहिए। यदि उसे विवाह करता है तो समय गंवाने में कोई फायदा नहीं। अब उसकी आयु इतनी हो चुकी है कि उसे विवाह कर लेना चाहिए यदि उसने अविवाहित रहने का निश्चय नहीं किया है। पिता जी ने कहा, "जो कुछ तुम कह रहे हो वह सही है किन्तु इस सम्बन्ध में गुरुदेव का कहना क्या है यह भी हम सुन लें। उनमें माधव की अपार श्रद्धा है और वे भी माधव के हितों की रक्षा करने वाले हैं। सौभाग्य से तुम भी यहीं हो और हम लोग इस समस्या का कोई हल निकाल लेंगे।"

आठवां प्रकरण

पिता जी के मित्र और सम्बन्धी लोग जो कल की बैठक में उपस्थित थे, दोपहर में गुरुदेव को सुनने आये थे। चायपान के बाद गुरुदेव ने बोलना शुरू किया। उन्होंने कहा, "भोजन के समय हमारी जो बात चल रही थी उसी को आगे बढ़ाते हुए मैं कहूंगा कि समस्या यह है कि--

क्या जीवन में अभिलाषाओं और इच्छाओं को हटा देना संभव है ? इसे करने से पहले हम इस बात की छानबीन करें कि इच्छाओं और अभिलाषाओं से क्या तात्पर्य है ? मतलब यह कि हमें समझना है कि इच्छा क्या है और अभिलाषा क्या है, वे किस प्रकार होती हैं, उन्हें कौन पैदा करता है ? यदि आप इसे समझ सकेंगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि आप जल्दी उनसे पीछा छुड़ा सकते हैं।

हमें भौतिक और जैविक आवश्यकताओं को हटाना है। उनसे जो इच्छाएं निकलती हैं वे स्वाभाविक हैं और उन्हें तुरन्त और आसानी से समझा जा सकता है। उनका हल भी सरल होता है क्योंकि वे अस्थायी हैं और उनके कोई स्थायी अथवा टिकने वाले परिणाम नहीं होते। हमें जिस बात से सरोकार है, वह समस्या इच्छाओं की है जिन्हें अमूर्त कहा जा सकता है जो मन, हृदय, अहंकार आदि के प्रक्षेपण से होती है। एक बच्चे में इन सारी इच्छाओं और अभिलाषाओं का अभाव होता है।

यह दिखाता है कि वे स्वाभाविक नहीं हैं, विकसित हृदय, बुद्धि, अहंकार अथवा मन आदि की बनायी हैं।

जब आन्तरिक इन्द्रियों के विकास तक उनकी खोज की जाती है तो हम पाते हैं कि वे किन्हीं शैलियों, धर्म, सिद्धान्तों, पथ, सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक आदर्श के अनुसरण करने का फल है। हम किसी न किसी प्रकार इन से अपने को जोड़ लेते हैं और ऐसा करने में हम बचाव या सुरक्षा, समृद्धि या सम्पत्ति स्वामित्व या एकाधिकार, प्रतिष्ठा या नेतृत्व या हमारे अहं की संतुष्टि ढूंढते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि आप शैली का अनुसरण छोड़ सकते हैं जिसमें उपरोक्त तत्व रहते हैं तो हमें समस्या का हल मिल जाना चाहिए। यदि आप अपने पुत्र का वास्तविक हित चाहते हैं तो आपको उस पर कोई शैली नहीं लादनी चाहिए जो उसके जीवन को दुखी बना देगी। इसलिए आपको खुले मन से इस समस्या पर दुबारा सोचना होगा और आप मुझे कल बता दें कि आपने क्या तय किया है। कृपया यह समझ लें कि मुझे आपके पुत्र के विवाह से कुछ नहीं करना है और उसी प्रकार मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं है कि वह आपकी शैली स्वीकार करता है या अस्वीकार करता है। "पिता जी के मित्रों में से किसी ने पूछा—'क्षमा करें गुरुदेव, क्या आप यह कहना चाहते कि सभी शैलियां बुरी हैं और क्या बिना शैली के जीवन जीने लायक हो सकता है ? वैयक्तिक रूप से मैं यह मानता हूँ कि बिना किसी शैली के जीवन रसहीन और फलस्वरूप निरर्थक हो जायेगा।"

गुरुदेव ने कहा, "हरेक शैली में फिर उसका हेतु या वैशिष्ट्य चाहे जो हो, महत्वाकांक्षा, अहकार की सतुष्टि, सुरक्षा की भावना आदि रहती है, इसी तरह सभी शैलियों का विकास हुआ है और नई शैलियां भी कुछ थोड़े बदल के साथ उन्हीं के समान स्थापित हो रही हैं। उन्हें हो सकता है कि किन्हीं बुद्धिमान अथवा अनुभवी व्यक्तियों ने बताया हो किन्तु उनके अनुसार चलने वालों को जीवनभर सुख और शान्ति पाये बिना संघर्ष, मेहनत और प्रयास करने पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि जब सुख लक्ष्य रहता है तो उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि सुख केवल अनुभव है प्राप्ति नहीं। लक्ष्य हमेशा चलता रहता है, महत्वाकांक्षा बढ़ती जाती है और व्यक्ति की तृप्ति कभी नहीं होती।

आपको यह भी दिखायी देगा कि किसी विशिष्ट शैली का अनुसरण करने में आपने अपना मन पूरी तरह लगा दिया है या उसे गुलाम बना दिया है फिर चाहे यह शैली आपकी चुनी हो या किसी के द्वारा आप पर थोपी गई हो। ऐसी दशा में आपका मन खुला नहीं होता, आपकी बुद्धि पर किसी निश्चित लक्ष्य की ओर जाने का प्रक्षेपण होता है, आपका अहं एक कक्षा में, जो कहना चाहिए कि उसी के लिए बना रहता

है, घूमता रहता है तथा आपके मन को आपके हृदय, बुद्धि और अहंकार के आदेशों का पालन करना पड़ता है। इसीलिए आपको बड़ा संशय रहता है, आपकी दयनीय अवस्था हो जाती है। इस प्रकार की संशयित मनोदशा में असंतुष्टि, अशान्ति और आपत्ति के अलावा आप किस बात की आशा कर सकते हैं ? जब आपका मन और बुद्धि बन्धन से मुक्त होंगे तभी आप अपने हरेक प्रयास को देख सकते हैं, उसका आनन्द ले सकते हैं। आपका हर काम आपको असीम आनन्द और शान्ति प्रदान करेगा। आप इसे केवल अनुभव के द्वारा समझ सकते हैं, बौद्धिक धारणा से नहीं। निश्चित रूप से यह बौद्धिक समझ की शक्ति से परे की बात है इसलिए युक्तिसंगत तर्कों के आधार पर उसे नहीं जान सकते। मन जब मुक्त रहता है, बुद्धि पर किसी प्रकार की शैली, भूतकालीन स्मृतियों, पारिवारिक परम्पराओं, प्रतिष्ठा की भावना, मूर्त या अमूर्त वस्तु खो देने के भय का भार ही रहता, तभी मन और बुद्धि दोनों काम करने, अवलोकन करने, सोचने, और अन्तरात्मा की क्रिया जान लेने के लिए मुक्त रहते हैं। पूर्णरूप से मुक्त मन ही सुनने, देखने, अवलोकन करने और अन्तरात्मा, जिसे भगवान भी कह सकते हैं, के प्रकटीकरण का सबसे महत्वपूर्ण अनुभव कर सकता है। मन तभी प्रकृति और उस शक्ति के साथ जो सारी सृष्टि में व्याप्त है, एकलय और समन्वय में रहता है। मुक्त होने के कारण वह वर्तमान के साथ क्षण प्रतिक्षण संलग्न रहता है और ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक, आर्थिक आदि किसी भी अतीत का बन्धन उस पर नहीं रहता। भविष्य के साथ भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि प्राप्त करने के लिए कोई आदर्श उसके समक्ष नहीं रहता और अनुसरण करने के लिए कोई शैली भी नहीं। जब तक वह मुक्त और बन्धन रहित होता है तब वह सुखी और शांत रहता है। जो मैं चाहता हूं वह यह है कि आप इस बात को समझ लें कि जब मन मुक्त रहता है और उस पर अतीत या भविष्य या पूर्वाग्रह का बन्धन नहीं होता, जब वह किसी के साथ जुड़ा या सन्दर्भित नहीं होता तभी अवलोकन और सही चिंतन करने में वह सक्षम होता है। इसलिए क्या आप नहीं सोचते कि माधव जैसे बुद्धिमान, सुशिक्षित और होनहार युवक को यह तय करने का खुला अवसर मिलना चाहिए कि उसके लिए क्या अच्छा है ? भाई साहब ने कहा, "मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं और जिस प्रकार आपने समस्या को हल कर लिया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं" गुरुदेव कुछ नहीं बोले, मेरे पिता जी माताजी और उपस्थित सज्जन काफी प्रभावित हुए थे ऐसा लगता था। निजी तौर पर मैं सोच रहा था कि गुरुदेव ने हमारे ऊपर जो दोषा-रोपण किया है कि विभिन्न शैलियों का अनुसरण कर हमने अपनी स्वाभाविक प्रगति रोक रखी है और अपना जीवन दुखी बना लिया है, उसमें गुरुदेव पूरी तरह सही थे। यह हमारी भीरुता है कि सत्य को स्वीकार करने से हम डरते हैं और वह हमारी कमजोरी है कि हम विविध भावनाओं के शिकार हो जाते हैं। गुरुदेव का स्पष्ट भाषण

हम सब के लिए कई प्रकार से आंखें खोल देने वाला था। स्वामी जी चुप थे किन्तु लग रहा था कि वे बातचीत से प्रसन्न हैं। गुरुदेव और स्वामी जी शहर चले गए क्योंकि उन्हें अपने कुछ परिचितों से मिलना था। मैं अकेला ही घूमने के लिए चल पड़ा क्योंकि भाईसाहब जो मामला पूना के उच्च न्यायालय में चला रहे थे उसके कानूनी मुद्दे पिताजी को समझा रहे थे। गुरुदेव देर से घर लौटे और तुरन्त विश्राम करने चले गए। भाई साहब यह जानने के लिए उत्सुक थे कि गुरुदेव ने उनके आने से पहले क्या कहा था और उनका अहमदनगर आना कैसे हुआ। मैंने सब बात उन्हें बता दी। वे बोले, गुरुदेव सचमुच ही महान व्यक्ति हैं। गुरुदेव ने जिस प्रकार भाषण किया था उससे भाई साहब प्रभावित थे। माता जी विचारमग्न अवस्था में थीं इसलिए भोजन के बाद मैं तुरन्त अपने कमरे में चला गया। भाई साहब तड़के ही पूना चले गए और जब हम चाय ले रहे थे उस समय माताजी बोलीं— "गुरुदेव आपने कल जो कुछ कहा था उस पर हमने सोच लिया है और मैं स्वीकार करती हूँ कि आप सही है। फिर मैं यह चाहती हूं कि आप पर्याय, या माधव को सुखी करने वाले मार्ग के रूप में क्या सुझाते हैं यह जान लूँ। यदि आप मुझे और मेरे पति देव को यह विश्वास दिला सकते हैं कि आपके बताये मार्ग पर चलने से माधव सुखी होगा तो हम उसे विवाह के लिए आगे आग्रह नहीं करेंगे ?" माता जी के मत का अनुमोदन करते हुए पिता जी ने आगे कहा—'स्पष्ट करना हो तो, गुरुदेव सच्चे सुख, आनन्द और सही खुशी को हम सचमुच नहीं जानते। हो सकता है कि आप जैसे सन्तों से मुलाकात न होना इसका कारण हो। वैयक्तिक रूप से, आपने जो कुछ कहा उसकी सत्यता का मुझे पूरा विश्वास हो गया है। इसलिए स्वेच्छा से मैं अपने पुत्र को आपके योग्य हाथों और गुरुतुल्य मार्गदर्शन में छोड़ रहा हूँ और यह बिनती करता हूँ कि आप उसे वह सुख और शान्ति प्राप्त करने में मदद करें जिससे हम वंचित रहे हैं। गुरुदेव ने कहा—"मुझ में आपको विश्वास हो गया है इसकी मुझे खुशी है किन्तु आपको फिर से यह समझ लेना चाहिए कि मेरे पास आपके पुत्र के लिए कोई रूप रेखा या उसके भविष्य के लिए कोई योजना नहीं है। कोई योजना या रूप रेखा या उसके लिए समस्याओं, टकरावों और विरोधों को पैदा करेगी, मन के विविध प्रक्षेपण भी हो सकते हैं जैसा कि मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है। उसका मन और बुद्धि मुक्त नहीं रहेंगे जो सुख और शान्ति का मूलमन्त्र है। इसलिए मुझे यही कहना है कि केवल आपके पुत्र को ही नहीं तो जिस किसी को भी जीवन में शान्ति, संतुष्टि और सुख की कामना हो उसे अपने मन और बुद्धि को पूरी तरह बंधन से छुड़ा लेना चाहिए फिर उसका स्वरूप चाहे कुछ भी हो। यह उसे सही चिन्तन और समझ की ओर ले जायेगा जिससे, स्पष्ट है कि उसकी समस्याएँ हल हो जानी चाहिएँ। उसकी सभी गतिविधियों और कार्यकलाप स्वाभाविक, अतीत और भविष्य के विचार से मुक्त

और स्पष्टतः टकरावों और विरोधों से मुक्त रहेंगे। फिर वह आनन्द, पूर्ण शांति और सुख का अनुभव करेगा।

यह ऐसा अनुभव है जिसे मौखिक स्तर पर नहीं समझा जा सकता। इसलिए मैं आपके पुत्र के लिए चाहता हूँ कि वह ईमानदारी से सोचे, अवलोकन करे और इस प्रकार जीवन व्यतीत करे जिसे वह स्वाभाविक समझता है। उसी प्रकार मैं उसकी वर्तमान जीवन पद्घति या पेशे को किसी प्रकार प्रभावित करना नहीं चाहता।' वे माता जी की ओर देखकर बोले—"माताजी, आप इस भय को जरा भी आश्रय न दें कि मैं आपके पुत्र को संन्यासी बनाने जा रहा हूं या मैं उसे जीवन भर अविवाहित रखना चाहता हूँ। यह मेरा ध्येय नहीं है वह जीवन की किसी भी अवस्था में विवाह कर सकता है यदि वह सोचता है कि यह उसके हित में होगा। इसलिए मुझे यही कहना है कि उसके हितों को मेरे हाथों में सौंपने के बजाय हम लोग उसका सारा भविष्य उसी के हाथों में सोंप दें और मुझे विश्वास है कि यह उसे सुख की ओर ले जायेगा। मुझे इस विषय पर जो भी कहना था वह उसने सुन लिया है और अपनी समस्या समझने और हल करने के लिए यह पर्याप्त है। मैंने जो कुछ कहा उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।"

गुरुदेव ने बोलना बन्द किया। स्वामी जी ने कहा "हम लोग वृद्धेश्वर जाना चाहते हैं और वहाँ दो दिन रहेंगे। हम यह भी चाहते हैं कि संभव हो तो माधव को भी हमारे साथ रहना चाहिए।" पिताजी ने कहा—"मेरी कार आपके उपयोग के लिए देने में मुझे खुशी होगी क्योंकि बैलगाड़ी के अलावा वहाँ जाने का कोई साधन नहीं है। इसलिए मैं बिनती करूंगा कि गुरूदेए को मेरी कार का उपयोग करना चाहिए जिससे यात्रा आरामदेह और शीघ्रतापूर्वक होगी। तथा आपकी कुछ तो सेवा होने के कारण मुझे बड़ी खुशी होगी।" गुरुदेव ने कहा—"हमें तो मीलों पैदल चलने की आदत है। अब जब कि माधव भी हमारे साथ हैं हमें आपकी कार से जाना स्वीकार करने में खुशी है। भोजन के बाद तुरन्त ही हम लोग चल देंगे और कुछ दिनों बाद लौट आयेंगे।" पिताजी ने तुरन्त कार को तैयार रखने का निर्देश दिया। भोजन के समय माताजी ने कहा—"गुरुदेव, क्षमा करें, आपकी दृष्टि में वृद्धेश्वर में क्या विशेषता है ? क्या आप किसी विशेष उद्देश्य से वहाँ जा रहे हैं ?" गुरुदेव ने कहा—"माताजी हमारे किसी कार्य के पीछे कोई हेतु नहीं होता। हमारे कार्य जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ, स्वाभाविक होते हैं और किसी हेतु से प्रेरित नहीं होते। जहाँ तक वृद्धेश्वर की विशेषता और महत्व का प्रश्न है, मैं आपको बता दूँ कि यह वह स्थान है जहाँ अत्यन्त विमुक्त मनों ने वास किया है और उनके समागम से उस स्थान पर इस प्रकार के वातावरण का निर्माण हुआ है जो मुक्त चिन्तन

के अनुकूल है। पहाड़ियों जो शताब्दियों पहले विशाल पर्वत थे के बीच वहाँ एक शिव मन्दिर है। उस स्थान का प्राकृतिक सौन्दर्य मनोहारी और आह्लादकर है। मानव बस्ती से दूर जंगल में वह स्थान है और वहाँ किसी बाधा से रहित शान्ति रहती है। जब भी मैं हिन्दुस्थान के इस भाग में आता हूं, वृद्धेश्वर जरूर जाता हूं।

भोजन उपरान्त मैंने खाने का और कुछ अन्य आवश्यक सामान गाड़ी में रख लिया ताकि यात्रा सुखद हो सके। कार के चालक के अलावा भी मैंने एक सेवक साथ में ले लिया। मैं अपनी बन्दूक भी लेना चाहता था किन्तु स्वामी जी ने कहा—"माधव तुम्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी और किसी को सताना गुरुदेव को अच्छा नहीं लगता।" तत्काल मुझे गुरुदेव ने प्रेम की शक्ति के बारे में मद्रास में जो कुछ कहा था वह और चेट्टियर जी के घर की सांप वाली घटना का स्मरण हुआ। हम लगभग दो बजे वृद्धेश्वर जाने निकले। वृद्धेश्वर जाने का रास्ता ठीक से बना नहीं था और यात्रा छोटी होने पर भी आरामदेह नहीं थी। गुरुदेव चुप थे और स्वामी जी भी। मैं गत दो दिनों के गुरुदेव के समागम और उनके कथन का विचार कर रहा था। मैं नहीं जानता था कि मैं किस ओर धकेला जा रहा हूं और भविष्य में मेरे जीवन में कौन सा मोड़ आने वाला है। मैं भविष्य के बारे में तटस्थ ही था, मुझे उसकी जरा भी चिन्ता नहीं थी। इस सबके बावजूद मेरी चित्तवृत्ति बड़ी प्रसन्न थी। गुरुदेव की निकटता ही इसका कारण हो सकता है ऐसा मुझे लगता है। उनकी उपस्थिति ने किसी न किसी तरह मेरे अन्दर एक शक्ति का संचार करा दिया था और मुझे अनुभव हो रहा था कि जहाँ तक भविष्य का सम्बन्ध है मैं अकेला नहीं हूं अर्थात कोई भय था नहीं और न ही ऐसी कोई समस्या थी जिसके लिए धैर्य की आवश्यकता हो। जैसे ही हम वृद्धेश्वर के निकट पहुंचे तो मुझे लगा, एक मधुर सुगन्ध सारे वातावरण में भरी हुई है और घन्टियों की अस्पष्ट ध्वनि और संगीत के स्वर मेरे कानों में आने लगे। मैंने सुनने का प्रयास किया और इस निर्जन स्थान में किस दिशा से यह ध्वनि उठ रही थी इसे मैं देखने लगा। गुरुदेव ने मेरी ओर देखा और वे मुस्कराकर कहने लगे", हम वृद्धेश्वर के समीप आ पहुंचे हैं। मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूं कि यहाँ पर कितनी ही शताब्दियों से दैवी और पवित्र वातावरण भरा हुआ है। मैं कुछ भी नहीं बोला क्योंकि विद्यार्थी दशा में मैं कितनी ही बार वृद्धेश्वर आ चुका था और उसके बाद भी मित्रों के साथ वनविहार करने और शिकारी लोगों के साथ घूमने यहां पर आया था किन्तु मैंने कभी भी इस प्रकार के वातावरण का अनुभव नहीं किया। निश्चित ही यह सब गुरुदेव की उपस्थिति के कारण संभव हुआ होगा। करीब आध घण्टे में हमारी कार मन्दिर के द्वार के पास रुकी। हम कार से उतरे, मैंने चालक से कहा कि वह कार को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाये। वृद्धेश्वर भगवान शंकर जी का प्राचीन मन्दिर है। इसके चारों ओर पर्वतमालाएँ हैं। जहां पर मन्दिर है वह

स्थान एक घाटी के समान है । मन्दिर के चारों ओर एक दीवार बनी है । मन्दिर के पुजारी गुरुदेव और स्वामी जी को अच्छी तरह जानते थे और उन्होंने प्रेम पूर्वक हमारा स्वागत किया । वे मेरे पिता जी से भी परिचित थे और मुझे देखकर उन्हें खुशी हुई थी । उन्होंने हमें जलपान कराना चाहा लेकिन गुरुदेव ने कहा कि प्रथम हमें स्नान कर लेना चाहिए । इस समय तक सेवक हमारा सामान लेकर आ चुका था और हम स्नान करने गये । स्वामी जी हमें एक बड़े कुएँ के पास ले गए जिसे ज्ञानवापी कहा जाता है । गुरुदेव ने कहा—"तुम्हें इस खास कुएं का इतिहास और माहातम्य मैं रात को बताऊंगा । वह बडा रोचक हैं । तुम्हें अच्छा लगेगा । कुएं का जल बड़ा ही निर्मल था और शीतल भी । स्नान करने से हमें सचमुच ही ताजगी का अनुभव हुआ । स्नान करने के पश्चात हम मन्दिर गये । इतनी शताब्दियाँ बीत जाने पर भी आज भी मन्दिर उसी प्राचीन अवस्था में है । मन्दिर की वास्तु विशाल नहीं है और आलीशान तो बिल्कुल नहीं ।

प्रवेश द्वार के समीप एक बड़ा कक्ष है । उसमें बैठकर लोग प्रार्थनाएँ करते हैं और भजन । भगवान की स्तुति पर गीतादि का कार्यक्रम वहां पर होता है । गर्भ गृह में शिवलिंग की स्थापना की गई है । किसी निचले जल स्रोत से शिव प्रतिमा में अविरत जल स्रवित होता रहता है । मुझे लगता है कि चारों ओर पहाड़ी होने के कारण किसी निचले स्थान से जलधारा प्रवाहित होती होगी जिससे जल सतत रूप से रिसता होगा । गर्भगृह में अंधेरा होने के कारण, चार बड़े-बड़े तेल से भरे दीप दिन-रात जलते रहते फिर भी कुछ साफ दिखाई नहीं देता था । दर्शन करते समय मैंने देखा कि शिवलिंग पर बेल पत्री और पुष्पमालाएँ अर्पित की गई हैं । मैंने सोचा कि कुछ ही समय पहले किन्हीं व्यक्तियों ने आकर भगवान शिव का पूजन किया होगा । सुगन्धित धूप जल रहा था और उससे मन्दिर भर गया था । गुरुदेव ने आगे बढ़ कर बड़ी श्रद्धा से नत मस्तक होकर प्रणाम किया । मैंने और स्वामी जी ने उनका अनुकरण किया । दर्शन करने के पश्चात् हम पुजारी जी द्वारा दिखाए गए स्थान पर आये । पुजारी ने हमें कुछ खाने के लिए दिया । सेवक ने चाय बना ली थी । गुरुदेव और स्वामी जी ने दूध और कुछ फल ग्रहण किये । मैंने बिस्कुट और चाय ली । चाय पान के पश्चात गुरुदेव ने कहा—"माधव, हम पहाड़ियों में घूमने चलते हैं, मैं तुम्हें कुछ महत्व-पूर्ण स्थान दिखाऊँगा । वे आगे चलते रहे और हम उनके पीछे । हम पहाड़ी के ऊपर चढ़ गए । पहाड़ी के ऊपर मच्छिन्द्रनाथ की समाधि बनाई गयी है । यहाँ पर नाथ पंथ के आद्य प्रवर्तक महान् संत मच्छिन्द्रना रहा करते थे । गुरुदेव ने बड़ी श्रद्धा से समाधि के समक्ष दण्ड प्रणाम किया और मुझे लगा जैसे उनकी आँखों में आंसू छलक उठे । स्वामीजी और मैंने भी साष्टांग प्रणाम किया । मुझे नहीं मालूम कि स्वामीजी की भावनाएँ क्या थीं किन्तु खुद मुझे तो कुछ भी अनुभव नहीं हुआ । मैंने केवल औपचा-

रिक तौर पर प्रणाम किया था । दूसरी पहाड़ी मच्छिद्रनाथ वाली पहाड़ी से कुछ कम ऊँची है । उस पर उनके महान् शिष्य गोरखनाथ की समाधि है । इस स्थान पर भी गुरुदेव और स्वामी जी ने बड़ी श्रद्धा से दण्डवत की । हम सायंकाल देर से मन्दिर लौट आए । भोजन के पश्चात् हम मन्दिर के बरामदे में बैठ गए । निरभ्र आकाश में पूर्णचन्द्र का दर्शन हो रहा था । मन्दिर और नाथ-पंथ का वृतान्त बताने के लिए मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की ।

गुरुदेव ने कहा, "मच्छिन्द्र नाथ के जन्म के बारे में कई कथाएं प्रचलित हैं, हालांकि हमें उससे कोई सरोकार नहीं है । हमें तो केवल साक्षात्कारी पुरुष के रूप में उनकी महानता का दर्शन करना है । सम्पूर्ण योगविज्ञान और योग की समस्त शाखाओं में पूर्ण रूप से अधिकार पाने के लिए उन्होंने कई वर्ष तक कठोर तपस्या की थी । स्वाभाविक ही दैवी कही जाने वाली शक्तियों में जितनी क्षमता संपादन की जा सकती है वह सारी उन्हें प्राप्त थी । इतना सभा कुछ प्राप्त कर लेने पर भी वे पूर्णतः निःसंग थे और सभी दृष्टि से विचार करने पर वे पूर्ण रूप से मुक्त थे । उनके समान उन्नत व्यक्ति विरले ही हुआ करते हैं । जो लोग मच्छिन्द्रनाथ के साथ थे वे स्वतः को उनके अनुयायी कहते थे और इस प्रकार नाथ पंथ कहलाने वाला सम्प्रदाय प्रारम्भ हुआ । इस सम्प्रदाय का प्रमुख उपदेश यही था कि मन और बुद्धि को पूर्ण रूप से विमुक्त कराया जाये । शरीर के साथ भी किसी प्रकार की आसक्ति नहीं, फिर दूसरी बातें तो दूर रहीं, भविष्य की चिन्ता नहीं, अतीत से सम्बन्ध नहीं । इस कारण स्वाभाविक रूप से ही व्यक्ति के लिए वर्तमान में जीना सम्भव हो गया । भौतिक शरीर समेत हर वस्तु के प्रति अनासक्ति ने साधक को पूर्ण रूप निर्भय बना दिया । मुक्त चिन्तन और अवलोकन, मन और बुद्धि की विमुक्ति के कारण इस पंथ में निःर्भीक पुरुष हुए । तुम्हारी समझ में आ ही रहा होगा कि यह कोई धर्म सम्प्रदाय के समान बात नहीं थी जिसके साथ उसके तथाकथित अनुयायी गण अपने को जोड़ लेते हों, जिसके उपदेश अथवा अनुसरण करते हों । इसलिए यह अर्थ में कोई सम्प्रदाय नहीं था जैसा कि लोग सामान्यतः इस शब्द से अर्थ में लेते हैं अथवा इन्हें इस शब्द से अभिप्राय रहता है । गोरखनाथ कहना चाहिए कि प्रथम शिष्य थे जिन्हें मच्छिन्द्रनाथ ने अपनी स्वतः पद्धति से शिक्षित किया था और फलस्वरूप उन्हें भी साक्षात्कार हुआ था । इस विशिष्ट सम्प्रदाय के व्यक्ति आमरण ब्रह्मचर्य जीवन अपनाते थे और भारत वर्ष के इसी स्थान में रहा करते थे । यह स्थान उस समय वन्य श्वापदों से भरा गहन अरण्य था । यहाँ पर बड़ी नदियां बहती थीं और बड़ा ही रमणीय दृश्य रहता था । बाहरी संसार से किसी प्रकार की बाधा की संभावना नहीं थी और वे लोग यहाँ पर एकान्त में पूर्ण शांति के साथ वास करते थे । कभी-कभी वे अन्य स्थलों पर भी जाते । एक बार मच्छिन्द्रनाथ के शिष्यों ने उन्हें किसी कारणवश यज्ञ करने के लिए प्रार्थना

की । सभी श्रेष्ठ पुरुषों, राजाओं और देवताओं को भी आमन्त्रित किया गया था। ऐसी बात प्रचलित है कि अब तक के पृथ्वी पर हुये यज्ञों में सबसे अधिक लोग इसी यज्ञ में सम्मिलित हुए थे । भगवान शिव को यज्ञ का अधिपतित्व स्वीकार करने के लिए विनती की गई थी । इतना विशाल ऐतिहासिक समारंभ इसी स्थान पर संपन्न हुआ था और यज्ञ के अधिपति के रूप में भगवान शिव इसी स्थान पर विराजमान हुए थे जहाँ पर आज शिवलिंग की स्थापना की गई है और उसी के चारों ओर मन्दिर का निर्माण हुआ है । इसे वद्धेश्वर कहा जाता है । जो भगवान् शिव का ही एक नाम है । मच्छिन्द्रनाथ ने यज्ञ की जो अग्नि प्रज्वलित की थी वह शताब्दियों पूर्व से आज भी प्रवेशद्वार पर लोगों ने सुलगा रखी है । नाथ पथ के अनुयायिओं द्वारा पीढ़ियों से इस स्थान की पवित्रता और यहां का दैवी वातावरण उसी प्रकार रखा गया है और तुम्हें आज भी उसी महानता का अनुभव हो सकता है यदि तुम्हें मुक्त मन से चिंतन, श्रवण और अवलोकन का ज्ञान हो।"

मैंने कहा, "गुरुदेव, मद्रास में और घर पर भी आपने जो कुछ कहा वह मैंने सुना है । आपके कथन को समझने और उसके अनुसार चलने का प्रयास मैं करता रहा हूं । मुझे अर्थ तो समझ में आ गया है लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि निर्विचार दशा का अनुभव करने में मैं असमर्थ रहा हूं और आपके कथनानुसार अवलोकन और श्रवण नहीं कर पा रहा हूं । इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि श्रवण, अवलोकन और चिन्तन किस प्रकार करना चाहिए यह मुझे समझा दीजिये अथवा मैं समझ जाऊं ऐसा कर दीजिये।" गुरुदेव ने कहा, "हम सभी लोग श्रवण जानते हैं किन्तु हम जो कुछ करते हैं उसे समझ नहीं पाते । इसका मूल कारण है अवलोकन का अभाव । मध्यरात्रि के अथवा जिस समय चारों ओर शांति बनी रहती है उस समय समीप की अथवा दूर की कोई अस्पष्ट सी ध्वनि भी हम सुन लेते हैं। जब इस प्रकार की ध्वनि सुनी जाती है उस समय तुम्हारे मन में कोई विचार नहीं होता । उद्गम और उसकी दिशा निर्धारित करने में तुम अपनी सब इन्द्रियां लगा देते हो । जिसे अर्जित अथवा प्राप्त ज्ञान कहा जाता है उसके सन्दर्भ में तुम उस ध्वनि की व्याख्या करने, उसे समझने का प्रयास करते हो और इसके बाद समझ पाते हो कि वह किसी व्यक्ति अथवा प्राणी की पदध्वनि है अथवा अन्य कोई आवाज इस प्रकार तुम देखते हो, ध्वनि का श्रवण कर लेने पर तुम उसके बारे में सभी कुछ जान लेते हो । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रथम तुम अपने मन में कोई विचार न रखते हुए श्रवण करते हो, ध्वनि को सुनने में ही सारी इन्द्रियों को लगा देते हो अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि किसी अतीत अथवा भविष्य का विचार न करते हुए, स्मृति के बिना ही तुम अपनी समग्र शक्तियाँ श्रवण करते समय एकत्रित करते हो या केन्द्रित कर देते हो । इसी क्रिया को तत्पर श्रवण कहते हैं । इसके पश्चात् आपने जो कुछ श्रवण किया है उसकी व्याख्या की जाती है और उसके पश्चात् कार्य होता है ।

सारी प्रक्रिया इतनी शीघ्रता से होती है तुम अवलोकन के द्वारा ही उसे समझ सकते हो, किसी अन्य पद्धित से नहीं । तत्पर श्रवण के पश्चात बोध होता है । इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम यह जान लो कि तत्पर श्रवण और केवल श्रवण में क्या अन्तर होता है । केवल श्रवण की क्रिया में पहले अर्जित ज्ञान के साथ समझने, व्याख्या करने, तुलना और विरोध देखने की प्रक्रिया और भविष्य के परिणाम या विचार साथ-साथ चलते रहते हैं, तत्पर श्रवण में यह नहीं होता । जब तुम किसी जंगल या निर्जन स्थान से गुजरते हो उस समय तत्पर श्रवण के लिए तुम बहुत उत्सुक रहते हो क्योंकि किसी अज्ञात स्थान से आने वाले संकट से तुम्हें भय रहता है। जरा सी भी आवाज होने पर तत्पर श्रवण के लिए कान खड़े कर लेते हो। इस प्रकार तुम देख रहे हो कि तत्पर श्रवण की कला का ज्ञान तुम्हें है । तुम्हें कदाचित उसका ध्यान न हो क्योंकि जिस तरह उसका अवलोकन होना चाहिए उस तरह तुमने उसका अवलोकन नहीं किया होगा । इस प्रकार तुम देख लोगे कि तत्पर श्रवण सिखा देने की आवश्यकता किसी को भी नहीं है ।

उसी प्रकार जब तुम अवलोकन करते हो तब तुम अपनी क्षमता तथा शक्ति अवलोकन की क्रिया में केन्द्रित करते हो । उस समय तुम इतने मग्न हो जाते हो कि तुम्हें ध्यान नहीं रहता कि तुम्हारे चारों ओर क्या चल रहता है । यदि वास्तव में ही तुम किसी वस्तु का तत्परता से अवलोकन कर रहे होगे तो चारों ओर शोर होता रहे या तुम से कोई बात भी करे तो तुम उसे नहीं सुन पाओगे । तुम अपने को पूरी तरह से इसी लिए भुलाए रहते हो क्योंकि तुम्हारीं सारी चेतना अवलोकन के क्रिया में ही केन्द्रित रहती है और मुझे विश्वास है कि तुमने अपने जीवन में कई बार इस अवस्था का अनुभव किया होगा । जब तुम किसी वस्तु को देखते हो तो, जैसा कि मैंने तुम्हें बताया था, तुम अपनी स्मृति से समझने का प्रयास करते हो । यह बात प्रामाणिक चिन्तन के साथ नहीं होती। अतीत की स्मृतियों भविष्य के विचार अथवा किसी वस्तु से सन्दर्भ रखे बिना ही प्रामाणिक चिन्तन की क्रिया होती है । जब आप किसी समस्या या घटना पर सोचते हैं उस समय आपको नहीं सोचना चाहिए कि वह आपको किस प्रकार से प्रभावित करती है, दूसरे लोग उसे क्या समझ सकते हैं । उसके साथ सम्बन्धित लोगों को उसका हल स्वीकार होगा या अस्वीकार होगा, इस प्रकार की समस्यायें पहले लोगों द्वारा किस प्रकार हल की गई हैं इस हल की प्रतिक्रिया आगे आने वाली पीढ़ियों में कैसे होगी, चिन्तन के विचार बिलकुल उठने नहीं चाहिए । इस का पता लगाना चाहिए कि किस प्रकार से विचार उठा है उसके मूल में सुख, अपेक्षा अथवा परितुष्टि का भाव तो नहीं है । या कहीं वह अहकार का फल तो नहीं ? यदि हमारा कार्य या विचार प्रामाणिक विश्लेषण के बीच से गुजरता है तो मुझे विश्वास है कि तुम प्रामाणिक चिन्तन को

समझ लोगे। गुरुदेव ने कहा, "माधव, इस प्रकार तुम देख रहे हो कि मानव व्यक्ति के जीवन में तत्पर श्रवण और अवलोकन सबसे अधिक महत्व की वस्तुएं हैं। इन दोनों में ही तुम कम अधिक मात्रा में निर्विचार दशा में रहते हो, यही कारण है कि तुम जो कुछ श्रवण करते या देखते हो, उसे समझ पाने में समर्थ होते हो। इस प्रकार हम मन की उस अवस्था तक पहुंचते हैं जिसे निर्विचार दशा या दूसरे शब्दों में निश्चल मन कह सकते हैं। एक अवस्था जिसमें मन काम नहीं करता कोई विचार नहीं उठते कोई बात देखी या सुनी नहीं जाती उसकी व्याख्या नहीं होती, इन्द्रियों के धर्म मन में उत्तेजना अथवा क्रियाशीलता पैदा नहीं करते। जिस समय मन निश्चल हो जाता है उस समय व्यक्ति को अनुभव होता है। उस अनुभव को किसी वस्तु के सन्दर्भ में बताया समझाया नहीं जा सकता। यह ऐसा अनुभव है जो असीम आनन्द की प्राप्ति करा देता है प्रसन्नता की अद्वितीय अवस्था का निर्माण कराता है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह अवस्था कोई उपलब्धि नहीं बल्कि अनुभव है जिसके पश्चात ज्ञान होता है यह किसी प्रक्रिया का परिणाम नहीं है जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं?"

मैंने कहा, "गुरुदेव अब मैं समझ रहा हूं कि तत्पर श्रवण और अवलोकन कम होता है। जहां तक मन की निश्चलता का प्रश्न है मुझे मान लेना होगा कि मुझे उस अवस्था का अनुभव अभी होना है। तत्पर श्रवण और अवलोकन में हम बहुत थोड़े समय के लिए जिसे निर्विचार दशा कहते हैं, उस स्थिति में रहते हैं किन्तु वह इतनी कम अवधि तक ही बनी रहती है कि हमारे अवलोकन में वह नहीं आ पाती और कदाचित् ही हमें उसका ज्ञान हो पाता है। यह अवस्था अर्थात् मन की निश्चलता कुछ ज्यादा देर तक बढायी जा सके, तात्पर्य यह कि और ज्यादा देर तक कोई व्यक्ति निर्विचार दशा में रह सके तो मुझे विश्वास है कि उसे अनन्त आनन्द और सुख की प्राप्ति हो सकती है। जैसा कि आपने स्वयं ही हमें बताया है। अब समस्या यही रह जाती है कि किस प्रकार ज्यादा देर तक निर्विचार दशा में रहा जा सकता है?" गुरुदेव ने कहा, "जो समझना चाहिए वह तुम अब समझ गये हो। बड़े प्राचीन काल से ही निर्विचार दशा प्राप्त करने के लिए अनेक उपायों और साधनों पर प्रयास किया गया है और उनको भिन्न-भिन्न योग कहा जाता है। मन और इन्द्रियों में परस्पर संगीत की दशा प्राप्त करने के लिए उनकी योजना हुई है। जब इन में विसंगति पैदा होती है तो उनमें समन्वय नहीं रहता और साधक, जिसने मन की निश्चलता का अनुभव नहीं किया है अशांति का अनुभव करेगा। जैसा कि मैंने तुम्हें पहले समझा दिया है, तत्पर श्रवण और अवलोकन करते समय तुम्हारी सब इन्द्रियां तत्पर श्रवण और अवलोकन की शक्ति के साथ पूर्ण सामञ्जस्य में रहती हैं या दूसरे शब्दों में कहना हो, तो अन्य इन्द्रियों की शक्ति या क्षमता आपकी अवलोकन या तत्पर श्रवण

शक्ति में केन्द्रित हो जाती है। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो अवलोकन अथवा तत्पर श्रवण करने में आप असमर्थ होंगे। इसी तरह से आपका शरीर, मन और इन्द्रियां पूर्ण सामन्जस्य में या एक स्वर में होनी चाहिएं ताकि इस प्रकार की दशा या वातावरण निर्माण हो जो सब दृष्टि से मन की निश्चल अवस्था निर्माण करने में सहायक हो। आप कितने ही महान गायक क्यों न हों आप सर्वश्रेष्ठ गायन में समर्थ नहीं होंगे यदि आपका स्वास्थ्य खराब है आपकी मनोदशा अच्छी नहीं है या जिन उपकरणों पर आप गाते हैं वे बेसुरे हैं या आपके चारों ओर का वातावरण अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में पूरक या सहायक नहीं है। इस तरह तुम देखोगे कि इच्छित परिणाम पाने के लिए हर वस्तु में संपूर्ण संगति या स्वरैक्य होना अनिवार्य है। इसी तरह निर्विचार दशा प्राप्त करने के लिए शारीरिक, मनोदशात्मक और मानसिक संवृति अत्यन्त आवश्यक या ऐसा कहें कि एकमात्र सहायक है। जब एक बार यह प्राप्त हो गया और साधक को अनुभव मिल गया तो यह अनुभव अपने आप में इतना समृद्ध, परिपूर्ण या परम होता है कि मन की निश्चलता स्थायी अवस्था में बनी रहती है किसी पर अवलंबित नहीं होती और उपरोक्त तत्वों में से किसी से भंग नहीं होती। इसलिए यह आवश्यक पाया गया है कि जो साधक निर्विचार दशा, मन की निश्चलता की कामना करता है उसे अपने चारों ओर सामञ्जस्यपूर्ण वातावरण बनाना पड़ेगा जो निर्विचार दशा में, यदि और जब वह आती है, सहायक होगा। किसी दूसरे उचित पर्याय के अभाव में यौगिक विधियों, समाधि, एकाग्रता, भक्ति आदि को इस प्रकार का वातावरण बनाने के लिए सर्वोत्तम विधियों के रूप में पाया गया है। इन विभिन्न विधियों के पक्ष-विपक्ष में समझाने के लिए काफी समय लगेगा और वह अनावश्यक है। मैं तुम्हें जो बताना चाहता हूं वह अनुभव के द्वारा पाया सत्य है कि योग, विशेषतः समाधि और अधिक विशेष रूप से निर्विकल्प समाधि साधक को निर्विचार दशा की ओर ले जाती है जिसमें कोई वह अनुभव पा सकता है जो मैं पहले ही तुम्हें बता चुका हूं।" मैंने कहा, "गुरुदेव, वह बड़ी बात तो नहीं होगी यदि मैं, आपसे प्रार्थना करूं कि आपने अभी जो बातें बतायीं उनमें से आप कुछ मुझे सिखा दें। क्या मुझे अपना अभी का जीवन-क्रम, जीने का ढंग और वर्तमान गतिविधियां बदलनी होंगी? क्या मुझे संसार को छोड़ना पड़ेगा, याने मुझे अपने माता-पिता को छोड़ना पड़ेगा और योग, समाधि आदि सीखने के लिए संन्यासी होना पड़ेगा?" गुरुदेव हंस पड़े, उन्होंने कहा, "माधव, तुम्हें यह सब कुछ नहीं करना होगा। जो तुम चाहते हो उसे सिखाने में मुझे खुशी होगी। यौगिक क्रियाएँ, तुम्हारे वर्तमान जीवन में बाधक बनने के बजाय निश्चित रूप से तुम्हें सहायक ही होंगी। बहुत अच्छे स्वास्थ्य और शांतिपूर्ण मनोवृत्ति की दशा बनाये रखने, तथा शारीरिक और मानसिक रूप में अधिक शक्तिवान बनने में उनसे

तुम्हें सहायता मिलेगी और मुझे विश्वास है कि तुम्हारी प्रगति में सहायक होगी। जहाँ आवश्यक हो, मैं तुम्हें मार्ग दर्शन करूंगा और उन गर्तों से तुम्हें सावधान करूंगा जहां दूसरे लोग केवल असफल ही नहीं रहे बल्कि सर्वनाश को भुगत चुके हैं।" गुरु देव के स्नेहमय आश्वासन सुनकर और मुझे उपदेश देने की उनकी इच्छा देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। अपनी जगह से उठकर मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। गुरुदेव ने कहा—"कल बहुत मंगल दिन है मैं तुम्हें कल योग में दीक्षित करूंगा।"

दूसरे दिन सुबह चार बजे मैं उठ गया। स्वामी जी और गुरुदेव मेरे से पहले उठ चुके थे और मेरी ही प्रतीक्षा में थे। हम सबने ज्ञानवापी में स्नान किया और मन्दिर के गर्भगृह में गुरुदेव ने मुझे योग का पहला पाठ दिया। लगभग आठ बजे मैं मुक्त हुआ और मैंने चाय ली, गुरूदेव और स्वामी जी ने दूध ग्रहण किया। मैंने गाड़ी के चालक से कह दिया कि वह गाड़ी लेकर घर चला जाये और पिताजी को संदेश बता दे कि हम लोग लगभग एक सप्ताह बाद लौटने वाले हैं। कुछ और सामान लाने के लिए मेरा सेवक भी उसके साथ चला गया। सायंकाल में वह लौटने वाला था। इस प्रकार एक सप्ताह तक हम वृद्धेश्वर रहे। उस स्थान का वातावरण, ज्ञानवापी का स्नान जिसमें नाथपंथ की दीक्षा लेने से पहले प्रत्येक साधक ने स्नान किया था, योगाभ्यास के लिए मुझे अत्यन्त पूरक प्रतीत हुआ। जब हम घर लौटे तो मुझे पहले जैसे स्वस्थ और प्रसन्नचित देखकर माता पिता को बड़ी खुशी हुई। हो सकता है कि वृद्धेश्वर का प्रसन्न वातावरण और खुली हवा इसका कारण हो अथवा गुरुदेव का सान्तिय या योगाभ्यास भी इसका कारण रहा हो। कारण कुछ भी हो, मुझे पूर्ण स्वास्थ और शक्ति सम्पन्नता का अनुभव हो रहा था। गुरुदेव और स्वामी जी हमारे साथ दो दिन और रहे, फिर पंढरपुर चले गए। उनके चले जाने पर हमें अकेलेपन का अनुभव होने लगा। गुरुदेव का माता जी पर अनूठा प्रभाव पड़ा था। वे बार-बार उन्हीं के बारे में बोल रही थीं और उनके कथन पर सोचने का प्रयास कर रही थीं। पिताजी भी गहन चिंतनशीलता की मुद्रा में थे। गुरुदेव की अनुपस्थिति मुझे बड़ी खल रही थी। इसलिए मैंने तय कर लिया कि अपने अवकाश का अधिक से अधिक लाभ उठाकर गुरुदेव ने जो सिखाया था उसका अभ्यास करूँ। भोजन के बाद रात में जब हम कक्ष में बैठे थे तो माता जी ने कहा—'जहाँ कोई समस्याएँ नहीं रहतीं ऐसी मन और बुद्धि की अवस्था पा लेना बड़ा ही कठिन है।" पिता जी ने कहा—"यदि तुम माधव के विवाह की समस्या के लिए कह रही हो तो मैं सोचता हूं कि माधव का भाग्य गुरुदेव के सुयोग्य हाथों में सोंपकर हमने समझदारी का काम किया है और गुरुदेव ने माधव पर ही निर्णय छोड़कर ठीक किया है। माधव हमारा लड़का है। इसलिए हम उसे बच्चा ही समझते हैं किन्तु इसमें शक नहीं कि अब वह बड़ा हो

गया है, समझदार हो चुका है और उसमें यह तय करने की क्षमता है कि उसका हित किसमें है। यह सचमुच में असंगत है कि उसके जीवन का मार्ग हमें तय करना चाहिए। इसलिए मैं सोचता हूं कि हम दोनों के लिए सबसे अच्छी बात यही होगी कि हम उसे अकेला छोड़ दें और देखते रहें कि वह कैसे प्रगति करता है। गुरुदेव का कथन हम दोनों के लिए भी असरदार है हालांकि हम अपने जीवन की अंतिम अवस्था में पहुंच गए हैं अपने जीवन भर हम अनावश्यक जिम्मेदारी और भार ढोते रहे और मैं सोचता हूं कि यही कारण है कि हम अपने जीवन में उतनी मात्रा में आनन्द नहीं ले पाये जितनी मात्रा में हमें लेना चाहिये था। जीवन का हेतु नहीं समझे जितना समझना चाहिये था और शान्ति पाने में हम असमर्थ रहे जो हमारा धर्म सम्मत अधिकार था। अभी भी बहुत देर नहीं हुई है यदि हम दोनों मिलकर सोचते हैं और वह पाने का प्रयास करते हैं जिसे हमने सम्पूर्ण जीवन भर भुलाये रखा था। यदि हम पिछली गलतियों को सुधारने की वृत्ति में सम्पूर्ण रूप से लग्न रहते हैं तो मैं सोचता हूं कि शान्ति पाना असम्भव नहीं है। अब भी हम अपनी शक्तियों का उपयोग गलत दिशाओं में ही कर रहे हैं।" माता जी बोलीं "आइये अब हम परस्पर मिलकर काम करें या यह कहती हूं कि सही समझ के साथ उन बातों को त्याग दें जिनके कारण हमारे सुख का नाश हुआ है। हम साथ साथ रहे हैं। आज तक का जीवन आपस में पूर्ण समझदरी के साथ हमने बिताया है। अब इसके बाद भी हम हाथ में हाथ मिलाकर अन्तिम क्षण तक चलते रहें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव के आशीर्वादों से हमें पूर्ण सफलता मिलेगी।" देर हो रही थी और प्रसन्न चिंतनशील मुद्रा में हम लोग वहां से उठे। मैं अपने कमरे में जाकर सोने का प्रयास करने लगा। समय काफी बीत गया किन्तु सो न सका। मैंने कुछ पढ़ने का प्रयत्न किया लेकिन मन एकाग्र नहीं हुआ। मैं चिन्तशील भाव में था और एक प्रकार से अपना आत्म परीक्षण कर रहा था। मुझे बचपन की चीजें याद आना आरंभ हुआ। मैं कैसे बड़ा हुआ और आज मैं क्या हूं यह एक तथ्य था कि मेरे माता पिता द्वारा दी हुई एक प्रकार से मेरे ऊपर समाज अथवा उस सामाजिक वातावरण द्वारा थोपी गई शैली का मैंने अनुकरण किया था जिसमें मैं बड़ा हुआ था। मैंने बड़े उत्साह और क्षमता के साथ उसका अनुकरण किया था और मैं सोचता था कि बड़े प्रमाण में उसमें सफलता भी प्राप्त की थी और इस प्रकार मेरे माता-पिता को मुझ में जो विश्वास था उसे उचित साबित किया था। अपने परिवार की परम्परा का पालन किया था। और प्रतिष्ठा का पद प्राप्त करने तक मैं ऊंचा उठा था। जिस प्रकार मुझे सफलता मिलती रही वह मेरे परिवार के सदस्यों और मित्रों की दृष्टि में प्रशंसा की बात थी। इस दृष्टि से मुझे अपने किए का कोई पश्चात्ताप नहीं था।

मैंने जो शिक्षा प्राप्त की थी, उसमें विभिन्न विषयों का ज्ञान था,

बुद्धि को समझने और ग्रहण करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण था और विभिन्न विषयों के बारे में जितनी संभव है, उतनी जानकारी इकट्ठा करना था। इस सब का मूल्य या महत्व था, मुझे जीवन की आवश्यकताओं से मुक्त रखना। कहने का तात्पर्य यह कि मैंने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसमें जीवन की अपेक्षाएं पूर्ण करने की क्षमता थी। इस सीमा तक मुझे मानना पड़ेगा कि उसका उद्देश्य पूर्ण हुआ है। इसलिए मैं फिर यही कहूंगा कि अपने अतीत के लिए मुझे कोई पश्चाताप नहीं है। अब यह समस्या रही—वास्तविक आवश्कताएं क्या थीं और क्या मैं अपनी शिक्षा, उपलब्धि और सफलता का उपयोग संपत्ति के संग्रह, अहंकार की संतुष्टि और इच्छाओं की परि-पूर्ति करने के आशय से नहीं कर रहा हूं? मुझे मानना होगा, इन्हीं सब उद्देश्यों के लिए मैंने अपनी सब उपलब्धियों का उपयोग किया था। किसी व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक, जैविक और उसी प्रकार स्पष्ट आवश्यकताओं के लिए प्रबन्ध करना पड़ता है किन्तु न जिस लक्ष्य और ध्येय के पीछे चल रहा था, जिस उद्देश्य पर मैंने अपने प्रयास केन्द्रित कर रखे थे और जो मेरी सारी गतिविधियों का केन्द्र था, वह तो मेरे प्रस्तुत जीवन के किसी भी औचित्य को चुनौती दे रहा था। जैसा कि गुरुदेव ने समझाया था, मैं एक मायिक वस्तुओं के पीछे पड़ा था। तात्पर्य यह है कि जीवन में मैं उन वस्तुओं पर अपना समय और शक्ति बराबाद कर रहा था जिनका शांति प्राप्त करने के लिए कोई उपयोग नहीं है। मैं भावनाशील नहीं हूं। वास्तविक-ताओं को समझने और हरेक वस्तु के मूल्यों को लाभ और अनुभव में तौलने की मैंनें आदत बना ली है इसलिए मेरे लिए यह आवश्यक था कि मैं अपनी वर्तमान गतिविधियों, किसी बदल के बिना जारी रखूं और साथ ही साथ गुरुदेव के उपदेशों का अनुसरण भी करता रहूं और इसके पश्चात निर्णय करूं कि मेरे लिए क्या लाभकारी होगा। इसलिए मैंने तय कर लिया कि अनुभव के प्रकाश में जीवन को अपने मार्ग पर चलने दूं और किन्हीं भावनाओं के भार से उसमें बाधा निर्माण न करूं। मैं इस निष्कर्ष तक भी पहुंच गया कि पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का जीवन में उतना महत्व नहीं है जितना कि मुक्त चिन्तन और उसके फलस्वरूप होने वाले कर्म का। विचार ही कर्म को जन्म देता है। कर्म व्यक्ति का जीवन बनाते हैं, तात्पर्य यह कि किसी व्यक्ति का जीवन कर्मों से भरा रहता है और कर्म ही विभिन्न विचारों का परिणाम। यदि हम प्रमाणिकता से अपने विचारों का निरीक्षण कर सकें तो कर्मों का निरीक्षण भी अपने आप हो जायेगा। यदि कोई व्यक्ति आत्म केन्द्रित है तो अपनी इच्छाओं, अहकार आदि की संतुष्टि के लिए ही वह कर्म करेगा चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो, उसे कुछ भी फल भुगतना पड़े इसलिए यह स्पष्ट है, कि उस विशिष्ट इच्छा या भावना की संतुष्टि के लिए इच्छाएं और भावनाएं क्षण प्रतिक्षण कर्म को उत्पन्न करती हैं। इसलिए मैंने तय कर लिया कि अपने

विचारों और उनके फलस्वरूप किसी विशिष्ट इच्छा अथवा भावना की संतुष्टि के लिए क्षण क्षण पर होने वाले कामों का मैं निरीक्षण करता रहूं। इस प्रकार मैंने सोचा कि यदि मैं अपने विचारों को समझने में सफलता पा लूं तो मेरे जीवन की सारी गतिविधि का अवलोकन हो सतता है और उसे उचित रूप से मार्ग दर्शन भी पाया जा सकता है। रात मैं बड़ी देर से सोया लेकिन इसके बावजूद मैं प्रातः जल्दी उठ गया और स्वाभाविकता और ताजगी का अनुभव मुझे हो रहा था। नित्य के समान मैं क्लब में टेनिस खेलने गया। लौटते हुए मेरे मन में विचार उठा कि कुछ दिन अपने मित्र के साथ रहने के लिए मैं बंगलौर चला जाऊं। इस प्रकार का परिवर्तन मेरे लिए अच्छा रहेगा।

जब घर पर बंगलौर जाने के विचार पर मैंने सोचा तो मैंने यह जानने का प्रयास किया कि बंगलौर जाने का विचार मन में कैसे उठा? सच बात यह थी कि मैं घर पर बड़े आराम से था और सुखद वातावरण में था। तो क्या यह बात थी कि जीवन की विविध समस्याओं से मुकाबला करने के भय ने कहीं दूर स्थान पर जाने की इच्छा मुझमें पैदा की थी? क्या मैं अति परिश्रम से थक गया था और मुझे विश्राम की आवश्यकता थी? मैंने परीक्षण से यह जान लिया कि इस बात में कोई सत्यता नहीं थी। नगर की जलवायु अच्छी थी, मुझे किसी भी प्रकार की चिन्ताएं नहीं थी। किसी से भय नहीं था, मेरा स्वास्थ्य अच्छा था और मेरी खुद की मनोदशा के अलावा ऐसी कोई अन्य बात नहीं थी जो मेरी मनः शान्ति भंग कर दे। ऐसी क्या बात थी जिसे मैं बंगलौर में पाना चाह रहा था और जो यहाँ पर नहीं मिल पाती? यह स्पष्ट था कि मेरी हाल की मनोवृत्ति और गलत धारणा ही मेरी शांति में विघ्न डाल रही थी और इसीलिए मैं बंगलौर जाना चाहता था। जैसे ही मैं समझ गया कि मेरी मनोबाधा और सदोष विचार प्रणाली बंगलौर में क्या मैं कहीं भी जाऊं तो मेरा पीछा नहीं छोड़ेगी, मैं मनः पूर्वक हंस पड़ा। अतः यह स्पष्ट था कि केवल निर्दोष मनोवृत्ति और विचार प्रणाली में ही मुझे आराम, शांति प्रधान करने की क्षमता है, केवल स्थान परिवर्तन से वह नही प्राप्त होगी। यह बात समझ में आते ही बंगलौर जाने की इच्छा मिट गई और मैं घर बड़े आराम से रहने लगा। मैंने सोचा समस्या हल करने का यही सही तरीका है और भविष्य में भी मुझे इससे सहायता मिलेगी।

तीसरा भाग

पहला प्रकरण

नगर में अपनी छुट्टियाँ बिता कर मैंने स्वस्थ अवस्था में धारवाड़ में पुनः कार्यभार ग्रहण किया। एक दिन शासन की ओर से हमें सूचना प्राप्त हुई कि भारत सरकार के अधीनस्थ महत्वपूर्ण पदों पर योग्य व्यक्तियों का चुनाव होना है। प्रान्तीय सरकारों से कहा गया था कि वे ऐसे व्यक्तियों की सिफारिश करें। चयन के लिए दिल्ली में परीक्षा का आयोजन किया गया था। धारवाड़ के जिलाधीश ने मेरी बड़ी सिफारिश की थी। मुझे साक्षात्कार तथा परीक्षा इत्यादि हेतु दिल्ली जाना था, इसलिए चयन समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए मैं धारवाड़ से चल पड़ा। मार्ग में मैं अपने निर्णय का परीक्षण करने का प्रयास कर रहा था कि आखिर मैं दिल्ली क्यों जा रहा हूं ? क्या धन की लालसा या प्रतिष्ठित पद की प्राप्ति मुझे दिल्ली ले जा रही है ? जिस प्रकार से मेरा जीवन चल रहा था उसमें मुझे चिन्ताएं नहीं थीं और चूंकि मैंने अविवाहित रहना तय किया था इसलिए पद की प्राप्ति अथवा धन संग्रह के आकर्षण ने मुझे दिल्ली जाने के लिए प्रेरित नहीं किया था। अतः स्पष्ट था कि यह चुनाव मेरी बौद्धिक क्षमता, और अपने कार्यक्षेत्र में कुछ अधिक श्रेष्ठता संपादन करने के अहंकार के लिए एक आह्वान था और उस आह्वान को स्वीकार करने मैं दिल्ली जा रहा था। इसलिए समस्या यह रह गयी कि क्या यह आह्वान स्वीकार करना सही था ? मैंने सोचा कि चुनौती का सामना न करना मात्र कायरता ही होगी और अपने जीवन में मुझे कायरता मालूम नहीं थी। दिल्ली जाने के लिए अस्वीकृति देने का मतलब होता है कि मैं प्रतियोगिता से कतराता हूं और अपनी योग्यता में मुझे विश्वास नहीं है। यदि मुझे सफलता मिलती है तो वरिष्ठ पद पर चुने जाने से मैं किसी के भविष्य को हानि नहीं पहुंचा रहा हूं और न ही कोई अप्रमाणिकता की बात ही कर रहा हूं। यदि मैं असफल रहता हूं तो इससे मुझे अपनी कमियां पता होंगी और असफलता के कारण भी। उनसे एक प्रकार से मुझे अपने बारे में जानकारी बढाने में सहायता ही मिलेगी। इसलिए मैंने सोचा कि दिल्ली जाने में कोई गलत बात नहीं है। मुझे किसी भी प्रकार से अपने भविष्य के बारे में चिन्ता नहीं थी, इसका मुख्य कारण यही था कि चिन्ता करने लायक कोई बात ही नहीं थी और मैंने तय कर लिया था कि जीवन को अपने रास्ते पर चलने दूं। भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में, क्षण-क्षण की गतिविधियों में ही मेरी अधिक रुचि थी।

विचार के बिना कार्य होने की मैंने वास्तविकता नहीं समझी। मन की निर्विचार दशा कभी भी कर्म को जन्म दे सकती है इसकी संभावना मैंने नहीं सोची। गुरुदेव के साथ भेंट हुई थी तब से मुझे अपने में परिवर्तन का अनुभव होने लगा था। मैं बहुत कम चिन्तित था, अप्रसन्न अथवा निराश बहुत कम होता और मानसिक प्रक्रिया और परिणाम जन्य कर्म का निरीक्षण करने की मैंने आदत बना ली थी। इस प्रकार मैं अपनी स्वतः की मानसिक प्रक्रिया का निरीक्षण करने में ही अधिक रुचि लेने लगा था मैं सचेत रहने लगा था कि कहीं ऐसा न हो कि मैं किसी क्षण बेखबर हो जाऊं, तात्पर्य यह है कि मैं दिन प्रतिदिन सावधान होता जा रहा था और आंतरिक प्रक्रिया से अवगत हो रहा था। यह सोचने की मुझे जरा भी चिन्ता नहीं थी कि इससे मुझे जीवन में सफलता मिलेगी या नहीं लेकिन एक बात निश्चित थी कि जटिलताओं से, मानसिक अथवा शारीरिक दुविधा से दूर रहने में मुझे इससे सहायता मिल रही थी। मैंने सोचा कि आंतरिक रूप से मैं पहले से कहीं अधिक शांत और उत्साही होता जा रहा हूं। इस अवधि में मैं उत्तम स्वास्थ्य का आनन्द ले रहा था, यौगिक क्रियाओं का अभ्यास कर रहा था और अपनी आदत के अनुसार मैं नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम लेता था। ये सारी बातें करने में मुझे प्रसन्नता लग रही थी और इस अवधि में मुझे कभी भी अकेलेपन अथवा मनोदशा का अनुत्साहित अनुभव नहीं हुआ। समय समय पर गुरुदेव के साथ अधिक सहवास की मुझे इच्छा हो रही थी और अपनी वर्तमान गतिविधियों समेत सब कुछ छोड़कर शेष जीवन उन्हीं के साथ व्यतीत करने की चाह उठ रही थी। लेकिन इसके पीछे तर्क संगत मान्यता नहीं थी। यह इच्छा क्यों हो रही थी और अपना पद छोड़ने और गुरुदेव के साथ रहने से मैं अपना कौनसा लाभ करा लेने वाला था यह मैं नहीं जान सका और अपने को नहीं समझ सका। इसलिए इस इच्छा के बारे में कोई खास विचार करना मैंने स्थगित कर दिया और जीवन को अपने ही मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए छोड़ दिया।

मुझे दिल्ली में रुके हुए लगभग दो सप्ताह बीत चुके थे। परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए सारे भारत से अभ्यर्थियों का आगमन हुआ था। सर्वप्रान्तीय सम्मेलन सा अच्छा वातावरण था। हमारी लिखित परीक्षा समाप्त हो चुकी थी और क्रमानुसार हमें मौखिक परीक्षा में उपस्थित होना था। मैं अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा था, इसलिए कुछ विशेष काम नहीं था। मैं अधिकारी आवास गृह में रुका था और वहीं पर मित्रों और परिचितों से मिलना हो जाता था। आखिर वह दिन आ गया जिस दिन मैं समिति के समक्ष मौखिक परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ। शासन में बहुत ऊँचे पदों पर आसीन अधिकारी व्यक्तियों से वह

समिति बनी थी। मौखिक परीक्षा पर बहुत कुछ निर्भर था। मुझ से अनेक प्रश्न पूछे गए और मैं सोचता हूं कि मैंने उनके संतोषजनक उत्तर दिए। लगभग सभी अभ्यार्थियों ने तय किया था कि चुनाव का परिणाम घोषित होने तक दिल्ली में ही रुका जाए। दो सप्ताह के भीतर चुनाव के परिणाम घोषित होने की आशा थी इसलिए मैंने पन्द्रह दिन की छुट्टी बढ़ा ली। बड़े आनन्द के साथ दिल्ली में हमारा समय बीत रहा था। दिन में हम दर्शनीय स्थल देखने जाते और सायंकाल का समय अधिकारी बिश्राम गृह में बिताते। टेनिस और बेडमिन्टन खेलने का मुझे शौक था और महाविद्यालय में पढ़ते समय मैंने इन खेलों में प्रवीणता भी प्राप्त की थी। सौभाग्य से अब तक मुझे नियमित रूप से खेलने का अवसर मिला था इसलिए अभी तक मेरे खेल का वही स्तर बना हुआ था। दिल्ली में मुझे केवल खेल की अच्छी सम्भावनाएँ ही नहीं दिखीं तो बड़ी सख्या में अच्छे खिलाड़ियों से मुलाकात भी हुई। केन्द्रीय शासन का स्थान होने से उच्च पदों पर कार्य करने वाले अधिकारियों और उनके परिवारों से दिल्ली भरी हुई थी। बड़े धनी और रईस लोग, नवाब और राजा, महाराजा बड़ी शान-शौकत से यहाँ पर रहते थे।

यहाँ पर कुमारी विनोदिनी गुप्ता से मेरा परिचय हुआ। विनोदिनी एक सपन्न रईस घराने में जन्मी थीं। दिखने में अत्यन्त सुन्दर थीं और टेनिस और बेडमिन्टन की अच्छी खिलाड़ी भी थीं। आपसी मैच में एक बार संयोग से वह मेरी सहयोगी थीं। हमने मैच जीत लिया और अच्छे खेल के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। उनके पिता भी टैनिस के अच्छे खिलाड़ी थे और उनसे मेरे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे। टेनिस कोर्ट में, मैं और विनोदिनी हर सुबह मिलते थे और विनोदिनी के साथ मेरा परिचय बढ़ता गया। उसके पिता के साथ भी मेरा परिचय बढ़ता गया। अपने पिता के साथ वह देश विदेश में भ्रमण कर चुकी थी। विलायत में अभी उसका विवाह नहीं हुआ था क्योंकि श्री गुप्ता को उनके समाज में कोई योग्य वर नहीं मिला था और समाज के बाहर विवाह करने की बात विनोदिनी के ऊपर छोड़ी गई थी। गुप्ता दंपति अच्छे सुशिक्षित थे और देश विदेश में घूम चुके थे, अपने समाज में ही विवाह होना चाहिए इस बात का आग्रह उसका नहीं था और उन्होंने कभी भी इस बात पर जोर नहीं दिया कि विनोदिनो को अपनी जाति और गोत्र में विवाह करना चाहिए। दिन प्रतिदिन विनोदिनी के साथ मेरा सहवास बढ़ता गया और किसी न किसी कारण उसके साथ रहने में मुझे आनन्द का अनुभव होने लगा।

दूसरा प्रकरण

चयन समिति के परिणामों की घोषणा हो चुकी थी। चुने गए व्यक्तियों में मेरा भी नाम था। किसी विशिष्ट पद पर नियुक्ति से पूर्व छः मास तक प्रशिक्षण के लिए मुझे दिल्ली में ही रुकना था। भारत सरकार के सम्बन्धित आदेश मुझे मिल चुके थे और धारवाड़ में जिलाधीश के पास भी आ गए थे ताकि कार्य-भार से मुझे मुक्त किया जा सके।

मेरे माता पिता, भाइयों और परिचित लोगों ने मुझे बधाइयां भेजीं। गुप्ता दंपति और विनोदिनी बहुत खुश थे। किन्हीं अज्ञात कारणों से कुछ और समय तक दिल्ली रुकने की संभावना से मुझे भी खुशी हुई थी। यहां पर धारवाड़ जितना काम नहीं करना पड़ता था क्योंकि विभिन्न दायित्वों और कार्यों से परिचित होने के लिए मुझे एक विभाग से दूसरे विभाग में जाना पड़ता था। मेरे पर कोई जिम्मेदारी नहीं थी और मुझे कार्यालयीन समय की निश्चित अवधि तक ही काम करना पड़ता था। इसलिए अपने दूसरे कामों के लिए मुझे सुबह और शाम का समय खाली रहता था।

विनोदिनी के मधुर सहवास में मेरा काफी समय बीतता था। सुबह और शाम के समय कभी भी हम दोनों को टेनिस या बेडमिन्टन के कोर्ट में देखा जा सकता था। विनोदिनी हंसमुख स्वाभाव की, सुसंस्कृत और बुद्धिमान लड़की थी और उसके व्यवहार में शिष्टता थी। एक दिन क्लब में जब हम दोनों टेनिस खेलने के बाद विश्राम कर रहे थे कि परिचित व्यक्तियों में से किसी ने हमारी मित्रता के बारे में टिप्पणी कर दी। विनोदिनी बुरी तरह झेंप गयी और मेरी ओर देखने लगी। मुझे टिप्पणी अच्छी नहीं लगी लेकिन बात की गम्भीरता कम करने के लिए मैंने हंसने का प्रयास किया। दिल्ली ऐसे ही इधर उधर के प्रवाद उठाने वाले लोगों की नगरी है और मैं देख रहा था कि यहां का हर व्यक्ति अपने स्वयं के कामों में रस लेने के स्थान पर दूसरों की बातों में ही उसे अधिक रुचि रखता था। उस व्यक्ति से मिलकर अपने मन की बात मैं जता देना चाहता था किन्तु मैंने सोचा कि विनोदिनी को पहले उसके घर छोड़ दूं और फिर उस अशिष्ट व्यक्ति की खबर लूं। इसलिए मैं उठ गया और विनोदिनी भी मेरे पीछे आ गई। मैंने उसे घर पहुंचा दिया। घर जाते समय मार्ग

में वह एक शब्द भी नहीं बोलीं। मैं तुरन्त क्लब लौट आया, उस व्यक्ति से मिला और उससे पूछा कि इस प्रकार की टिप्पणी से उसका क्या मतलब है? आश्चर्य की बात यह थी कि उसने तुरन्त मुझ से क्षमा मांग ली और कहा कि उसके कहने का कोई विशेष अभिप्राय नहीं था। उसने यह भी कहा कि विनोदिनी को वह क्षमा याचना के साथ यह बता देगा कि किसी गलत बात से उसका तात्पर्य नहीं है। फिर भी मैंने उस व्यक्ति को चेतावनी दी कि मेरे जैसे स्वभाव के लोगों से व्यवहार करते समय वह अधिक ध्यान रखा करें। उसकी श्रेणी के लोगों के लिए यह मजाक चल सकती है लेकिन मेरी व्यक्तिगत बातों में दूसरा व्यक्ति रुचि रखे यह मैं कदापि बर्दाश्त नहीं करता और मैं सहिष्णुता में विश्वास नहीं करता हूं। इसलिए इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

दूसरे दिन श्री गुप्ता के निवास पर मैं गया तो मैंने देखा कि विनोदिनी क्लब चलने के लिए तैयार है। मैंने पूछा, "आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या? या किसी से मिलने जाना है?" कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया, मुझ से केवल यह कहा कि यदि मेरी इच्छा हो तो मैं अकेले ही टेनिस खेलने जाऊं। मैंने पूछा, "आप क्यों नहीं आ रहीं?" उसने कहा, "हम दोनों एक साथ खेलते हैं तो लोग फब्तियां कसते हैं, यह मुझे पसंद नहीं। मैं मानती हूं कि आप होनहार युवक हैं और वरिष्ठतम पद तक पहुंच सकते हैं इसलिए इस प्रकार की बातों से आपकी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचने की संभावना हैं। मैं भारत और विदेशों में भी भ्रमण कर चुकी हूं और कितने ही नवयुवकों से मिल चुकी हूं लेकिन शायद ही मुझे ऐसा कोई व्यक्ति मिला है जिसके प्रति मुझे इतना आदर है।" वह और भी कुछ कहे इसके पहले मैंने कहा, "विनोदिनी जी, प्रशंसा के लिए धन्यवाद। जितना आप सोच रही हैं, उतना बड़ा मैं नहीं हूं। मैं तो आपसे भी कहीं अधिक सामान्य हूं। जिस व्यक्ति ने कल वह टिप्पणी की थी उसकी मैं पहले ही खबर ले चुका हूं और यदि आपकी इच्छा हो तो मैं देखूंगा कि वह आपसे माफी मांगता है या नहीं। यदि क्लब में दोनों एक साथ नहीं चलते तो हमारे बारे में इस प्रकार की बात करने वालों को बढ़ावा मिलेगा। इसलिए जरुरी है कि हम दोनों साथ साथ क्लब जाते रहें ताकि लोगों को मालूम हो कि वे चाहे जैसी बातें करते रहें, हम उनसे डरने वाले नहीं हैं।" विनोदिनी को मेरी बातों में कुछ तथ्य लगा और वह मेरे साथ क्लब चली आईं। जिस व्यक्ति ने टिप्पणी की थी वह हमें देखते ही तुरन्त हमसे मिलने चला आया। विनोदिनी के पास आकर वह बोला, "विनोदिनी जी, मैं सोचता हूं कि आप मुझे जानती हैं। यदि कल वाली टिप्पणी से आप नाराज हैं तो मुझे बड़ा दुःख है। इस बात से मेरा कुछ भी अभिप्राय नहीं था और मेरा विश्वास है कि इस बात को आप गंभीरता से

नहीं लेंगी । फिर भी जिस प्रकार से आप उचित समझें, मैं अपनी भूल सुधारने के लिए तैयार हूं । कृपया मेरी क्षमा याचना स्वीकार करें ।" विनोदिनी ने हंस कर उस व्यक्ति से कहा, "आपने अभी जो कुछ कहा, उसके लिए मुझे धन्यवाद देना होगा । हम दिल्ली में रहने वाले लोग, इस प्रकार की गैर जिम्मेदार बातों और अनुचित टिप्पणी के आदी बन चुके हैं । किन्तु माधव जी, जैसे बाहर से आने वाले लोग इस प्रकार की बातें अथवा इस प्रकार का जोक उनके साथ हो यह बर्दाश्त नहीं कर पाते । इसलिए मुझे कहने की अपेक्षा आप उन्हें ये सारी बातें बता दीजिए ।" उस व्यक्ति ने कहा, "कल ही मैंने उनसे बात कर ली है और क्षमा भी मांग ली है ।"

उस सायंकाल अपना खेल हमने जल्दी समाप्त किया और हम दूर तक घूमने के लिए चल पड़े । हमने किसी भी विशेष विषय पर बातचीत नहीं की क्योंकि हम अपने ही विचारों में मग्न थे । अचानक मेरे ध्यान में आया कि हम दोनों बातें किये बिना ही चल रहे हैं । इसलिए मैंने उनसे कहा—"विनोदिनी जी, अभी तक अपनी स्वाभाविक मनोदशा में आप नहीं आ सकी हैं । यदि आपकी तबियत ठीक न हो तो हम घर चलें ।" विनोदिनी ने कहा, "मेरी तबियत ठीक है लेकिन मैं सोचती हूं कि मुझे आराम की आवश्यकता है ।" इसलिए उन्हें अपने घर छोड़कर मैं अपने निवास स्थान पर चला आया । दिन बीत रहे थे और यद्यपि हम दोनों लगभग प्रतिदिन मिल रहे थे फिर भी कोई वस्तु हम दोनों के अबाध सम्बन्धों के मध्य आ गई थी और हमारे मन पर बोझ डाल रही थी । लगता था कि हम दोनों अपनी भावनाओं को खुल-कर कहने का अवसर चाहते थे कि वास्तव में हमारे मन में क्या चल रहा है ।

किसी रविवार के दिन गुप्ता दंपति ने वन विहार का कार्यक्रम आयोजन किया था और हम सुबह ही उनकी कार में दिल्ली से चल पड़े । जैसे ही हम दिल्ली की सीमा से बाहर पहुंचे विनोदिनी ने राहत की सांस ली और मुझे लगा कि उसकी मुद्रा पर प्रसन्नता आने लगी है । सुखद आयोजन था और ठहरने के लिए डाक बंगले में प्रबन्ध हो चुका था । नाश्ता करने के पश्चात गुप्ता दंपत्ति बंगले में ही आराम से बैठ कर और विनोदिनी और मैं सैर सपाटे के लिए बाहर निकले । हम सामने की पहाड़ी की ओर चलने लगे । रास्ता कच्चा था और चढ़ाई कुछ कठिन थी । चढ़ते समय, मुझे समय समय पर विनोदिनी की सहायता करनी पड़ी । कुछ ऊपर एक बरगद का बड़ा पेड़ था उसकी शीतल छाया में बैठने का हमारा विचार था । कुछ कठिनाई से मैं शिला पर पहुंच गया किन्तु विनोदिनी के लिये चढ़ाई कठिन थी । इसलिए मैंने मजबूती में उसके दोनों हाथ पकड़ कर उसे ऊपर खींच लिया । मैंने अपने जीवन में आज तक किसी महिला से इतने निकट रहने की धृष्टता नहीं की थी और ऊपर लेते समय विनोदिनी ने जिस प्रकार अपना शरीर मुझ पर छोड़ दिया वह बड़ा ही अनोखा

अनुभव था । उसने मेरे सारे बदन में मानो बिजली की लहर सी दौड़ा दी थी और मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या हो रहा है । परिश्रम के कारण विनोदिनी के मुख पर रक्तिमा छाई थी और वह बहुत सुन्दर लग रही थी । मुझे लगा कि उसकी आँखों में खुशी की लहर दौड़ रही थी, जब मुझे उसने अपनी ओर निनिमेष दृष्टि से घूरते देखा तो वह लजा गई और मेरी निगाहों को टालने लगी । मेरी ओर देखे बिना ही उसने पूछ लिया कि लड़कियों की ओर अभिलाषित दृष्टि से देखने की आदत मैंने कब से बना ली ? मैंने उत्तर दिया—"आप इतनी सुन्दर लग रहीं थीं कि आपकी ओर से नजर हटाना मेरे बस की बात नहीं थी ।" वह तनावपूर्ण क्षण था और कुछ समय तक हम दोनों चुप रहे । इस चुप्पी के समय हमने केवल एक दूसरे को समझ ही नहीं लिया किन्तु यह भी जान लिया कि हमारे हृदयों में क्या चल रहा है । मेरे जीवन का पहला अवसर था जब भावनाओं ने विवेक पर, हृदय ने बुद्धि पर विजय पा ली थी । मुझे यह भी लगा कि मैं नहीं जान पाऊंगा कि अगले क्षण क्या होने जा रहा है । कोई अज्ञात वस्तु मुझ पर कब्जा कर रही थी और मैं धीरे-धीरे अपने स्वतः का नियन्त्रण खो रहा था । स्त्री सुलभ अन्तःप्रेरणा से विनोदिनी ने यह पहचान लिया और वह गंभीर हो गई । विषय परिवर्तन करने के उद्देश्य से उसने कहा, "माधव, यदि हम बिना बोले ही इस प्रकार बैठे रहे तो किसी को शक होगा कि हम झगड़ चुके हैं । मुझ से कुछ दूर हटकर वह बैठ गई और उसने पूछा, "क्या मैं अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ चुका हूं ।" मैं हंस पड़ा और मैंने कहा कि इतने सुन्दर स्थान पर उसके मधुर सहवास में किसी के लिये भी स्वाभाविक रूप से बर्ताव करना असम्भव है । उसने कहा, "माधव जी, अभी भी आप मुझे नासमझ लड़की मानकर ही बात कर रहे हैं । आप को गंभीरता से सोचना चाहिए कि आप किस बारे में बोल रहे हैं । आप उच्च शिक्षा सम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और आपको ठीक तरह से बर्ताव करना चाहिए, यह मुझे नहीं जताना चाहिए ।" उसकी यह बात मुझे स्वाभाविक अवस्था में ले आई । मैंने लज्जा अनुभव की और मैं सोचने लगा कि मैंने असभ्य व्यवहार किया है । मुझे यह भी लगा कि इस एकान्त स्थान पर उसके अकेले होने पर मैंने अनुचित लाभ उठाने का प्रयास किया है । और इस प्रकार उसके माता पिता का मुझ में जो विश्वास है उसकी मैंने अवहेलना की है । मैंने कहा, "विनोदिनी जी कृपया मुझे क्षमा कर दें । मुझ से यदि किसी प्रकार आपका अनादर हुआ हो तो उसके लिए मुझे बड़ा खेद हैं ।"

उसने कहा—'अनादर या अप्रसन्नता का कोई प्रश्न नहीं है किन्तु मैं सोचती हूं कि आप बड़े अजीब ढंग से बर्ताव कर रहे थे जिसे मैंने आज तक कभी भी नहीं देखा जब से हम मिले हैं । आपके मन में क्या चल रहा था यह मैं समझ सकती हूं किन्तु हम दोनों इस आयु तक पहुंच चुके हैं जब हम ठीक तरह से सोच सकते हैं और परिणामों को अच्छी तरह समझ सकते हैं । आपने गलत व्यवहार किया है ।

ऐसी बात नहीं किन्तु आपको आगे बढ़ावा देने से पूर्व मुझे अच्छी तरह से सोच लेना होगा। आगे बढ़ने से पूर्व आपको भी गंभीरता से सोच लेना होगा। हम दोनों के मध्य ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिये जो मन:स्ताप अथवा पश्चात्ताप का कारण बने। आपका अतीत, आपकी आदतें और जीवन की आपकी महत्वाकांक्षाओं के बारे में मैं बहुत कम जानती हू। आप भी आज तक के मेरे जीवन के बारे में, भविष्य के सम्बन्ध में मेरे विचारों के बारे में अज्ञान में ही हैं। हम अब छोटे नहीं रहे कि वासनाओं के वशीभूत हों। जीवन के विभिन्न पहलुओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने, उन्हें समझने के लिए हम पर्याप्त रूप से बड़े हो चुके हैं। इसलिए अभी और कुछ समय तक हम मित्र ही बने रहें जब तक हमारी यह मित्रता किसी और निकट के सम्बन्ध में परिणत नहीं हो जाती। जो कुछ थोड़ा मैं आपके बारे में देख सकी हूं उससे मेरे मन में आपके प्रति आदर का भाव निर्माण हो चुका है और इसी भावना ने अपने परिचय का रूपान्तर सच्ची मित्रता में कर दिया है। इस मित्रता का और किसी में रूपान्तर होने से पूर्व, आप भी मानेंगे कि कुछ और समय की आवश्यकता होगी। मैं नहीं जानती कि मेरे बारे में आप क्या सोचते हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि आपने मुझे मित्र के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जल्दबाजी में कहीं हम मित्रता की इस भावना को नष्ट न कर दें।" इस समय तक मैं अपने पर नियन्त्रण कर चुका था और मैंने कहा,—"विनोदिनी जी, आप ठीक कहती हैं। कदाचित यह प्रथम अवसर है जब मैंने मस्तिष्क पर शासन करने के लिए हृदय को अनुमति दी है। अब मैं आपकी बात समझ रहा हूं और हम दूसरी कोई बात होने से पूर्व हमें दो बार सोचना होगा। उत्तेजित अवस्था में जो कुछ मैंने कहा होगा, उसे आप कृपया भूल जाएं। मेरे आचरण के बारे में याद दिलाने के लिए मुझे आपका धन्यवाद करना होगा।" उसी समय हमने देखा कि गुप्ता दंपति हमारी ओर चले आ रहे हैं। हम उठ गए और कुछ ही समय में पहाड़ी की तराई में उनके साथ हो लिए। डाक बंगले में जाकर हमने भोजन किया। चाय पान के पश्चात् हम दिल्ली के लिए चल पड़े और मार्ग में श्री गुप्ता ने मेरे निवास स्थान पर छोड़ दिया।

भोजन के तुरन्त पश्चात् ही सो जाने के विचार से मैं शय्या पर लेट गया। काफी समय तक मैं नहीं सो सका। केवल दोपहर वाली घटना पर ही मैं नहीं सोच रहा था तो दिल्ली आने के बाद के सारे जीवन पर ही सोच रहा था। मुझे स्मरण आया कि मैं विनोदिनी के संपर्क में कैसे आया और कैसे हमारा सामान्य परिचय मित्रता में परिणत हो गया। समय के साथ यह मित्रता का पहलू भी किसी और चीज में बदल गया जिसे यदि प्रेम न कहें तो प्रणयोन्माद कहा जा सकता है। यह तथ्य था कि विनोदिनी के सहवास में मुझे खुशी से कुछ अधिक चीज का अनुभव हो रहा

था और उनकी अनुपस्थिति में अकेलेपन की भावना थी। मैं अपने परिवार और मित्रों से दूर था। उनके सहवास में कुछ सुख पाने की आशा मुझे थी। इस अवधि में घटित विविध घटनाओं में, विनोदिनी के लुभावने गुणों से मैं कितना प्रभावित हो गया था इसका अवलोकन मैं अब कर सकता था अर्थात् विनोदिनी का यह दोष नहीं था और न ही वह मुझे फुसला रही थी। यह हो सकता है कि उसे भी मेरे सहवास में सुख का अनुभव होता हो। हो सकता है कि यह विशुद्ध रूप से संयोग की बात हो, कुछ भी कारण क्यों न रहे हों, अब मैं देख सकता था कि एक प्रकार से मैं मूर्खता से भरा व्यवहार ही कर रहा था। मैं नहीं सोच सकता था कि यदि आज दोपहर वाली घटना मुझे अपनी स्वाभाविक मनोदशा में न लाती तो क्या हो जाता। इस घटना का मुझ पर बड़ा उपकार था और विनोदिनी का इससे भी अधिक क्योंकि ठीक समय पर उसने मुझे सचेत कर दिया था। यह कोई नैतिक स्खलन जैसी बात नहीं थी क्योंकि नैतिकता के निश्चित स्तर के लिए मुझे कुछ भी आदर नहीं था। किन्तु फिर भी मुझे लगा कि मेरी अस्मिता संकट में थी और मुझे अपने आपको इतनी आसानी से खुला नहीं छोड़ देना था। मैं सोचने लगा कि वह चीज क्या थी जो इतना बड़ा परिवर्तन मुझ में लाई थी कि अपनी चिन्तन और अवलोकन की प्रक्रिया ही मैंने त्याग दी। क्या वह प्रेम था? क्या वह वासना थी? क्या वह इच्छा थी? क्या उसमें केवल सुख का ही भाव था? सच्चा प्रेम वास्तव में क्या हो सकता है?

प्रेम में, जड़ अथवा चेतन वस्तु से केवल प्रेम करने का ही विचार होना चाहिए और केवल प्रेम करने की प्रक्रिया में ही सुख, संतोष और आनन्द मिलना चाहिए। स्वामित्व अथवा एकाधिकार का तात्पर्य है—अहं की संतुष्टि। प्रेम में परि-तुष्टि का विचार भी नहीं रहता। परितुष्टि में यह अन्तर्निहित है कि जिस वस्तु को प्रेम किया जाता है उस वस्तु से कोई व्यक्ति प्रेम के लिए प्रतिफल की अपेक्षा रखता है और किसी प्रकार की सौदेबाजी में तो कोई प्रेम हो ही नहीं सकता। यदि वह वासना ही थी, तात्पर्य वह कि जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति का ही विचार था तो विनोदिनी को उसका शिकार बनाना न केवल अनुचित ही था किन्तु मेरे स्तर के और मेरे जैसे शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति के लिए नीचता और बड़े हल्केपन की बात थी। यदि वह इच्छा थी तो मैं उससे क्या चाह रहा था और वह मुझे क्या दे सकती थी यह भी एक समस्या ही थी। सच देखा जाए तो केवल मेरी इच्छा की तृप्ति के लिए विनोदिनी के जीवन से खिलवाड़ करने का मुझे कोई हक नहीं था। मैं तो निश्चित ही उसे दण्डनीय मानता हूं। जहां तक सुख के विचार की बात है, यह मेरा कर्तव्य था कि किस प्रकार से मैं विनोदिनी को हानि पहुंचा रहा हूं इस पर विचार करूं मुझे क्या हक था कि उस जैसी किसी लड़की से मैं इस प्रकार का व्यवहार करूं। इतनी शिक्षा संपन्न और सुसंस्कृत लड़की से केवल सुख की चाह का विचार लेकर और

परिणामों की कोई चिन्ता किए बिना इस प्रकार का व्यवहार करना किसी को भी निश्चित रूप से शोभा नहीं देता था और मेरे जैसे व्यक्ति के लिए तो जरा भी नहीं। मुझ में कोई वासनाएं नहीं थीं, कोई जैविक लालसाएं नहीं थीं, यह सोचकर मैं स्वयं को ही धोखा नहीं दे सकता था। किन्तु फिर भी मुझे नहीं चाहिए था कि मैं अपनी संस्कृति और शिक्षा को ही भुला दूं। इस प्रकार का बर्ताव मेरे लिए उचित नहीं था। क्या इस सबके पीछे ऐसा कोई भाव था कि विनोदिनी के साथ एक होना है ताकि मैं अपना शेष जीवन-समरसता और शान्ति के साथ व्यतीत कर सकूं। लेकिन यह कितना असगत था? क्या समवेत विवाहित जीवन में समरसता अथवा शांति हो भी सकती है? क्या समवेत विवाहित जीवन में विवाह और मिलन से बने परिवार के कारण निर्माण हुई विविध समस्याएं जीवन को दुखी नहीं बना देतीं? मेरे सामने कोई समस्याएं नहीं थीं इसलिए क्या मैं उस विवाहित व्यक्ति से अधिक सुखी, अपनी चिंता करने के लिए अधिक मुक्त नहीं था जो अपने लिए कभी न मिटने वाली समस्याएं पैदा कर लेता है? और अपना जीवन दुःखी बना लेता है? क्या मैं कभी विवाहित जीवन में मग्न हो सकता हूं? क्या मैं कभी सामाजिक व्यक्ति के नाते रह सकता हूं और पारिवारिक दायित्व का भार वहन कर सकता हूं जबकि दर्शन की ओर मेरा अधिक लगाव है? क्या स्वामी जी और गुरुदेव का अनुकरण करने, वह सुख, वह शान्ति प्राप्त करने और उसी प्रकार तत्वमीमांसा और आध्यात्म के रहस्यों की गहराई में खोज करने का निर्णय नहीं किया है?

यदि मुझे स्वयं को अस्थिर सुखों, भावनाओं, जैविक आवश्यकताओं और इसी प्रकार की बातों के वश में ही रखना है तो निश्चित ही मैं अपने भविष्य को नष्ट कर लूंगा और अपने हितचिंतकों के लिए अपनी सहायता करना कठिन कर दूंगा। इसलिए मुझे सही परिप्रेक्ष्य में इन चीजों को समझना होगा और अपना मार्ग तय करना होगा। इस समय तक लगभग प्रातः काल का समय हो चुका था और मुझे मालूम नहीं कि समय कैसे बीत गया। अब मैं पूरी तरह से क्लान्त हो चुका था और मुझे पता भी नहीं लगा कि कब आँख लग गई। लगभग आठ बजे के समय सेवक ने मुझे जगाया तो मुझे सिरदर्द हो रहा था और कार्यालय जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। कार्यालय में चिट भेजने की व्यवस्था मैंने कर दी और घर में ही पड़ा रहा। विनोदिनी को भी मैंने सूचित कर दिया कि नित्य के समान टेनिस खेलने नहीं जा रहा हूं, क्योंकि मेरी तबियत कुछ खराब है। सुबह का सारा समय मैंने आराम करने में ही बिता दिया और भोजन करके सो गया। दोपहर बीत चुकने पर विश्राम करने और नींद होने से मुझे अच्छा लग रहा था। बरामदे में बैठकर मैं चाय ले रहा था, कि प्रांगण में विनोदिनी को प्रवेश करते हुए मैंने देखा। वह चुस्त और स्वाभाविक लग रही थीं और मुस्करा रही थीं। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा,—"आपका स्वास्थ्य

ठीक नहीं है क्या? आप थके से लग रहे हैं, लगता है कि आप जरा भी नहीं सोये हैं।" उन्हें बैठने के लिए कह कर मैंने उनके लिए चाय रखवा दी और कहा "अब मैं बिलकुल ठीक हूं और कोई शिकायत नहीं है। मैं कल रात सो नहीं सका था। इसलिए आज कार्यालय नहीं गया।" विनोदिनी ने कहा,—"कहीं मैंने किसी प्रकार आपको नाराज तो नहीं कर दिया, कहीं मैं ही आपकी अस्वस्थता का कारण तो नहीं हूं? वास्तव में, मैंने तो निष्कपट मन से अपना मत प्रकट कर दिया था और मैं चाहती हूं कि जिस भावना से मैंने वास्तविकता बता दी थी उसे आप समझ लें। मेरा अभिप्राय इस बात से था कि हमारे किसी प्रकार के रिश्ते में बंधने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह से जान लें और समझ लें। अनुभवहीन भावनाशील युवाओं के समान यह कहने में कोई अर्थ नहीं कि हम दोनों परस्पर प्रेम करते हैं और एक साथ जीवन बिताना चाहते हैं। मैं अपने जीवन का मार्ग निर्धारित कर चुकी हूं और मैं जानती हूं कि मेरे पास क्या होना चाहिए और किस बात से मुझे सुख मिलेगा। जीवन के बारे में आपके विचारों का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। हम मित्र रहे हैं और आपका सहवास मुझे सुखदायक और अभीष्ट रहा है। यदि हम रिश्ते को किसी और निकट के रिश्ते में बदलना चाहते हैं तो क्या आपको नहीं लगता कि हमें परस्पर अच्छी तरह समझ लेना चाहिए ताकि हमारे शेष जीवन में निराशा, विफलता और दुख से दूर रहा जा सके। चलिए, सारी औपचारिकताएं ताक में रखकर हम सोचते हैं। यदि मझे आपको पति के रूप में और आपको मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करना हो तो हम दोनों को ही एक दूसरे की पसंद और नापसंद, आकांक्षाएं और अभिलाषाएं खामियाँ और दोष, इच्छाएं और कामनाएं, परितुष्टियाँ और संतुष्टियां, जान लेनी चाहिएं जिसके बिना हमारे जीवन में सुख और शांति आ सकती है। मैं अपने माता-पिता की इकलौती संतान हूं, जिनके पास वे जितना सामान्यतः खर्च कर सकते हैं उससे अधिक धन है, बड़े ऐश आराम में पली हूं और बिगड़ने की सीमा तक मेरा लाड़-प्यार हुआ है। मैं प्रबल इच्छा रखती हूं और मुझे मुक्त विलासमय जीवन में रुचि उत्पन्न हो गई है। मैं नहीं चाहती कि धरती पर की किसी भी वस्तु के लिए मैं अपने माता-पिता और घर को छोड़ दूं। किसी प्रकार का त्याग करने में मैं समर्थ नहीं हूं और न ही मैं चाहती हूं कि प्रेम अथवा विवाहित जीवन के लिये भी कोई त्याग करूं। विवाह होने के पश्चात् भी मैं नहीं चाहूंगी कि मुझे अधीनस्थ रहना पड़े और अपने पति से भी क्यों न हो, मुझे गौण होना पड़े। मुझमें अपने लिए कोई हीनभाव नहीं है और न मैं अपने जीवन में किसी का प्रभुत्व स्वीकार करुंगी। मैं आपके बारे में अधिक नहीं जानती फिर भी जो कुछ मैंने देखा है उसके आधार पर, मैं सोचती हूं कि आपका स्वभाव बड़ा ही भिन्न है। आपकी सारी संस्कृति, शिक्षा और शिष्ट आचरण के बावजूद आप स्वतंत्र

प्रकृति के व्यक्ति हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी इच्छा-शक्ति बड़ी प्रबल है और अपने गुण और योग्यताओं से आप अवगत हैं। आप स्वतंत्र चिन्तन वाले व्यक्ति हैं और आक्रामक हैं और साहसी भी। अपनी योग्यताओं के लिए आपको अभिमान सा है और अपने पौरुष का बोध भी। कभी-कभी मुझे भय होता है कि अपनी बौद्धिक तृष्णाओं और महत्त्वाकांक्षाओं के लिए आप कुछ भी कर सकते हैं। अपने लक्ष्य और ध्येय के अनुसन्धान में आप किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की चिन्ता नहीं करेंगे फिर चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों, आपके चरित्र के बारे में मेरी यह धारणा है। अपने बारे में आपको बता चुकी हूं और आपके बारे में और अपनी वर्तमान मित्रता को किसी दूसरी बात में बदल देना हम दोनों के हित में होगा अथवा नहीं इस बारे में निर्णय करने का काम अब आपका है। आपको मैं विश्वास दिला दूं कि आपके लिए मुझे सच्ची मित्रता है और मित्र के रूप में मैं आपका आदर करती हूं।"

विनोदिनी ने जिस प्रकार अपने को प्रस्तुत किया वह मुझे अच्छा लगा। जिस प्रकार उन्होंने आत्मविश्लेषण किया और जो कुछ वह सोचती थीं उसे स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया, उसके लिए जरूर मैंने उसकी प्रशंसा की। मैंने सोचा कि यदि हर व्यक्ति इतना स्पष्ट और सत्यवादी हो तो भ्रान्तधारणा, संशय और उसके फल-स्वरूप निराशा बहुत कम रह जाएगी। प्रामाणिक चिन्तन और सत्य को स्वीकार करने की कमी ही संसार में दुःखों का कारण बनी हुई है। मैंने कहा,—"विनोदिनी जी, कल रात मैंने इस समस्या पर बड़ा गहरा विचार किया है और मैं इस निष्कर्ष तक पहुंचा हूं कि पारिवारिक दायित्व लेने की स्थिति में मैं नहीं हूं, क्योंकि साधु अथवा संत कहे जाने वाले कुछ व्यक्ति जिस शांति और सुख का आनन्द ले रहे हैं उसके रहस्य को सुलझाने का निर्णय मैंने कर लिया है। जिन्हें जीवन की वास्तविकतायें कहा जाता है वे क्या हैं यह समझ लेने का निर्णय भी मैंने कर लिया है। सम्भव है कि आप मेरे कथन का तात्पर्य न समझें किन्तु अपने ध्येय के अनुसंधान में विवाह अथवा पारिवारिक जीवन सहायक होने के स्थान पर निश्चित रूप से, मेरे लिए बाधक ही बनेगा। इसलिए मैंने तय कर लिया है कि मैं अविवाहित बना रहूंगा।" मैंने विनोदिनी को गुरुदेव और स्वामी जी के सम्पर्क के बारे में और गुरुदेव के सान्निध्य में घटित विविध घटनाओं के बारे में भी संक्षेप में बता दिया। मैंने कहा, 'सम्पत्ति, सम्पन्नता और पद मेरे इतने सारे मित्र, सम्बन्धी और परिचितों को शान्ति और सुख प्रदान करने में सफल नहीं हुए। मुझे अच्छी तरह पता है कि सुख और शान्ति इस प्रकार नहीं मिला करती। बड़ी निराशा और व्याकुलता की बात यह थी कि मुझे प्रतीत हुआ कि सभी स्थान पर संघर्ष, विफलता, सुख का नाश और शान्ति का अभाव है। इसीलिए मैंने तय कर लिया है कि किसी स्थापित शैली का अनुसरण नहीं करूंगा बल्कि किसी प्रकार की जटिलताएं निर्माण किए बिना स्वाभाविक रूप से

जीवन यापन करता रहूंगा। मैं नहीं जानता कि इसके परिणाम क्या होंगे लेकिन आज यही लगता है कि मेरे पिता, बन्धु, अथवा शेष सम्बन्धियों का जैसा जीवन रहा है उससे एक दम भिन्न जीवन मेरा रहेगा। इंद्रियों, अहंकार अथवा मन आदि के क्षण-भंगुर सुखों से अधिक शान्ति और सुख का रहस्य जान लेने में मेरी अधिक रुचि है। जब तक पीछे चलने के लिए कोई मूर्त वस्तु मैं नहीं पा लेता, कोई विश्वासनीय मार्ग मुझे नहीं मिलता तब तक केवल संक्रमण काल के रूप में मैं अपनी इस जीवनवृत्ति को चला रहा हूं। युक्तिसंगत विचारणा और बौद्धिक समाधान प्राप्त करने में मेरा विश्वास है। प्रामाणिकता से कहना हो तो विवाह और पारिवारिक सुख की कमी भी मेरे लक्ष्य और ध्येय नहीं हो सकते। मेरी बुद्धि और युक्तिसंगत विचारण पर आपके आकर्षक और मधुर शिष्टाचार हावी हो गए थे। यदि मैं यह कह सकूं, तो मैं एक आंधी में भटकने लगा था और विचार करने के लिए समय ही नहीं था। अपना सन्तुलन मैं खो बैठा था किन्तु सौभाग्य से किसी भगवान के भेजे हुए अच्छे मित्र के समान आप मेरा उद्धार करने चली आईं और संभावित दुर्गति से आपने मुझे बचा लिया। आपके रूप में एक महान् मित्र मुझे मिला है। मैं आपका ऋण नहीं चुका सकता। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे क्षमा कर दें और कल दोपहर वाली घटना भूल जाएं। यदि सम्भव हो तो आगे के जीवन में हम मित्र बने रहेंगे।"

विनोदिनी मुस्कराई और अपने हाथ आगे बढ़ाये। उसके कोमल हाथ मैंने अपने हाथ में लिए और उन्हें मित्र के समान दबाया। सायंकाल काफी समय तक वह मेरे साथ रहीं और जब मैंने उन्हें वचन दिया कि उन्हें क्लब ले जाने के लिए मैं उनके निवास स्थान पर आऊंगा तभी वे मेरे घर से चलीं।

तीसरा प्रकरण

दिन बीत रहे थे, मुझे दिल्ली में रहे दो वर्ष से अधिक समय बीत चुका था। मैं और विनोदिनी अब अच्छे और पुराने साथी बन गए थे। अवकाश का अधिकांश समय मैं गुरुदेव द्वारा बतायी बातें करने अथवा उनका अभ्यास करने में व्यतीत कर रहा था। चिंतन और उसी प्रकार अवलोकन की प्रक्रिया के अच्छे परिणाम प्राप्त हो रहे थे और मुझे निश्चलता और शांति का अनुभव हो रहा था। विचार और उससे जनित कर्म का अवलोकन न केवल मेरी आदत बल्कि दूसरा स्वभाव ही बन चुका था। वह बड़ा मनो-

रम था और उसमें मुझे प्रसन्नता और आनन्द मिलता था। इस अवधि में मुझे अपने में एक महान् परिवर्तन--शारीरिक नहीं तो मनोदशात्मक—की प्रतीति हो रही थी।

इतनी प्रमुखता से मुझ में रहने वाली पढ़ने और बातें करने, घुलने मिलने की इच्छा अब मुझमें नहीं रही। उत्तम स्वास्थ्य और शक्ति से संपन्न रहने पर भी, दूर तक भ्रमण करते समय और घर पर भी मैं अकेले रहना ही चाहने लगा था। मुझे अनुभव हुआ कि मेरे संपूर्ण शरीर में एक प्रकार का रूपान्तरण होने लगा है। मेरी आन्तरिक इन्द्रियां कुछ तेजी से विकसित हो रहा थीं। अधिक स्पष्ट रूप से कहो तो देखने, सुनने, सूंघने और स्पर्श करने की शक्ति बड़ी अच्छी तरह विकसित हो चुकी थी। जब मैं अकेला रहता, तो मुझे दर्शन होते जो दिवा स्वप्न नहीं थे, यह मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूं। मैं विविध घटनाएं, कुछ दिव्य जीव और व्यक्तित्व देखा करता जो इस धरातल के नहीं थे। विविध ध्वनियाँ; भी मैं सुना करता, घंटियों की ध्वनियां संगीत, गायन और विभिन्न उपकरणों की ध्वनियां मैं विविध परिमलों और मधुर सुगंध को — कक्ष की विविध वस्तुओं अथवा आस-पास की वस्तुओं से आने वाली नहीं— सूंघा करता। प्रारम्भ में मुझे लगा कि यह इन्द्रजाल है और मुझे भ्रम हो जाता। किन्तु कुछ समय पश्चात् मैं उसका आदी बन गया। ये सब चीजें एक प्रकार से मुझे शांति और आनन्द प्रदान करतीं। इनमें से किसी से मुझे कोई कष्ट नहीं था और जब मैं अकेला होता, मुझे इस प्रकार के अनुभव हुआ करते। इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं था और न मैं कोई सोच ही सका। मुझे लगा कि यह सब यौगिक अभ्यास के कारण गुरुदेव द्वारा बतायी प्रक्रिया का अनुसरण करने से होता होगा। मैंने पढ़ रखा था कि जो प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं अथवा कहना चाहिए कि अध्यात्मशास्त्र में प्रगति करते हैं उन्हें इस प्रकार के अनुभव होते हैं। मेरी स्वतः की प्रगति का आकलन करने का कोई मार्ग था नहीं और मैं उस ओर से एक प्रकार से उदासीन ही था। मुझे गुरुदेव ने जो कुछ करने के लिए कहा था उसे मैं तत्परतापूर्वक कर रहा था। कुछ भी हो, मैंने तय कर रखा था कि मैं अपना अभ्यास बड़े उत्साह और क्षमता के साथ करता रहूंगा क्योंकि सेवा कार्य छोड़ कर मुझे अन्य काम नहीं था और मन को व्यथित करने वाला कोई कारण नहीं था। मैंने सोचा कि इस मार्ग के किसी अच्छे जानकार व्यक्ति से मिल कर इन सारी बातों के बारे में और जो कुछ मुझे हो रहा था उसके बारे मे चर्चा कर लूं। अफसरशाही के बिलकुल भिन्न वातावरण में रहने के कारण मैं ऐसे किसी व्यक्ति से न मिल सका जिसे मैं इस मार्ग में अधिकारी व्यक्ति मान लेता। भिन्न-भिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, समाजों और विभिन्न मतों का समर्थन करने वाले कुछ लोग थे किन्तु वे सब अपनी विचार प्रणाली का ही समर्थन करते थे और विभिन्न अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिखित पुस्तकों और भिन्न-भिन्न वचनों का ही उदाहरण देते। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि उनमें से हर व्यक्ति यह चाहता था कि जिज्ञासु व्यक्ति

उसी के धर्म में चले आयें और यह सिद्ध करने की उसकी इच्छा थी कि केवल वह, उसका गुरु, उसकी पुस्तक और उसके निष्कर्ष ही सही हैं और संसार की शेष बातें या तो गलत हैं या उन्हें गलत मार्ग दर्शन मिला है। ऐसे व्यक्तियों का मेरे लिए कोई उपयोग नहीं था जहां पर मुक्त चिंतन की बात तो न समझी जा सकती थी और न सोची जा सकती थी। वे नहीं समझ पाते कि कोई व्यक्ति अतीत की पृष्ठ भूमि और भविष्य की योजना के सिवा रह सकता है। उन्हें यह जानने की भी कोई चिन्ता नहीं थी कि अतीत से, शैलियों, पुस्तकों, मतान्तरों, सिद्धान्तों, वचनों, धर्मों, श्रेणियों, जातियों और पथों से मुक्त रहना क्या होता है। किसी बन्धन से रहित, सम्पूर्ण मानसिक स्वातन्त्र्य की कोई जानकारी उन्हें नहीं थी। वे यही मानते थे कि गुरु के सिवा अथवा किसी विशेष धर्म का अनुकरण किए बिना कोई व्यक्ति तत्वमीमाँसा के मार्ग में जरा भी प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए अपनी कठिनाई मैं उन्हें नहीं समझा सका और न मुझे उनकी सहायता की आवश्यकता ही थी। किन्तु मैं इस प्रकार की मानसिक अवस्था में था कि मुझे समझ लेने वाला कोई व्यक्ति यदि मुझ से चर्चा करता तो मुझे बड़ा अच्छा लगता। इस अवधि में मुझे बहुत बार गुरुदेव की याद आई क्योंकि मैं चाहता था कि अपने अनुभव उन्हें बता दूं और सदैव उपलब्ध रहने वाला उनका मार्ग दर्शन प्राप्त करूं। शनिवार की सुबह थी और अवकाश का दिन था। मैं टेनिस खेल कर लौटा था और पूरे दिन कुछ भी काम नहीं था। इसलिए मैंने सोचा कि आराम कर लूं और पूर्ण विश्राम करूं। मैं अपने वस्त्र बदल ही चुका था कि टेलिफोन की आवाज सुनाई पड़ी।

मेरे सेवक ने आकर कहा कि श्री गुप्ता बोल रहे हैं। मुझे कुछ आश्चर्य सा लगा और मैंने टेलिफोन उठाया। श्री गुप्ता पूछ रहे थे,—"कहीं बाजार जा रहे हैं क्या, अभी किसी से मिलने तो नहीं जाना है?" जब मैंने उन्हें कहा कि कोई काम नहीं है तो उन्होंने कहा कि आध घंटे के अन्दर वे सब लोग मेरे निवास स्थान पर आ रहे हैं। मैंने उन्हें पूछा कि वे कोई निश्चित कार्यक्रम बना कर आ रहे हैं अथवा सहज ही, तो वे बोले कि कोई विशेष बात नहीं है, उन्हें किसी मित्र से निमन्त्रण मिला है और चाहते हैं कि मैं भी उनके साथ चलूं। मैंने कहा,—"आपके पधारने से मुझे बड़ी खुशी होगी। आज कहीं बाहर जाने की इच्छा नहीं हो रही है और मैंने तय किया है कि पूर्ण विश्राम करूंगा। आज अवकाश का दिन होने से यदि आप सब लोग भोजन करने रुकते हैं, तो दोपहर के पश्चात् आप जहाँ भी जाना चाहें, मैं आपके साथ चला चलूंगा।" श्री गुप्ता ने कहा यह भेंट होने पर करेंगे। मैंने सेवक से कह दिया कि वह गुप्ता परिवार के लिए चाय तैयार रखे और संकेत कर दिया कि वे भोजन के लिए भी रुक सकते हैं;

लगभग आध घंटे के अन्दर ही मैंने देखा कि श्री गुप्ता की आलीशान कार

मेरे प्रांगण में प्रवेश कर रही है । मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि गुप्ता दंपत्ति और विनोदिनी ने भी भारतीय वेषभूषा पहन रखी है जैसे वे किसी पुराने हिन्दु परिवार अथवा किसी धार्मिक आयोजन में भाग लेने जा रहे हों ।

अन्दर कमरे में बैठने की बजाय वे लोग बरामदे में ही आराम से बैठ गए । मैंने विनोदिनी से पूछा, – "कोई खास बात है ? आप सब लोग कहाँ जाने के लिए प्रस्तुत हैं ? किसी आयोजन में भाग लेने जा रहे हैं अथवा किसी मन्दिर में ?" श्री गुप्ता ने कहा, "रायबहादुर हीरालाल यहां के प्रसिद्ध उद्योगपति हैं और मेरे आत्मीयमित्र हैं । उन्होंने किसी साधु पुरुष से मिलने के लिए हम सबको अपने घर आमंत्रित किया है । वे साधु पुरुष उनके गुरू हैं और कहा जाता है कि उनके पास असामान्य आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं । वैयक्तिक रूप से मैं इन शक्तियों में विश्वास नहीं करता और साधु संत पुरुषों की परवाह नहीं करता किन्तु मेरी पत्नी का झुकाव इस प्रकार की बातों की ओर है और ऐसे लोगों से मिलने की हमेशा ही उनकी इच्छा रहती है । वास्तव में, निमन्त्रण इन्होंने ही स्वीकार किया है, मुझे और विनोदिनी को उनकी इच्छा का सम्मान करना पड़ा ।' विनोदिनी ने कहा, – "इस व्यक्ति को और उसकी आध्यात्मिक शक्तियों के चमत्कारों को देखने के लिये मैं भी उत्सुक हूं । अध्यात्म शास्त्र के मार्ग पर चलने वाले आप भी हैं ऐसा माना जाता है और इस प्रकार के व्यक्तियों से आप मिल चुके हैं । इसलिए आप साथ में रहें तो हमारी प्रसन्नता और भी बढ़ेगी । इसी कारण हम लोग यहां पर आए हैं और हमने आपको साथ में ले जाने का निर्णय कर लिया है ।"

उस स्थान पर जाने के लिए मेरे मन में कुछ हिचकिचाहट थी इसलिए मैंने कह दिया कि आमंत्रण के बिना आपके साथ चलना मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता । श्री गुप्ता ने मूल निमन्त्रण दिखाते हुए कहा, – "मित्र मडली के साथ, सपरिवार आने का हमें निमन्त्रण है ।" फिर भी मैंने उन्हें कह दिया कि मुझे वह साधु अथवा उसके चमत्कार देखने की कोई उत्सुकता नहीं इसलिए यही अच्छा होगा कि मैं घर पर रहकर ही विश्राम करूं । विनोदिनी और उसकी माता जी ने इतना अधिक आग्रह किया कि मुझे आखिर उनके साथ चलने की स्वीकृति देनी पड़ी । चायपान और नाशते के तुरन्त बाद हम रायबहादुर हीरालाल की कोठी पर जाने के लिए चल पड़े । लगभग दस बजे हम उनकी आलीशान कोठी पर पहुंच गये ।

प्रांगण में कई कारें खड़ी थीं और बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हो चुके थे । विशाल दर्शन कक्ष में अतिथियों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था और कक्ष पूर्णतः भर गया था । द्वार के समीप ही सपत्नीक रायबहादुर अभ्यागतों का स्वागत कर रहे थे । उन्होंने बड़ी आत्मीयता से हमारा स्वागत किया और मुझे देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई । श्रीमती हीरालाल विनोदिनी और श्रीमती गुप्ता को अपने साथ ले गईं । श्री राय-

बहादुर ने हमें कक्ष में ले जाकर अग्रिम पंक्ति में बैठने के लिए स्थान दिया । साधु अथवा हमारे मेजबान के गुरु, उनके लिए विशेष रूप से बनाए गये मंच पर, मखमली आसन पर बैठे हुए थे जिस पर सोने की कशीदाकारी किए गए रेशमी वस्त्र का आच्छादन था । पीछे टिकने के लिए भी उसी प्रकार के वस्त्र का गद्दा रखा हुआ था । साधु का व्यक्तित्व रौबदार था और उन्होंने रेशमी कफनी पहन रखी थी । गौर वर्ण, रूपवान् मुकम्मल और यथायोग्य आकृति उनकी थी । वे लगभग चालीस वर्ष की आयु के प्रतीत हो रहे थे । उन्होंने दाढी बनाई थी और उनकी आंखें चमकीली थीं । जिस समय हमने प्रवेश किया, उस समय वे अपने आसपास के लोगों से बातें कर रहे थे और उन्होंने हमारी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । वे जब कुछ खाली हुए तो रायबहादुर ने उस अवसर पर सपरिवार श्री गुप्ता का और मेरा भी परिचय उन्हें करा दिया ।

जैसे ही उन्होंने मुझे देखा, वे चौंक पड़े और मैं देख सकता था कि वे कुछ हैरान थे । उन्होंने पुनः मुझे देखा, वे हंसे और अपने स्थान से उठ गये । उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और मंच पर अपने निकट बैठने के लिए कहा । सब लोगों के साथ मुझे भी इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ । मुझे लगा कि गलती से उन्होंने अपने किसी अन्य परिचित के लिए मुझे समझ लिया है । श्री गुप्ता और रायबहादुर भी हैरान थे और वे समझ नहीं पा रहे थे कि इस अवसर पर क्या कहें । साधु हंस पड़े और उन्होंने मुझे पुनः अपने साथ मच पर बैठने के लिए कहा । मैंने अति आदर के साथ अस्वीकार कर दिया । श्री रायबहादुर ने यह बताने का प्रयास किया कि मैं उनका मित्र हूं किन्तु साधु ने कहा,– "कृपया इस सज्जन के विषय में कुछ भी गताने का कष्ट आप न करें । इनके बारे में मैं बहुत कुछ जानता हूं जिसे आप नहीं जानते हैं । कदाचित् आप नहीं जानते कि ये कौन है ? ये उन व्यक्तियों में से हैं जिन्हें मेरे साथ बैठने का अधिकार है", इतना कहकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और अपने पास बिठा लिया । किसी और संशय के निर्माण होने से बचने के लिए और किसी और स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा किए बिना ही प्रस्तावित आसन पर मैं बैठ गया । उनके दर्शन के लिए लोग चले आ रहे थे और वे उन्हें उनके जैसे लोगों के समान आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे । वे बड़े सहज भाव में थे और मुझे लगा कि इस प्रकार के सत्संगों और आयोजनों से वे अभ्यस्त हैं । लोगों ने अपने जीवन और कष्टों के बारे में उन्हें कई प्रश्न किये और सभी प्रश्नों के सहज भाव में, किसी संशय के बिना उन्होंने उत्तर दिये । लोगों की कठिनाइयां दूर करने के कई मार्ग और साधन उन्होंने लोगों को बताये । जिस प्रकार से उन्होंने लोगों का समाधान किया उसमें मुझे कोई नवीनता अथवा मौलिकता नहीं थी । वे लोगों से हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में बोल रहे थे । दोनों भाषाएं वे धाराप्रवाह रूप में बोल रहे थे । लगभग बारह बजे वे अपने

स्थान से उठ गये और लोगों से उन्होंने कहा कि उन्हें कुछ थकान लग रही है इसलिए उठने की अनुज्ञा मिले। उन्होंने कहा कि वे कुछ और दिन तक दिल्ली में रुकने वाले हैं और जिन लोगों को उनसे मिलने की इच्छा है वे प्रतिदिन प्रातःकाल के समय उनसे मिल सकते हैं। इन शब्दों के साथ वे कक्ष के बाहर चले आये और अपने पीछे चले आने के लिए उन्होंने मुझे कहा। उत्सुकतावश, इस व्यक्ति के बारे में कुछ अधिक जानने की इच्छा से मैंने उनका अनुकरण किया। प्रथम तल पर दो कमरों का पूरा प्रकोष्ट साधु के रहने के लिये दिया गया था।

उत्सुक मुद्रा में गुप्ता दम्पत्ति, विनोदिनी और रायबहादुर मेरे पीछे-पीछे ऊपर आ गये। सारे लोगों का पीछे चले आना साधु को विशेष अच्छा नहीं लगा क्योंकि मुझे बाद में मालूम पड़ा कि वे केवल मुझसे ही बात करना चाहते थे। जब हम सब लोग प्रथम तल के दर्शन कक्ष में आराम से बैठ गये तो रायबहादुर ने सेवक से कह दिया कि वह मिठाइयां ले आए। अतिथियों के लिए मिठाइयां बनी रखी थीं। साधु ने केवल फल ग्रहण किये और हम लोगों ने मिठाइयाँ और अन्य सुस्वादु पदार्थों का बड़े चाव से रसास्वादन किया। चायपान के पश्चात् कुछ रूखेपन से ही साधु ने राय-बहादुर से कहा कि वे केवल मुझसे ही एकान्त में कुछ संभाषण करना चाहते हैं। इन शब्दों के साथ ही वे मुझे दूसरे कमरे में ले गये। वह कमरा भी बड़ा था और सुन्दर ढंग से सजाया गया था। द्वार बन्द कर लेने के लिये मुझसे कहकर उन्होंने मुझे बैठने के लिए स्थान दिया और वे खुद दीवान पर आराम से बैठने गये। वे इस सब समय मुस्करा रहे थे और प्रसन्न मुद्रा में थे। इस सारी बात का अर्थ जान लेने के लिए मैं उत्सुक था और वे मुझसे एकान्त में क्या कहने वाले हैं इसके बारे में भी मेरे मन में उत्सुकता थी। मुझे यह भी लगा कि श्री गुप्ता, उनका परिवार और रायबहादुर मुझसे भी अधिक उत्सुक होंगे कि एकान्त में साधु मुझसे क्या कहने वाले हैं। एकान्त में होते ही साधु ने मेरी आंखों में देखकर कहा,—"तुमने विस्मय जनक प्रगति कर ली है और बड़ी खुशी है कि तुम्हारे प्रयासों को बड़ी सफलता मिल रही है।" मेरे उत्तर देने से पूर्व ही उन्होंने मुझे पूछा कि पिछली बार गुरुदेव से मुलाकात कब हुई थी? प्रश्न का सीधा उत्तर देने के स्थान पर मैंने पूछ लिया कि आप गुरुदेव को कैसे जानते हैं? उनके साथ मेरे परिचय का ज्ञान आपको कैसे है? उन्होंने हंस कर कहा,—"यह बड़ी आसान बात है। महान् गुरुदेव ने तुम्हारे अन्दर जो प्रचण्ड परिवर्तन करा दिया है उसे मैं देख रहा हूं। तुम बड़े सौभाग्यशाली हो अथवा ऐसा कहूं कि तुम उन इने गिने व्यक्तियों में से हो जिन्हें गुरुदेव के समान महान पुरुषों का अनुग्रह प्राप्त हुआ है। किसी भी सौभाग्यशाली व्यक्ति से अधिक, तुम सबसे अच्छे व्यक्ति के अधिकार में हो। इसलिए अपने जीवन में तुम्हें किसी बात के लिए चिंता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि गुरुदेव जैसे महान अधिकारी पुरुष के द्वारा तुम्हारा

जीवन ढाला जा रहा है। हां, तुम्हें गुरुदेव में अटूट श्रद्धा होनी चाहिए और तुम्हें सब कुछ उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए। वे विचारमग्न हो गए। किन्तु तुरन्त हस पड़े और उन्होंने कहा, "ओह तुम गुरुदेव के चंगुल से नहीं भाग सकते क्योंकि किन्हीं ऐसे कारणों से, जो केवल उन्हीं को ज्ञात हैं, उन्होंने तय कर रखा है कि तुम्हें महान् बनाना है।" जो कुछ साधु ने कहा, उसे सुनकर मैं दंग रह गया और मैंने पूछा क्या मुझे निकट भविष्य में उनसे मिलने का अवसर प्राप्त होगा? उन्होंने कहा, "दो दिन के अन्दर ही तुम्हें उनके रहने के स्थान का पता लग जाएगा और वे शीघ्र ही तुमसे मिलने वाले हैं। मैं समझ रहा हूं कि तुम उनसे भेंट करने के लिए उत्सुक हो और उन्हें अपने अनुभव बताकर मार्ग दर्शन प्राप्त करना चाहते हो। अधिक विस्तार में न जाते हुऐ मैं यही कहना चाहूंगा कि ये अनुभव इस प्रकार के मार्ग पर चलने वाले लोगों के लिए साधारण सी बात है और इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की अनिष्ट शका तुम्हें नहीं होना चाहिए। तुम्हें केवल गुरुदेव के आदेशों का पालन भर करना है शेष सब उन्हीं पर छोड़ दो। मुझे नहीं लगता कि तुम्हें मुझसे कुछ अधिक पूछना शेष है और जब तुम्हारी गुरुदेव से भेंट होगी उस समय वे तुम्हारी कठिनाईयाँ हल कर देंगे। उन्होंने अपना कथन समाप्त किया। मुझे उनसे कुछ नहीं पूछना था और कोई चर्चा करने की मनःस्थिति में मैं नहीं था इसलिए मैं उठ गया और कक्ष से बाहर निकलने से पूर्व उनके चरण स्पर्श करने का प्रयास मैंने किया किन्तु मेरा अलिंगन कर उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। इस व्यक्ति के व्यवहार से निश्चित ही मैं भ्रम में पड़ गया था और मैं उन्हें नहीं समझ सका। उनके आचरण, वस्त्र, रूप और जिस प्रकार से वे रायबहादुर के यहां रहते थे, इन बातों से मेरा यही मत बना था कि वे व्यावसायिक गुरु हैं। कोई सच्चे महात्मा नहीं हैं। किन्तु उन्होंने मेरे साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया और गुरुदेव के बारे में बातचीत की मेरे अभ्यास कार्य और गुरुदेव के साथ मेरे सम्बन्धों का उन्हें जैसा ज्ञान था और उन्होंने जो कुछ कहा इन सब बातों से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि वे सामान्य व्यक्ति नहीं हैं वरन् एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास न केवल आध्यात्मिक शक्तियां ही हैं बल्कि योगशास्त्र के मार्ग में उन्होंने बड़ी प्रगति कर ली है। मुझ पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा था किन्तु मुझे उन्होंने विश्वास दिलाया था कि शीघ्र ही गुरुदेव के साथ मेरी भेंट होने वाली है इसलिए मैंने सोचा कि उनके बारे में मैं गुरुदेव से पूछ लूंगा।

जब मैं बाहर कक्ष में आया, तो मैंने देखा कि गुप्ता परिवार और रायबहादुर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। साधु ने मुझसे क्या कहा था यह जानने के लिए वे उत्सुक थे किन्तु जब मैंने उन्हें बताया कि कोई खास बात नहीं थी तो वे निराश हो गए। उनकी मुद्रा से मैं देख सकता था कि वे मुझ पर अविश्वास कर रहे हैं। विनोदिनी ने कहा, —"यदि कोई गोपनीय बात हो तो आप न बताएं किन्तु हम विश्वास नहीं

कर पा रहे हैं कि केवल सहज संभाषण के लिए ही वे आपको उस कक्ष में ले गए और द्वारा बंद कर लिये। मैंने कहा कि आपको इनके तरीके नहीं मालूम, ये लोग बड़े सनकी होते हैं। श्री गुप्ता ने कहा, —"हमें इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहना किन्तु माधव जी, हमें यह देखकर खुशी है कि उन्होंने आप को विश्वास में लिया है। जिस दिन आपकी इच्छा होगी, मुझे विश्वास है कि आप स्वयं ही हमें बता देंगे कि साधु ने आप से क्या कहा था।" दोपहर के समय हम रायबहादुर के यहाँ से निकले और श्री गुप्ता ने मार्ग में मुझे अपने निवास स्थान पर छोड़ दिया।

दूसरे दिन मुझे पिता जी का पत्र मिला, जो इस प्रकार था—

प्रिय माधव,

यह पत्र देखकर तुम्हें आश्चर्य होगा किन्तु तुम्हारी अनुपस्थिति में यहाँ पर जो कुछ हुआ था उसे तुम्हें बताने के लिए ही वास्तव में मैं यह पत्र लिख रहा हूं। अपने अन्य दोनों पुत्रों को लिखने के स्थान पर मैं विशेष रूप से तुम्हें ही यह पत्र लिख रहा हूं क्योंकि तुम गुरुदेव, मैं और तुम्हारी माँ के बीच जोड़ने वाली कड़ी के रूप में हो इसलिए तुम मुझे समझ लोगे। गतवर्ष, ठीक ठीक कहना हो तो तेरह मास पूर्व गुरुदेव अचानक अहमदनगर पधारे। उन्हें देखकर, तुम्हारी माँ को और मुझे अत्याधिक प्रसन्नता हुई, लगभग एक सप्ताह तक वे हमारे साथ रहे। किन्हीं अज्ञात कारणों से, वे केवल हम पर कृपा दृष्टि करने ही नहीं, तो हमें सारे बन्धनों से मुक्त करने के लिए, तात्पर्य यह है कि हमें पूर्ण रूप से मुक्ति दिलाने हेतु ही पधारे थे। उनके कृपा प्रसाद से हमें अनुभव प्राप्त हुए। जिन्हें व्यक्त करने के लिए शब्द बड़े ही अपर्याप्त हैं। उन्होंने हमें विविध 'दर्शन' दिए और जीवन के बारे में हमारा दृष्टिकोण न केवल परिवर्तन करा दिया किन्तु अनुभवों के द्वारा जीवन का ही उद्देश्य समझा दिया। उन्होंने कुछ बातों का अवलोकन और अभ्यास करने के लिए कहा ताकि शरीर और मन में एक प्रकार की संगति निर्माण हो। एक प्रकार की निर्विचार दशा प्राप्त करने के लिए, किसी मार्ग से मन को पर्याप्त रूप से मुक्त करने के लिए यह संगति होना निश्चित रूप से आवश्यक है ताकि विविध तथा नाना रूप के अनुभव मिलें, अथवा हों, और अपने सही परिप्रेक्ष्य में उन्हें समझा जा सके। अनुभवों के होने के लिए तत्पर अवलोकन और पूर्ण बोध की अवस्था में आवश्यक शर्तें हैं। गुरुदेव ने अपने आशीर्वादों, उपदेशों, चर्चाओं और मार्गदर्शन से हमारे अज्ञान का निरसन कर दिया और सत्य को समझ लेना हमारे लिए सम्भव बना दिया। मुझ पर और तुम्हारी माँ पर उनके अनन्त उपकार हैं और हमारे लिए वे ही गुरु, मार्ग दर्शक या ईश्वर हैं। इस बात पर बारह मास तक चुप बने रहने के लिए उन्होंने हमें कहा था, मैं सोचता हूं कि अहंकार अथवा अभिज्ञान की वृद्धि से बचने के लिए ही उन्होंने यह

कहा होगा। यह अवधि अब समाप्त हो चुकी है। इसलिए महान् गुरुदेव ने कितना कुछ हमारे लिए कर दिया है इससे तुम्हें अवगत कराने के लिए मैं इस अवसर से लाभ उठा रहा हूं। जो गलतियां हमने कर दी हैं अथवा हमने प्रामाणिकता से अपने गत जीवन के बारे में जो गलत दृष्टि अपनायी थी उसे हम दोनों ने ही समझ लिया है अर्थात इसका कारण अज्ञान ही था और उसका फल हम भोग चुके हैं। आखिर, जीवन के इस अन्तिम भाग में गुरुदेव की कृपा से हम सत्य को समझ गये हैं। यदि तुम न होते तो अपने जीवन में हम गुरुदेव से न मिल पाते। इसलिए हम पर तुम्हारे बड़े उपकार हैं और तुम हमारे पुत्र से फिर भी यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं। हमें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव के योग्य मार्ग दर्शन में तुम निश्चित ही सुखी होंगे, शान्ति प्राप्त करोगे, सत्य का साक्षात्कार करोगे, और तुम्हें उस अज्ञात की, जिसे ईश्वर कह सकते हैं, अनुभूति होगी।

अब, गुरुदेव के संरक्षण में, तुम्हारी द्रुत प्रगति और परम साक्षात्कार की कामना ही हमें रह गई है। तुम्हारी माँ की तबियत आजकल ठीक नहीं रहती और सोचता हूं कि हम दोनों ही अपनी यात्रा लगभग पूर्ण कर चुके हैं। शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ होने पर भी हम दोनों उत्तम मानसिक अवस्था में है। मृत्यु का हमें भय नहीं, केवल अपरिहार्य पाप के रूप में हम उसे नहीं मानते तो उसमें हमें बदल से अधिक रूपान्तरण का दर्शन हो रहा है। मृत्यु के समय, जो कुछ हमारे पास रहता है -- हमारा यश, नाम, घराने को प्रतिष्ठा, हमारे बाल बच्चे, बंधु बांधव, आदि, उसे खो देने के डर में से ही सामान्यतः मृत्यु भय निर्माण होता है। कुछ हेतु छुट जाते हैं। या पीछे रह जाते हैं, वासनाएं अधूरा रह जाती हैं, पूर्ण नहीं हो पातीं, इस कारण भी मृत्यु का भय निर्माण होता है। मृत्यु के उपरान्त हमें जो कुछ होने वाला है, उसके बारे में अज्ञान के कारण भी भय उत्पन्न होता है। किसी विशिष्ट समाज और व्यवस्था में किसी विशिष्ट जीवन पद्धति से जीने के हम आदी बन चुके होते हैं। इसलिए मृत्यु के पश्चात् को अज्ञान अवस्था से हमें भय रहता है। बिलकुल बचपन की अवस्था से जहाँ तक हमारी स्मृति को खींचा जा सकता है तभी से हम किन्हीं परिचित व्यक्ति अथवा वस्तुओं के साथ रहे हैं। मृत्यु हमें अकेले को ही आती है और हमारे सगे सम्बन्धी, मित्र, साथी और हमारी परिचित वस्तुएं पीछे छुट जाती हैं। इसलिए मृत्यु के पश्चात् अकेले रह जाने से हम डरते हैं।

गुरुदेव की कृपा से धन दौलत के प्रति आसक्ति का भाव हमें नहीं रहा है और संसार की किसी वस्तु के साथ हम स्वतः को नहीं जोड़ लेते। अब हमें कोई आदर्श, आकांक्षाएं, इच्छाएं और तृष्णाएं नहीं रहीं। उनके अनुग्रह से हमें अवस्था का अनुभव हुआ है जहाँ पर अतीत अथवा भविष्य का कोई विचार नहीं रहता, अतीत

की कोई स्मृति नहीं रहती । सम्पूर्ण रूप से एकमात्र रहने का अनुभव हम जानते हैं, हमें उनका अनुभव है । हम जानते हैं कि निश्चल मन क्या होता है जिसमें हर वस्तु विलीन हो जाती है, लुप्त होती है और किसी प्रकार का भय शेष नहीं रहता । इस अवस्था में आनन्द और सुख के सिवा कुछ नहीं रहता । महान् गुरुदेव की कृपा से यह सम्भव हो सका है ।

जहां तक देह की विधियों और कष्टों की बात है, तभी तक उनका अपरिहार्य उत्पात मूल्य रहता है जब तक अज्ञान कायम रहता है ।

तुम्हारे उत्तम स्वास्थ्य और प्रसन्न मनोवृत्ति की कामना में । तुम्हारी माता की ओर से तुम्हें प्रेमपूर्ण आशीर्वाद के साथ ।

तुम्हारा स्नेहासिक्त

पिताजी का पत्र मैंने कई बार पढ़ा । गुरुदेव की कृपा उन्हें प्राप्त हुई यह जानकर मुझे सुख हुआ । मैं नहीं जानता था कि इतनी बड़ी मात्रा में गुरुदेव की कृपा प्राप्त करने के लिए हमने क्या किया था । गुरुदेव से मिलने की मुझे बड़ी इच्छा थी किन्तु मुझे उनके रहने के स्थान के बारे में कुछ भी नहीं पता था । मैंने सोचा कि अवकाश प्राप्त कर मैं माता-पिता से मिलने घर चला जाऊं । कार्यालय में काम अधिक था इसलिए कुछ दिन तक मुझे अवकाश नहीं मिल सका । मुझे लगा कि मैं घर जाने के लिए आतुर हो रहा हूं ।

चौथा प्रकरण

इस प्रकार छह मास बीत गए और न मैं गुरुदेव से मिल सका और न घर ही जा पाया । दिसम्बर महीने के आखरी दिनों में मुझे पिताजी का एक पत्र मिला जिससे उन्होंने माताजी की अस्वस्थता के बारे में लिखा था । कार्यालय के काम का भार भी कुछ कम हो चुका था । इस अवसर का उपयोग कर मैंने एक मास के अवकास के लिए आवेदन कर दिया । स्वीकृति मिल गई । दूसरे ही दिन अहमदनगर जाने के लिए मैं दिल्ली से चल पड़ा ।

जब मैं अहमदनगर पहुंचा तो मैंने देखा कि हमारा सारा परिवार वहां पर इकट्ठा हो गया है । एक ही दिन पहले मेरे दोनों बंधु अपने परिवार के साथ पहुंचे थे । मेरे आने की प्रतीक्षा थी और सभी, विशेष रूप से मेरे माता-पिता मुझसे मिल-

कर खुश थे । पिताजी का स्वास्थ्य गिर चुका था और माताजी शय्याग्रस्त थीं । मैं देख सकता था कि उन की बीमारी से सभी चिन्तित थे । मेरे बन्धुओं ने प्रस्ताव किया कि बम्बई में अत्याधुनिक डाक्टरी सहायता मिल सकती है । इसलिए परामर्श और लाज के लिए माताजी को वहीं पर ले जाना चाहिए । तथापि बम्बई जाने के लिए माताजी की इच्छा नहीं थी । उन्होंने कहा कि बम्बई रहने की अपेक्षा वे घर में ही अधिक आराम से और शांतिपूर्वक हैं, किसी डाक्टरी इलाज का अब कोई उपयोग होने वाला नहीं । मेरे पिताजी व्यथित नहीं थे । स्वाभाविक रूप से, वे माताजी का पक्ष ले रहे थे और उन्हें सब सम्भव प्रोत्साहन दे रहे थे । आश्चर्य की बात थी कि मैं दोनों ही अक्षोभता और शांति प्राप्त कर चुके थे । उसमें से कोई भी चिन्तन नहीं था और वे इस सबको एक लक्ष्य मानकर चल रहे थे । अन्य सभी लोगों को फिर भी बड़ी चिंता थी ।

मैं माताजी के पास बैठा और उनके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर मैंने पूछा कि कैसा लग रहा है ? वे हल्की से मुस्कराईं और बोलीं, —"तुम जान गए होंगे कि अब मेरे दिन पूरे हो चुके हैं । हो सकता है कि कुछ ही दिनों में या कुछ घटों के अन्दर ही मुझे तुम सब को छोड़ना पड़े । गत वर्ष महान् गुरुदेव यहां आये थे और कुछ दिन तक हमारे साथ रहे थे, उनके आशीर्वाद हमारे पास हैं । अब मुझे किसी बात की चिंता नहीं रही और मैं सुखी हूं । उनकी कृपा से और केवल उनके अनुग्रह के कारण ही तुम्हारे पिता को और मुझे अल्प समय में वह सुख और शांति मिल चुकी है जिसे प्राप्त करने के लिए हम सारा जीवन संघर्ष करते रहते तो भी हमें वह नहीं मिल पाती । तुम लोगों को छोड़ जाते समय भी मुझे कोई दुख नहीं, किसी बात के लिए जीने की इच्छा नहीं, किसी बात की चिन्ता नहीं । जिस किसी वस्तु की इच्छा रहती है वह सभी गुरुदेव की कृपा से मुझे मिल चुका है । तुम पर उनका प्रेम है और जैसा कि प्रतीत होता है, उन्होंने तय कर रखा है कि वे तुम्हारे में से किसी महान् का निर्माण करने वाले हैं । इसलिए मुझे तुमसे यही कहना है कि किसी भी परिस्थिति में, जीवन की किसी दशा में तुम उन्हीं पर पूर्ण विश्वास रखो । वे ईश्वर तुल्य हैं और तुम्हारे जीवन का हेतु वे पूर्ण करेंगे । तुम्हारी मां के नाते मुझे तुमसे यही कहना है कि तुम गुरुदेव का अनुगमन करते रहो और उनमें पूर्ण विश्वास रखो । यदि तुम इतना कर सके तो शेष सब बातें वे पूरी कर लेंगे ।"

उन्होंने मुझे अपने निकट खींच लिया और मेरे दोनों गालों का चुम्बन कर मुझे आशीर्वाद दिया । पिताजी ने भी मुझे आशीर्वाद देकर कहा, —"तुम्हारी माँ ने जो कुछ कहा वह सत्य है और इसमें मैं पूर्णतः सहमत हूं ।" मेरे गालों पर आंसू लुढ़क रहे थे और मैं सिसक रहा था । पिताजी ने कहा, —"माधव, तुम अब छोटे

नहीं हो। हमने तुम्हें शिक्षा प्रदान की है और हम जो कुछ भी दे सकते थे, वह सब हमने तुम्हें दे दिया है। तुम हमारे प्रेम और विश्वास के योग्य साबित हुए हो और तुमने जीवन में उच्च पद भी प्राप्त कर लिया है। जैसाकि तुम्हारी मां ने कहा, गुरुदेव ने जीवन के बारे में हमारा दृष्टिकोण ही बदल दिया और परिणाम स्वरूप हमारी जीवन दृष्टि भी। सुख और शाँति की खोज में सब लोग वहां पर प्रयास कर रहे हैं जहां वह है ही नहीं और यही कारण है कि हम जीवन भर संघर्ष करते रहे हैं और सफलता मिलती नहीं। यह कहने में कोई अर्थ नहीं कि यदि सभी लोग काम करना छोड़ दें अथवा सारी परिवार व्यवस्था बिखर जाए तो संसार का क्या होगा। ऐसी कोई बात तुम्हारे साथ होने वाली नहीं है चाहे तुम उसके साथ रहो या अलग रहो, चाहे उसे अपना लो या उससे दूर रहो। हमें मतलब है अपनी वैयक्तिक शाँति और सुख से, जिसे सभी बातों से मुक्ति भी कहा जा सकता है। शब्द चाहे कुछ भी रहें, हमें तो उसके भावार्थ से मतलब है। जीवन का लक्ष्य और ध्येय है स्थायी और नित्य आनन्द की प्राप्ति, उसे ही किसी न किसी तरह मिलाना है। निश्चित ही सुस्थापित शैलियां उसे नहीं प्राप्त करा सकतीं और इस बारे में हमें विश्वास हो चुका है कि जिस किसी को देखा जा सकता है, स्पर्श किया जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है वह नाशवान् है और इसी कारण देह भी। जब तुम किसी वस्तु की नश्वरता मान लेते हो अथवा ऐसा कहें कि तुम्हें उसका विश्वास हो जाता है तो नश्वरता की तुलना में समय के तत्व का कोई महत्व नहीं रह जाता। नश्वरता की कोटि और उसमें लगने वाला समय उन्ही तत्वों पर निर्भर रहता है जो वस्तुओं का नियमन करते हैं। हम उनके साथ अपने को जोड़ लेते हैं, उन्हें महत्व देते हैं इसका कारण केवल अज्ञान ही है। यह एक बार समझ में आ गया तो प्रतीति हो जाती है और आसक्तियां गल जाती हैं। मुझे नहीं पता कि कितनी मात्रा में तुमने गुरुदेव से प्राप्त कर लिया है किन्तु मुझे विश्वास है कि हमारे चले जाने पर वे तुम्हें दुःखी नहीं होने देंगे। दीर्घ सहवास और अतीत की स्मृतियों के कारण तुम व्याकुल होंगे किन्तु समय सारे घाव भर देता है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारे सारे घाव भर जायेंगे। हम दोनों ही अब वृद्ध हो चुके हैं और अपनी सम्पूर्ण योग्यतानुसार, हमने तुम सब के प्रति अपने कर्त्तव्य पूर्ण कर लिए हैं जो कुछ अच्छी बात हम तुम्हारे लिए कर चुके हैं उसे याद रखो, शेष सारा भूल जाओ।" सायंकाल बीतने तक काफी समय मैं उनके साथ बैठा रहा। माताजी को कुछ औषधि देने के लिए मेरे भाई साहब आये। उनके साथ मैं भी बाहरी कक्ष में आया तो वे कहने लगे कि माताजी की अवस्था काफी चिंताजनक रही है और उनके ठीक होने की आशा बहुत कम है।

घर का वातावरण अवसन्न और चिंतापूर्ण था और हर व्यक्ति को आगे क्या होने वाला है इसका भान था। रात्रि भोजन के पश्चात् जब हम कक्ष में बैठे थे तो

किसी की भी बात करने की इच्छा नहीं हो रही थी। मेरे बन्धु रमाकान्त ने वातावरण की गंभीरता को कम करने के लिए मुझे पूछ लिया कि दिल्ली में कैसा चल रहा है, और मैं सामाजिक गतिविधि में भाग लेता हूं या नहीं? मैंने उनके प्रश्न का उत्तर दिया और फिर माताजी की बीमारी का विषय आ गया। भाभी जी ने कहा कि परामर्श के लिए बम्बई के विख्यात डाक्टरों को बुला लेना चाहिए। मेरे डाक्टर बंधु ने कहा कि उन्होंने पूर्व ही अपने डाक्टर मित्रों से टेलीफोन पर बात कर ली है और ऐसी आशा है कि कल सुबह तक वे लोग आ जाएंगे। किन्तु कुछ दुःखी होकर उन्होंने कहा,—"माताजी पर औषधियों का प्रभाव नहीं हो रहा है इसलिए मुझे कोई आशा नहीं है। फिर भी अपने डाक्टर मित्रों को मैंने बुला लिया है ताकि यदि किसी अन्य पद्धति से इलाज हो सकता हो तो देख लिया जाये। माताजी और उनकी मन की दशा देखकर विशेष रूप से इस बात का मुझे आश्चर्य हो रहा है कितने शांतिमय ढंग से वे इस संकट का मुकाबला कर रही हैं और पिताजी भी निरुत्साहित और उदास नहीं लग रहे।" रमाकान्त ने कहा,—"उन्हें गुरुदेव से मिलने का अवसर एक बार प्राप्त हो चुका है, लगता है कि इतने बड़े संकट में भी उन दोनों की शांति बनाये रखने का विस्मयकारी काम गुरुदेव ने कर दिया है।"

स्वाभाविक ही, हमारा विषय गुरुदेव पर आ गया। मेरी भाभी जी को उनसे मिलने का अवसर नहीं आया था इसलिए उन्हें देखने के लिए वे बड़ी उत्सुक थीं। उन सब ने गुरुदेव के बारे में मेरा मत पूछ लिया क्योंकि उनकी धारणा थी कि मैं गुरुदेव को निकट से जानता हूं। भाई साहब ने मुझे पूछा कि मेरी इतनी सारी शिक्षा और जीवन में प्रतिष्ठा के बावजूद ऐसी क्या बात है कि किसी मनुष्य की तान्त्रिक शक्तियों और आध्यात्मिक उपलब्धियों में मैं विश्वास करता हूं। मैंने उन्हें बताया कि मैं गुरुदेव के सम्बन्ध में बहुत कम जानता हूं और उनके सहवास में रहकर जो कुछ थोड़ा मैंने देखा उनके आधार पर उन्हें मैं नहीं समझ सका और उनकी सही योग्यता का आकलन मुझे नहीं हुआ। मेरे लिए तो वे एक महान् संत हैं और मेरे दृष्टिकोण से उन्हें पूर्णत्व की प्राप्ति हो चुकी है। हर वस्तु के बारे में उन्हें असाधारण ज्ञान है ऐसा प्रतीत होता है। वे बड़े ही सरल हैं, उत्साह, आनन्द से भरपूर हैं और उनके पास विशाल शक्तियां हैं जिनका उन्हें तनिक भी भान नहीं। वासनाएँ, लोभ और हर निन्दनीय वस्तु से वे ऊपर हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि संसार की धन दौलत से उन्हें कोई आसक्ति नहीं, कोई अभिलाषा अथवा इच्छा नहीं। मेरे दोनों भाई बोले कि ये सारी बातें बुद्धि को तोष देने वाली नहीं हैं और इस प्रकार के व्यक्ति का जीवन असंगत प्रतीत होता है। मैंने उन्हें कहा कि ये बातें आपको तभी पता लगेंगी जब आप खुद उनके संपर्क में आयेंगे। मैंने उनसे यह बात भी कह दी कि मैं जब गुरुदेव को देखता हूं तो मेरी बुद्धि, युक्ति और शिक्षा सब व्यर्थ हो जाती हैं और

मुझे लगता है कि उन्हें समझने के लिए मेरी बुद्धि बहुत छोटी है। मेरे बंधु की पत्नी ने कहा कि संत पुरुषों के बारे में ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिएं। ऐसे कितने ही संत पुरुषों के बारे में मैंने पुस्तकों में पढ़ रखा है और सुन रखा है जिनके पास ऐसी शक्तियां थीं जिनसे संसार चकित रह जाता था। मेरे बंधु ने कहा,—"अज्ञानी लोग ही ऐसे लोगों को अनावश्यक महत्व दिया करते हैं जो अपने आप को साधु संन्यासी और महात्मा बताया करते हैं। कोई मनुष्य देवी शक्तियाँ प्राप्त कर ले जिसे किसी सुशिक्षित बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा अथवा विज्ञान के आधार पर न समझा जा सके यह बात संभव नहीं है।" हम कुछ देर तक बातें करते रहे और जब हमने देखा कि माता-पिता सो गए तो हम भी विश्राम करने चले गए।

दूसरे दिन सुबह माता जी प्रसन्नचित दिखाई दीं और ऐसा प्रतीत होने लगा कि उनका स्वास्थ्य ठीक हो रहा है। मेरे भाई अपने मित्रों को लाने स्टेशन गये थे। चायपान होने तक वे बम्बई के दो सुविख्यात डाक्टर मित्रों के साथ आ गए। हम उन दोनों डाक्टरों को जानते थे और वे हमारे लिए कोई अजनबी नहीं थे। आने के तुरन्त पश्चात् उन्होंने माताजी की परीक्षा की और कहा कि प्रसन्न चित्त लगने के बावजूद उनकी शारीरिक दशा में कोई परिवर्तन नहीं है। हालांकि उन्होंने कहा कि मेरे बंधु के द्वारा प्रस्तावित चिकित्सा पद्धति ठीक है।

प्रात:काल से ही मैं माताजी के कमरे में बैठा हुआ था और उनकी मुद्रा से मैं देख सकता था कि उन्हें अच्छा लग रहा है। केवल डाक्टरों को छोड़, सभी लोगों को लग रहा था कि यदि इसी प्रकार प्रगति होती रही तो वे संकट से परे हो सकती हैं। पिता जी फिर भी विशेष आशावादी नहीं थे। उन्होंने आत्मीयता से डाक्टरों का स्वागत किया और उनसे खुलकर बात-चीत की। माता जी की तबियत में सुधार होने से और बम्बई से आये डाक्टरों की उपस्थिति के कारण घर का तनावपूर्ण वातावरण कुछ हल्का होने लगा था।

लगभग दोपहर के तीन जब बजे हम चाय ले रहे थे तो हमें बड़ा आश्चर्य हुआ जब हमने देखा कि बिना किसी पूर्व सूचना के ही गुरुदेव प्रवेश कर रहे हैं। अपनी हमेशा के समान प्रसन्न मनोवृत्ति में वे थे और किसी औपचारिकता के बिना उन्होंने घर में प्रवेश किया। मैं दौड़ पड़ा और उनके चरणों में गिर गया। उन्हें देखकर मुझे बड़ी राहत हुई। मुझे उठाकर उन्होंने मेरा आलिंगन किया। परिवार के सभी सदस्य उनका स्वागत करने के लिए खड़े हो गये। मेरे बंधु ने गुरुदेव से अपने मित्रों का परिचय करा दिया। डाक्टर लोग गुरुदेव के दर्शन से उनका हमने जिस प्रकार से स्वागत किया था उसे देखकर विस्मय में पड़ गए थे। गुरुदेव ने पूछा कि माताजी की तबियत कैसी है और हमारे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे उनके कमरे

की ओर बढ़ गये। मैं मां के कमरे में दौड़ा और उन्हें कहा,—"मां गुरुदेव आ गये हैं।" माताजी और पिताजी बड़े खुश थे और गुरुदेव को देखकर माताजी आंसुओं को नहीं रोक पा रही थीं। माताजी ने उठना चाहा किन्तु गुरुदेव ने उन्हें लेटे रहने के लिए कहा। वे माताजी के पलंग पर उनके निकट बैठ गये और उन्होंने उनके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये। कमरे में क्या चल रहा है यह देखने के लिए हमारे अतिथिगण और अन्य सभी लोग वहां चले आये। गुरुदेव ने माताजी से पूछा कि कैसा लग रहा है तो वे बोलीं,—"गुरुदेव, आप तो जानते ही हैं कि मैं अपनी यात्रा की समाप्ति पर आ चुकी हूं।" चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए वे बोलने लगीं,—"न तो मुझे मृत्यु का दुख है और न उससे भय। आपके आगमन की आशा मैं कर रही थी और आप आ गये हैं। अब मुझे किसी बात की चिंता नहीं।" मेरे पिताजी ने भी गुरुदेव के चरणों में अपना सिर रख दिया। जिस समय उन्हें गुरुदेव के आने आशा थी, ठीक उसी समय पर उनके आगमन से पिताजी को बड़ी प्रसन्नता लग रही थी।

माताजी ने कहा,—"गुरुदेव मैं कितनी खुश हूं यह मैं नहीं बता सकती और मैं आप की कितनी कृतज्ञ हूं यह बताने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं बड़ी दीन हूं। आपके लिए कुछ भी अर्पण नहीं कर सकती। मुझ पर और मेरे पति पर आपका अपार ऋण है।" गुरुदेव ने कहा,—"माताजी, मैंने आपको वचन दिया था, उसके अनुसार मैं यहां पर उपस्थित हूं। अब मुझे बता दीजिए कि आपके लिए और आपके पति के लिए मैं क्या कर सकता हूं? आपका खुश चेहरा और आपकी उमंग देखकर मुझे बड़ी खुशी है। मुझे आपको यह आश्वासन देने की आवश्यकता नहीं है कि माधव की देखभाल अच्छी तरह से होती रहेगी और अपने शेष परिवार के लिए चिंता करने की आपको कोई आवश्यकता नहीं। जो कुछ बताना था मैं आपको पहले ही बता चुका हूं और मेरी शुभ कामनाएं और आशीर्वाद आपके साथ हैं।" माताजी ने जब पूछा कि गुरुदेव ने दूध लिया है क्या, तो हम सभी को याद आया कि हम उन्हें दूध भी देना भूल गये थे। गुरुदेव मुस्कराये और उन्होंने कहा कि माताजी को इस बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं और किसी औपचारिकता के बिना वे आराम से हैं। इसलिए मैंने गुरुदेव से स्नान कर लेने के लिए कहा इस समय तक दूध आ चुका था। हमेशा जैसे ही गुरुदेव के पास कोई सामान नहीं था इसलिए मैं उन्हें अपने कमरे में ले गया और मैंने आवश्यक वस्तुएं उनके लिए रख दीं। लगभग एक घन्टे बाद गुरुदेव कक्ष में आये। उन्होंने नाश्ता नहीं किया, केवल दूध ग्रहण किया। भाईसाहब ने माताजी की हालत के बारे में गुरुदेव से पूछा। क्षण भर के लिए गुरुदेव गंभीर हो गये, फिर बोले,—"बम्बई के सुविख्यात डाक्टर लोग यहां पर उपस्थित हैं और रोगी के बारे में अभी मत प्रकट करने के लिए वे मुझसे भी अधिक सक्षम हैं।" एक

डाक्टर ने कहा,—"महाशय, क्षमा करें, रोगी की हालत नाजुक है, इसकी एक ओर बजह है कि दवाई के प्रति उनकी ओर से प्रतिचेष्टा नहीं मिल रही। हम पूरा प्रयास कर चुके हैं, किन्तु इसके बावजूद उनकी हालत बिगड़ती जा रही है और मुझे डर है कि शायद वे इस संकट से उबर न सकें।" भाई साहब ने कहा, —"गुरुदेव, आपके पास दैवी शक्तियां हैं ऐसा माना जाता है और हम सोचते हैं कि यदि आप चाहें तो उन्हें बचा सकते हैं, । कक्ष का प्रत्येक व्यक्ति आंखों में याचना और आशा लिये उनकी ओर देख रहा था। गुरुदेव ने हम लोगों की ओर देखकर कहा,—"आप कह रहे हैं कि जो दवाईयां आप उन्हें दे रहे हैं उनके प्रति शरीर से कोई प्रतिचेष्टा नहीं है और उनकी हालत गिरती जा रही है। जब उनकी हालत ऐसी है कि वे ठीक नहीं हो सकतीं तब आप मुझसे किस बात की अपेक्षा करते हैं? इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से कहना हो तो क्या आप किसी ऐसे घर में रहना पंसद करेंगे जो जीर्ण अवस्था में हो? यदि कोई दूसरा अच्छा घर पाने का अवसर, संयोग अथवा साधन आपको प्राप्त हों तो क्या आप जो घर गिरने वाला है और रहने के लिए ठीक नहीं है उसे छोड़ नहीं देंगे? क्या यह क्रूरतापूर्ण और घातक नहीं होगा कि उस घर में रहने के लिए आपके साथ जबर्दस्ती की जाए फिर चाहे आपके सम्बन्धी ऐसा क्यों न चाहते हों? यदि वर्तमान अवस्था से ज्यादा अच्छी जीवनस्थिति प्राप्त करने के अवसर से, सम्बन्धियों का विचार और प्रेम जो अज्ञान होने की वजह से है, आपको पीछे रोक रखते हैं तो उन्हें मूर्खता ही कहा जा सकता है। समस्या यह नहीं है कि मैं क्या कर सकता हूं। समस्या यह है कि प्राप्त परिस्थितियों में सबसे अच्छी बात क्या हो सकती है। हमारी संवेदनाएं और भावनाएं आपकी माताजी अथवा किसी अन्य व्यक्ति की प्रगति में बाधक बनने वाली अथवा उसकी प्रगति को रोक देने वाली नहीं होनी चाहिए। जब यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ और समय तक जीवन धारण करने के लिए देह की क्षमता समाप्त हो जाती है और इस सबके बावजूद देह में रहने के लिए जीवन को बाध्य किया जाता है तो इस जीवन को धारण करने वाली देह ठीक से काम नहीं कर सकती। इसलिए क्या आपकी यह इच्छा है कि माताजी हमेशा के लिये विकलांग बनी रहें अथवा एक के बाद दूसरे रोग से ग्रस्त रहें? क्या यह क्रूरता नहीं होगी कि व्यक्ति इस क्षण सुखी और प्रसन्न है उसे निरंतर व्याधिग्रस्त रखा जाये। इसलिए मैं यह जानना चाहूंगा कि इस बारे में आप सबको क्या कहना है। कृपया मुझे अच्छी तरह से समझ लें। ऐसी कोई बात नहीं कि मैं जिम्मेदारी से बचना चाहता हूं अथवा यह ज्ञान का आडम्बर है या आपकी इच्छानुसार करने से मुझे भय लग रहा है। किन्तु मैं यह चाहूंगा कि आप सब लोग समस्या को अच्छी तरह समझ लें।"

गुरुदेव गंभीर थे और समस्या का हल निकालने के उनके स्पष्ट तरीके के कारण सभी लोगों को उनकी तत्परता के बारे में विश्वास हो चुका था। बड़े भाई साहब

बोले,—"आप ही हम सब में सबसे योग्य न्यायाधीश हैं और हमारा कोई मत नहीं है। हम सब यही चाहते हैं कि माताजी बच जायें और उनका स्वास्थ्य ठीक हो।"

गुरुदेव ने कहा,—"आप अभी भी मेरी बात को नहीं समझ सके हैं। हर वस्तु के लिए समय की मर्यादा है और इसी प्रकार मरणशील शरीर के लिए भी आयु, मानसिक चिंताएं और अन्य कई बातें मनुष्य-शरीर को क्षीण करती हैं, उसे जर्जर बना देती हैं। इच्छाओं का इस संसार में कोई अंत नहीं। यदि मैं आपकी माता का जीवन बचा दूं तो क्या अपको विश्वास है कि वह सुखी होंगी? उनकी मृत्यु के पश्चात् यदि उन्हें विधवा का जीवन जीना है तो फिर आप सब के बारे में क्या, जो दिन प्रति दिन वृद्ध होते जा रहे हैं? आपकी पत्नी और संतान के बारे में क्या? इस प्रकार आप देखेंगे कि आपकी माता का जीवन बचा लेना समस्या का कोई सही हल नहीं। यदि उनका जीवन किसी को बचाना है तो उसके बंधु बान्धव और स्वास्थ्य आदि की चिंता करनी। इसलिए मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि अपनी भावनाएं और संवेदनाएं काबू में रखकर आप पुनः बार ईमानदारी से सोचें और फिर मुझे बतायें कि इन परिस्थितियों में मुझे क्या करना चाहिए? हम से प्रत्येक व्यक्ति को एक न एक दिन इस नश्वर शरीर का त्याग करना ही है। असामयिक मृत्यु असुख, संताप और संशय का कारण हो सकती है। किन्तु वृद्ध अवस्था में मृत्यु एक स्वाभाविक होती है। इस लिए वह चिंता का कारण नहीं है और इसमें संशय में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। परिपक्व अवस्था में मृत्यु जब एक अपरिहार्य, अवर्जनीय घटना है तो किसी को यही अपेक्षा करनी चाहिए कि इस घटना के समय मन: शांति और संतोष की अवस्था बनी रहे। अपने माता-पिता की मनोवृत्ति, विशेष रूप से इस संकट की घड़ी में आपने देख ली है। मैं स्वत: इस बात को देखकर संतुष्ट हूं कि वे न केवल उन्हें क्या होने जा रहा है इसके प्रति उदासीन हैं बल्कि उन्होंने एक ऐसी दशा प्राप्त कर ली है जिसमें वे आनन्द से परिपूर्ण हैं। क्या आप नहीं सोचते कि यह एक महान् उपलब्धि है? आप स्थायी रूप से रहने वाले वियोग के विचार से चिंतित हैं किन्तु हम तो केवल भावना की उपज हैं, प्रामाणिक चिंतन का परिणाम नहीं। डाक्टर महोदय ने कहा:—"रोगी की मनोवृत्ति देखकर हमें वास्तव में आश्चर्य हो रहा है क्योंकि ऐसा लगता है जैसे उन्हें अपनी भौतिक देह से कोई वास्ता नहीं है। इतनी आश्चर्य-जनक मनोदशा अपने डाक्टरी जीवन में हमने कभी नहीं देखी। उन्हें पता है कि उनकी हालत नाजुक है और बच जाने का अवसर बहुत कम है किन्तु फिर भी इस कारण उनकी मन:स्थिति में किंचिन्मात्र भी बाधा नहीं आयी है।" गुरुदेव ने कहा,—"यदि किसी को मृत्यु आनी है तो डाक्टर महोदय, क्या मृत्यु के समय की यह सही दशा नहीं है? मैं समझता हूं कि यदि बिछुड़ने का अवसर आता ही है तो माता जी और पिताजी इस क्षण उचित दशा में हैं। कृपया मुझे गलत न समझें और दयाहीन

न कहें। जिस दृष्टकोण से मैंने आपको समझाया है उस के अनुसार आप समस्या को देखने का प्रयास करें।"

सब चुप थे और कुछ मिनट तक हममें से कोई व्यक्ति कुछ भी नहीं बोला। हम सब जानते थे कि क्या होने जा रहा है। किन्तु फिर भी माताजी के चले जाने के विचार से सदमा पहुंचना स्वाभाविक था।

गुरुदेव ने कहा, -"आप सही अभिमत प्रकट करने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि आप संशय में पड़े हैं और भावनाओं के कारण वास्तविकता से दूर जा रहे हैं।"

भाई साहब ने कहा,—"गुरुदेव, आप ठीक कहते हैं। विकलांग अवस्था में जीवित बना रहना योग्य नहीं। न तो माताजी के दृष्टिकोण से देखने पर यह उचित होगा और न हमारे ही। यदि उन्हें दुख कष्टों को झेलना पड़ या वृद्धावस्था में व्याधिग्रस्त होना पड़े तो केवल जीते रहना ठीक नहीं होगा। आपने बड़ी स्पष्टता से सारी बातें हमारे समक्ष रख दी हैं। अपनी ओर से मैं उनका जीवन बचाने के लिए और उन्हें दुखी करने के लिए आपसे प्रार्थना नहीं करूंगा।" डाक्टर महाशय ने कहा,—"क्षमा करें गुरुदेव, मैं नहीं सोचता कि किसी की मृत्यु रोक देने की आलौकिक शक्ति किसी के भी पास हो भी सकती है अर्थात् आपने जो कारण बताये हैं और जीवन के इस विशिष्ट पक्ष को समझाया है, इसे मैं समझ रहा हूं। किन्तु निश्चित रूप से यह बड़े आश्चर्य की बात होगी अथवा वास्तविक रूप में, दैवी शक्ति वाली बात ही होगी यदि सारे उपाय असफल रहे हों और केवल शक्ति के द्वारा किसी होनहार, नवयुवक व्यक्ति का भी जीवन बचाया जा सके।" गुरुदेव ने कहा,—"उसका यह अवसर नहीं है और न मैं ऐसी किसी बात का प्रदर्शन करने यहां पर आया हूं। किन्तु जहां तक दैवी शक्तियों की बात है, इस प्रकार की कोई बात संसार में नहीं होती। जो घटना हम समझ नहीं पाते, जिन बातों के लिए हम उचित स्पष्टीकरण नहीं दे पाते, उन्हें दैवी कहा जाता है। अपने अज्ञान को मान लेने का यह एक मार्ग है।"

"बीमार व्यक्तियों को स्वास्थ्य लाभ कराने, उनके रोगों का इलाज करने और शास्त्र क्रिया करने की शक्ति डाक्टरों ने प्राप्त कर ली है। जिस व्यक्ति को चिकित्सा-विज्ञान का ज्ञान नहीं है वह उन्हें दैवी शक्तियाँ कह सकता है। पढ़ना और लिखना भी उस व्यक्ति के द्वारा चमत्कार ही कहा जायेगा जिसने लिखना पढ़ना न सीखा हो। गरीब व्यक्तियों के दृष्टिकोण से धन समृद्धि ने भी चमत्कार कर दिखाये हैं। विश्व के सात आश्चर्य भी मनुष्य ने बनाये हैं। आधुनिक विज्ञान ने ऐसे चमत्कार पैदा कर दिये हैं जिन्हें देखकर कोई दंग रह जाता है। टेलीफोन, टैलीग्राफ, आकाशवाणी भी आश्चर्य ही हैं किन्तु उन्हें आप आश्चर्य नहीं कहते क्योंकि उनसे आप परिचित हो चुके हैं या उनके विषय में प्राथमिक ज्ञान आपको है। वर्षों के अध्ययन के पश्चात् प्रकृति के विविध तत्वों और निर्मितियों में अर्न्तदृष्टि प्राप्त करने के लिए, उस पर प्रभुत्व पाने के लिए, जो परिश्रम किए गए हैं उनके कारण ही यह सब संभव हुआ है। विभिन्न योग और उनके अभ्यास में तत्वमीमांसा के यथार्थ पहलूओं के अध्ययन में जिन लोगों ने अनेक वर्ष बिताये हैं वे अपने तरीकों में उनमें कुशलता और प्रभुत्व प्राप्त कर चुके हैं। उनके क्रिया कलाप, आचरण और कर्मों को लोगों के द्वारा दैवी कहा जा सकता है क्योंकि न तो वे उन्हें समझ पाये हैं और न ही उनका अध्ययन करने की उनकी इच्छा होती है। केवल अज्ञान के कारण ही ऐसे व्यक्तियों को अनुचित महत्व दिया जाता है। जो इन बातों को जानता है उसके दृष्टिकोण से ये सारी बड़ी सामान्य बातें हैं। उनका भी एक वैज्ञानिक अध्ययन है और ब्रह्मांड की रचना करने वाले विधि तत्वों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अच्छा खासा देने की आवश्यकता होती है। जिन्होंने अपना जीवन ही इसके लिए समर्पित किया है उनके लिए ये सब बातें बड़ी सरल रहती हैं। आप या और कोई व्यक्ति भी केवल सोचने या कल्पना मात्र से, किसी व्यक्ति द्वारा समक्ष प्रदर्शन करने पर भी उन्हें नहीं समझ सकता। यह किस प्रकार किया गया है यह समझ सकने में आप असमर्थ होंगे और इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए विज्ञान की इस विशिष्ट शाखा में आपको वर्षों तक प्रयत्न करना होगा मैं ऐसे कितने ही व्यक्तियों को जानता हूं जिन्होंने केवल चमत्कार करने में समर्थ होने के विचार से ही इस विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का भिन्न-भिन्न मार्गों से अध्ययन करने का विचार किया था किन्तु जब वे गहराई तक पहुंचे और जिन्हें आप चमत्कार कहते हैं, उनको करना उन्होंने सीख लिया तब वे इस निर्णय पर पहुंचे कि उन्होंने अपने अमूल्य समय का बड़ा भारी भाग साधारण और महत्वहीन बातों को जानने में ही बिता दिया है। तत्वमीमांसा में, इसीलिये सबसे महत्वपूर्ण है सत्य को समझ लेना, अज्ञात कहे जाने वाले का साक्षात्कार या अनुभव करना। कोई व्यक्ति जब तक देह के साथ स्वयं को जोड़ लेता है तब तक मृत्यु का बिचार दुखदायी होता है। जब कोई व्यक्ति यह जान लेता है, अनुभव कर लेता है कि इस नश्वर शरीर के साथ, जो समय-समय पर परिवर्तित होता है, उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई यह समझ लेता है या अनुभव प्राप्त करता है कि मर्त्य शरीर समेत संसार की सारी वस्तुओं में आसक्ति से रहित अकेले, एकदम अलग और अपने आप में पूर्ण कैसे रहा जाता है केवल तभी जिसे साक्षात्कार कहा जाता है उसका अनुभव उस व्यक्ति को प्राप्त कैसे रहा जाता है केवल तभी जिसे साक्षात्कार कहा जाता है उसका अनुभव उस व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है। मुझे खेद है कि संभव है जो कुछ मैं कह रहा हूं, आप समझ न पायें और मैं नहीं चाहता कि तत्वमीमांसा पर आपको मैं प्रवचन दूं। अपनी संपूर्ण

योग्यतानुसार कई बातें मैंने आपके समक्ष प्रकट की हैं और मैं चाहाता हूं कि आपको चाहिए कि आप उन्हें समझ लें।"

गुरुदेव ने इतनी तत्परतापूर्वक भाषण दिया कि सभी लोग चुप थे। भोजन का समय हो चुका था और हम सब भोजन-गृह में पहुंचे। गुरुदेव ने कुछ फलाहार और एक प्याला दूध ग्रहण किया।

भोजन के पश्चात् हम पुनः कक्ष में बैठे। गुरुदेव मातजी के पास थे। गुरुदेव के भाषण से प्रत्येक व्यक्ति बढ़ा प्रभावित हुआ है ऐसा प्रतीत होता था। भाई साहब ने अपना विश्वास व्यक्त किया कि गुरुदेव असामान्य रूप से महान व्यक्ति हैं और वह सब कुछ कर सकने में समर्थ हैं जिसके बारे में कोई सोच सकता है। हमें अभिमान है और अपना अज्ञान मान लेने के यिए हम तैयार नहीं हैं। केवल इसी कारण गुरुदेव को समझने में हम असमर्थ हैं। उसी समय पिताजी ने मुझे बुलाया और मैं उनके कमरे में गया। मेरे माता-पिता मानसिक रूप से प्रसन्न थे और उन्हें गुरुदेव के साथ खुशी के बोलते हुए देखकर मुझे अच्छा लगा। माताजी ने कहा, – "देखो माघव, इस क्षण हम बहुत सुखी हैं और जिसे तुम सबसे बुरी बात मानते हो उसके लिए तैयार हैं। गुरुदेव ने तुम्हारी देख-भाल करते रहना स्वीकार कर लिया है और हमसे अधिक समर्थ होथों में हम वड़ी खुशी से तुम्हें सौंप रहे हैं। वे ही तुम्हारे गुरु और मार्ग दर्शक हैं और हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम उस वस्तु को पा लोगे जिसे हममें से बहुत ही कम लोग पा चुके हैं। हम तो तुमसे केवल यही आशा करते हैं कि गुरुदेव में तुम्हारा असंदिग्ध विश्वास रहे और शेष सब वे सम्हाल लेंगे। मेरी आँखों में आंसु थे और गला रूंध गया था। मैं मां के गले लिपट गया और सिसकने लगा। माताजी ने मेरे बालों पर हाथ फेरा, माथे को चूम लिया और कहा,—"माधव, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। दुःख करने की कोई बात नहीं है। यदि हमारे अंतरतम से तुम प्रेम करते हो तो हम हमेशा ही तुम्हारे साथ हैं।" काफी समय तक मैं माताजी के पास रहा। जब गुरुदेव की वाणी मुझे सुनाई पड़ी, "माघव, तुमने अब तक कई बातें सीख ली हैं और तुम्हें इस प्रकार अपना नियंत्रण नहीं खोना चाहिए। तुम जानते हो कि नित्य क्या है, अनित्य क्या है और चिरतन क्या रहता है।" मैं उनके चरणों में झुका, उन्होंने मेरे माथे पर स्पर्श किया और वे कुछ समय तक अपने दोनों हाथ मेरे मस्तक पर रखे रहे। तत्क्षण मुझे अनुभव हुआ कि मेरे समस्त शरीर में विद्युत का संचार हो रहा है और मुझे असीम आनन्द का अनुभव होने लगा। मैं शांत हो गया और मुझे लगा कि एकाएक एक महान् स्पष्टता मुझ में प्रत्यक्ष हो रही है। मुझे एक रूपान्तर की भावना का अनुभव हुआ और ऐसा लगा कि वास्तव में मेरे अन्दर कुछ जो भी घट रहा है जिसे शब्दों में व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूं। गुरुदेव ने मुझे उठा लिया और जैसे तन्मयावस्था में ही मैं निकट की कुर्सी पर बैठ गया। मैं देख सकता था कि मेरे

माता पिता अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने कहा,—"माधव, अब तुम्हारा काम बन गया है और जीवन में हमारी जो आकांक्षा थी वह पूरी हो गई।" गुरुदेव खड़े हो गए और उन्होंने कहा कि वे तुरन्त ही यहां से चलने वाले हैं। पिता जी और माताजी ने उनका चरण स्पर्श किया। उन्होंने दोनों को आशीर्वाद दिये और विदा ली। मेरे दोनो बन्धुओं और विशेष रूप से उनकी पत्नियों ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि वे जब भी बम्बई आयें, अपने घर आकर रहें। रात्रि के लगभग दस बजे मैंने स्टेशन पर उन्हें विदा दी। उसी रात हमारे अतिथिगण भी बम्बई के लिए रवाना हुए।

गुरुवार का दिन था और प्रातःकाल का समय। गुरुदेव को गये कुछ ही दिन बीते थे। सेवक ने आकर मेरे कमरे का द्वार खटखटाया। जल्दी से मैं बिस्तर से उठा और बाहर आया। उसने बताया कि माता जी की तबियत ठीक नहीं है। मैं माता जी के कमरे में गया। मेरे दोनों भाई पहले से ही वहां पर बैठे थे। मैं देख सकता था कि माता जी को सांस लेने में कठिनाई हो रही है। पिता जी शांति पूर्वक उनके पास बैठे थे और बाल सहला रहे थे। धीरे से माता जी ने आँखें खोलीं, उनके चेहरे पर मुस्कान थी और एक प्रकार का तेज। एक हलका सा झटका उन्हें लगा और सचमुच वह हम सबको छोड़कर चली गईं। पिता जी ने उनका मस्तक अपनी गोद में लिया और बड़े हल्के से चूम लिया। सब लोग रो रहे थे। माता जी हमें छोड़ चुकी थीं। महिलाओं को समझाना कठिन था और हम स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पा रहे थे। पिताजी बड़े शांत थे। केवल इतना भर उन्होंने कहा कि अपना जीवन भर का साथी उन्होंने खो दिया। उन्होंने यह भी कहा कि उसने पहल की है। उस समय हम नहीं समझ पाये कि वे क्या कह रहे हैं।

केवल हमने उनकी आँखों में आंसू देखे थे और उनकी भर्राई हुई आवाज सुनी थी। घर के सारे लोग जमा हो गये थे और पड़ोसी लोगों का घर में आना प्रारम्भ हो चुका था। प्रातःकाल के लगभग छह बजे माताजी हमें छोड़कर चली गईं। हम पिताजी को कमरे से बाहर लाये और उनके गिर जाने के भय से कुर्सी पर बैठने में हमने उन्हें सहायता दी। बड़ी साफ आवाज में वे मेरे बड़े भाई से बोले,— "अपनी वसीयत मैंने बना ली है। वह तुम्हें तिजोरी में मिल जायेगी और अपनी सारी संपत्ति का पूरा ब्योरा उसमें हैं। मैंने उसमें सब बातें पूरे विस्तार से बनाकर रखी हैं और ठीक उसी के हिसाब से उसे अमल में लाने के अलावा तुम्हें कोई चिंता नहीं रहेगी। तुम्हारे मार्ग-दर्शन के लिए सभी निर्देश उसमें लिख दिये हैं। तुम सबसे बड़े पुत्र हो और शेष परिवार में जन्मे हो जिसमें प्रतिष्ठा प्राप्त और श्रेष्ठ व्यक्तियों ने जन्म लिया है। यह तुम्हें विरासत में मिला है और मुझे विश्वास है कि परिवार की परम्परा और प्रतिष्ठा के अनुसार तुम्हारा आचरण रहेगा। तिजोरी की चाबियां मेरी मेज की दराज में हैं।" हमें समझ नहीं पा रहे थे कि वे ये सारी बातें क्यों कह

रहे हैं। लेकिन हमने यह भी सोचा कि जब वे अपनी भावनाएं बात रहे थे उस समय बीच में रोकना ठीक नहीं होगा।

अचानक वे कुर्सी से उठे और अपने कमरे की ओर चलने लगे। वे कुछही कदम आगे बढ़े होंगे कि हमें लगा जैसे लड़खड़ा रहे हैं और अपना संतुलन खो रहे हैं। हम उनकी सहायता करने दौड़े और वे गिर पड़े। हमने उन्हें उठाया। वे अचेत हो चुके थे। उन्हें शय्या पर लिटाया गया और भाई साहब सुंघाने वाली दवाई लाने दौड़। जब वे शीशी लेकर लौटे तो उन्होंने कहा कि देर हो गई, पिताजी की मृत्यु हो चुकी है। इस प्रकार एक घंटे के भीतर ही हम माता पिता से बिछुड़ गये। पिता और माता दोनों हमको छोड़ चुके थे और उसी क्षण मैं अपने आप को अनाथ अनुभव करने लगा।

चिनगारी जैसी यह दुखद वार्ता सारे शहर में फैल गई। मेरे माता-पिता के अंतिम दर्शन करने प्रायः सारा का सारा शहर उमड़ पड़ा था। वे उसी अवस्था में कक्ष में लिटाये गये थे प्रायः एक ही समय दोनों की मृत्यु हो जाना बड़े चमत्कार की बात मानी जा रही थी। उनके शरीर को पुष्पमालाओं से लाद दिया गया। संभवतः सारा शहर उपस्थित था। नागरिकों और शासकीय अधिकारियों ने मेरे पिता के प्रतिभाशाली जीवन और सामाजिक कार्य के बारे में प्रशंसा से भरे भाषण दिये। मेरी माताजी को उनके समाज कार्य के लिए श्रद्धांजलि अर्पित की गई। मेरे पिता के सम्मान में न्यायालय और कार्यालय बंद रखे गये और उनके प्रति आदर के प्रतीत रूप बाजार भी बंद रहे।

बड़ी कठिनाई से हमने मातम के दिन गुजारे। सारा घर पिताजी की स्मृतियों और संसर्गों से भरा हुआ था, और उन दोनों के बिना घर में रहना लगभग असंभव ही था। उनके बिना वह शून्य और वीरान लग रहा था। हमें लग रहा था कि जैसे हम बिना मालिक के किसी बिचित्र घर में रह रहे हों। मैं नहीं बता सकता कि अपने दिन मैंने कैसे गुजारे। घर में पूरी शांति और उदासी छायी थी और हरेक व्यक्ति चुप चाप भारी दिल और भारी पैर लिये इधर उधर टहल रहा था।

तेहरवीं के दिन हमने हिंदू मान्यताओं के अनुसार माता पिता के अंतिम संस्कार किये और मेरे सबसे बड़े भाई साहब ने हम लोगों और पिताजी के एक मित्र जो शासकीय अधिकारी थे और जिन्हें वसीयत सुनने के लिए बुलाया गया था, की उपस्थिति में मेरे पिताजी की तिजोरी खोली। वसीयत पढ़ी गई। वह सब दृष्टि से पूर्ण थी। चल अचल संपत्ति को मिलाकर सारी जायदाद हम तीनों के बीच समान रूप से बांट दी गई थी। मेरा विवाह नहीं हुआ था इसलिए नकदी और सुरक्षित धन का एक बड़ा भाग मेरे लिए रखा गया था और पिताजी की इच्छा थी कि अपने ज्येष्ठ

बंधु से सलाह कर मैं उस धन को सुरक्षित धन के रूप में लगा दूं, ताकि मुझे जीवन भर ब्याज की अच्छी रकम मिलती रहे। मुझे अपनी ओर से यह अच्छा नहीं लगा और मेरी इच्छा थी कि मेरे भाई भी मेरे हिस्से में से कुछ लें। मैंने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि मुझे इतना सारा नहीं चाहिए क्योंकि मैंने काफी बचा रखा है और अविवाहित रहने का निश्चय भी कर लिया है किन्तु दोनों ने ही मेरे हिस्से में से कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया और कहा,—"हमें अपने पिताजी की इच्छा का सम्मान करना है और उनकी वसीयत ठीक उसी रूप में पालन की जायेगी। हमें काफी मिल रहा है और जितना हमें मिल रहा है उसमें हमें पर्याप्त रूप से संतोष है।" वसीयत का पढ़ना समाप्त हुआ और पिताजी की इच्छाओं का पालन किया गया।

सम्पत्ति का हमारे नामों पर स्थानान्तरण और कानूनी व्यवस्था पूरी होने में लगभग एक सप्ताह बीत गया। परिवार का हमारा घर बड़े भाई साहब को दिया गया था। उसे ताला लगा दिया गया। केवल दो सेवक उनकी देखभाल करने के लिए छोड़ रखे थे। एक माली को बगीचे की देख भाल करने रखा था और पिताजी के समय से ही जो आदमी जायदाद की देखभाल करने के लिए नौकरी में था, उसी प्रकार आगे भी उसे काम करने के लिए कहा गया। तथापि हमारी अनुपस्थिति में हम सब की सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए हमारे बड़े भाई साहब ने सम्मति प्रदान की। मैं अपने काम पर जाने के लिए दिल्ली रवाना हो गया।

पांचवां प्रकरण

अब लगभग छह मास बीत चुके थे। समय अपना काम कर रहा था। मेरे माता-पिता की स्मृतियां धुंधली होती जा रही थीं। अपने जीवन में मैं रूचि खोने लगा था। एकदम अकेलेपन की भावना मुझे ग्रसने लगी थी और जिन कार्यकलापों में मैं अपने को व्यस्त रखने का प्रयत्न कर रहा था उनमें मेरा मन जरा भी नहीं लग रहा था। गुरुदेव के उपदेश मुझ में एक प्रकार का परिवर्तन जरूर करा रहे थे किन्तु मैं समझ नहीं पा रहा था कि वास्तव में हो क्या रहा है। मानसिक रूप से अधिक सचेत रहने का अनुभव मुझे हो रहा था और एक प्रकार की नई उमंग रह-रह कर मेरे अन्दर उठ रही थी किन्तु बाहर का जीवन निरुद्देश्य और नीरस लगने लगा था। पदोन्नति अथवा वेतनवृद्धि की इच्छा तेजी से समाप्त हो रही थी। इस प्रकार मैं

उलझन की अवस्था में पड़ा था क्योंकि आंतरिक और बाह्य क्रिया में कोई सामञ्जस्य नहीं था। मैं कुछ घटने की आशा कर रहा था किन्तु यह 'कुछ,' क्या हो सकता है इसके बारे में मेरा कोई स्पष्ट विचार नहीं था। इस प्रकार की मेरी उद्विग्न मनोवृत्ति से मेरे दिल्ली के मित्र कुछ परेशान से थे क्योंकि वे इसका कोई कारण नहीं देख रहे थे। इसलिए मैंने कुछ दिन की छुट्टी का प्रबन्ध किया और अपने बंधुओं के साथ रहने के लिए मैं बम्बई चला आया। वे भी मेरी मानसिक अवस्था के कारणों को नहीं समझ पा रहे थे। उन्होंने सोचा कि माता-पिता से मेरा इतना अधिक लगाव होने से, उनकी मृत्यु हो जाने के कारण कदाचित् यह हो सकता है। उन्होंने सलाह दी कि मुझे विवाह कर लेना चाहिए जिससे अकेलेपन की भावना दूर होगी। उससे जीवन में नया आनंद भी निर्माण होगा और माता-पिता की निरंतर रहने वाली स्मृतियां भी दूर होंगी। मैंने उन्हें बताया कि विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता, मैंने तो अविवाहित जीवन व्यतीत करने का ही निर्णय किया है। मैंने इस बात का भी संकेत दिया कि मैं अपने वर्तमान सेवा-कार्य से त्यागपत्र देने और किसी सामाजिक कार्य करने अथवा विश्वभ्रमण पर जाने का विचार कर रहा हूं। मैंने यह भी कहा कि संभव हो तो मैं अपना शेष जीवन गुरुदेव के सहवास में व्यतीत करूं अथवा मानवता की सेवा के लिए समर्पित कर दूं। मैं उन्हें जो कुछ बता रहा था, उसमें उन्हें सत्यता दृष्टिगोचर हो रही थी किन्तु उन्हें पक्का विश्वास नहीं था कि अपनी वर्तमान जीवन पद्धति त्याग कर निरुद्देश्य काम करने में मुझे कुछ भी प्राप्त हो सकता है। उन्हें इसका भी दृढ़ विश्वास नहीं था कि मैं सफल समाज सेवक बन सकूंगा अथवा देशभक्तों के कष्ट सहन करने में समर्थ रहूंगा। उनकी दृष्टि में, बदले में प्राप्त होने वाले लाभों, जो निश्चित नहीं थे और अस्पष्ट भी थे, की तुलना में उच्च शासकीय पद से त्यागपत्र देना बहुत बड़ा त्याग था। गुरुदेव के सहवास में शेष जीवन व्यतीत करना उन्हें जरा भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा कि यह विचार मूर्खतापूर्ण है, बच्चों जैसा है, विचित्र है और इसलिए विचार करने योग्य नहीं।

फिर भी मैंने तय कर लिया कि जितना भी शीघ्र संभव हो, सेवा कार्य छोड़ दूंगा किन्तु गुरुदेव से मिले बिना और उनकी सलाह के बिना नहीं। बम्बई में रहते हुए भाई साहब की सलाह से मैंने अपना सारा धन इकट्ठा कर उसका बड़ा भाग अच्छे सुरक्षित धन में लगा दिया और बचा हुआ धन अधिकोष में जमा कर दिया। मेरी इन व्यवस्थाओं को मेरे बन्धुओं ने पूर्णरूप से अनुमोदित किया। यह परिवर्तन मुझे लाभकारी रहा और दिल्ली से चलते हुए मेरी जो मनोदशा थी उसकी तुलना में दिल्ली लौटते समय मुझे काफी अच्छा लग रहा था। अब मैं गुरुदेव से मिलने के लिए उत्सुक था और तत्परता से उनके वास्तव्य स्थान का पता लगाने का प्रयत्न कर रहा था।

रविवार का दिन था और मैंने घर पर रहना तय किया था। श्री गुप्ता अपने परिवार के साथ भोजन करने और सारा दिन मेरे साथ व्यतीत करने आये थे। वास्तव में ही उनका सहवास आनन्ददायी और अच्छा था किन्तु न जाने क्यों, मुझे पूर्णतया अलिप्त भाव लग रहा था। सारे समय विनोदिनी मुझे बातचीत में लगाने और अलिप्त भाव से जगाने का प्रयास करती रही। श्रीमती गुप्ता ने कहा कि यही समय है जब मुझे विवाह कर लेना चाहिए और श्री गुप्ता ने उनका समर्थन किया। उन्होंने मुझे विवाह न करने का कारण पूछा। मैंने उन्हें बताया कि मैंने न केवल अविवाहित जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है बल्कि मैं सांसारिक जीवन से संन्यास लेकर दर्शन और तत्वमीमांसा के अध्ययन में अपना जीवन लगा देने का विचार कर रहा हूं। यह सुनकर उन्हें धक्का लगा और वे बोले,—"इससे तुम्हें क्या मिलने वाला है? तुम किसी वास्तविक वस्तु को त्याग कर भ्रमपूर्ण वस्तु के पीछे पड़ने की बात सोच रहे हो। तुम्हारे सामने एक उज्जवल जीवन है। तुम सक्षम हो और महान् बनने के लिए जन्मे हो। नौ नकद न तेरह उधार वाली बात न मानना निरी मूर्खता है। जुआ खेलने वाले को भी मैं समझ सकता हूं जो और अधिक प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगा देता है किन्तु तुम्हारे सामने तो लाभों का कोई विचार ही नहीं जिसके लिए तुम अपना उज्जवल भविष्य त्यागने के लिए तैयार हो गये हो?" मैंने हंस कर कहा,—"गुप्ताजी, वास्तविक क्या है और भ्रमपूर्ण क्या है इसके बारे में आप कुछ नहीं जानते। आपको इस बात की भी कोई कल्पना नहीं है कि क्या नित्य है और क्या अनित्य। आप जिसे ठोस कहते हैं, जीवन के उस स्वरूप को मैंने देखा है और उसमें उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त की है। आप जिसे उज्जवल भविष्य और उपलब्धियाँ कहते हैं उसे मैं अच्छी तरह समझता हूं। मैं आज तक जिसके पीछे लगा रहा हूं उससे पूरी तरह भिन्न जो जीवन का पक्ष है, उसे देखने का विचार मैंने किया है। मैं आशा करता हूं कि जिस प्रकार आज तक मुझे सफलता मिलती रही उस प्रकार मैं उसमें भी सफलता प्राप्त कर लूंगा।" श्री गुप्ता ने कहा,— मेरी यही इच्छा है कि जल्दबाजी में तुम ऐसा कोई कदम न उठा लेना जो बाद में तुम्हारे लिए पश्चाताप का कारण बने। तुम्हारी रूचियों का ज्ञान तुम्हें है और मैं आशा करता हूं कि परिपक्वता से सोच विचार करने के पश्चात् ही तुम अपना निर्णय लोगे,। श्रीमती गुप्ता ने विषय बदल दिया और हम किन्हीं अन्य विषयों पर बातचीत करने लगे। भोजन होने पर कुछ समय पश्चात् ही वे लोग मेरे घर से चल दिये हालांकि उन्होंने पूरा दिन मेरे साथ बिताना तय किया था।

माता-पिता की मृत्यु के बाद अब एक वर्ष से अधिक समय बीत चुका था। इतने समय में कोई विशेष घटना नहीं हुई। दिल्ली के जीवन से ऊब जाने का अनुभव मुझे हो रहा था किन्तु किसी न किसी कारण से मैं उससे न निकल सका। पूरा प्रयत्न

करने पर भी न तो मुझे गुरुदेव के वास्तव्य स्थान का पता ही लग पाया और न उनसे मैं भेंट ही कर सका।

एक दिन कार्यालय में मुझे तार मिला कि मेरे सबसे बड़े भाई बम्बई में गंभीर रुप से बीमार हैं और मैं वहां चला आऊं। मैंने छुट्टी ले ली और मैं बम्बई के लिए चल पड़ा। जब मैं बम्बई पहुंचा तो मैंने देखा कि मेरे बंधु विषम ज्वर से पीड़ित हैं और उनकी अवस्था चिन्तनीय है। सर्वोत्तम डाक्टरी सहायता उन्हें उपलब्ध होने पर भी उनके अच्छे होने के आसार नजर नहीं आ रहे थे। मैं सब लोगों के चेहरे पर एक प्रकार की चिंता और अपनी भाभी जी के मुख पर निराशा का भाव देख रहा था। यह एक इस प्रकार की आपत्ति थी जिसके लिए कोई भी तैयार नहीं था। मेरे बीमार बंधु समझ सकते थे कि हम सब के मन में क्या चल रहा है। वे मृत्यु को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे हालांकि वे जानते थे कि क्या होने जा रहा है। उन्होंने अपने पलंग के पास बुलाकर मुझे कहा,—"माधव, मैं जानता हूं कि मेरी अवस्था गंभीर है और यह बात डाक्टर मुझे बतायें इसकी आवश्यकता नहीं। मैं यह भी देख सकता हूं कि अपनी ओर से वे मेरा जीवन बचाने का पूरा प्रयास कर रहे हैं। होनी को कोई बदल नहीं सकता और ईश्वर की इच्छा ही सर्वोपरि है। इस समय यदि कुछ किया जा सकता है तो वह गुरुदेव ही कर सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे यदि यहां पर आयें तो केवल वही मेरा जीवन बचा सकते हैं। क्या तुम उन्हें बुला सकते हो ? यह समय बड़ा मूल्यवान् है और मैं चाहता हूं कि संभव हो तो तुम उनसे संपर्क स्थापित करो।" मैंने उन्हें बताया कि मैं गुरुदेव के वास्तव्य स्थान का पता लगाने का प्रयत्न करता हूं। आंखों में आंसू लिए भाभी जी ने भी कहा कि इस संकट की घड़ी में मैं उनकी सहायता करूं। मेरा हृदय भर उठा और उस क्षण गुरुदेव से संपर्क स्थापित करने में अपनी असमर्थता का विचार मैं करने लगा। मैंने उन्हें कुछ भी नहीं कहा बल्कि मैं अपने कमरे में गया, अन्दर से द्वार बंद करके चुपचाप बैठ गया। मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे और अपनी पूरी निष्ठा से मैंने कहा,—"गुरुदेव आप जहां कहीं भी हों, कृपा-पूर्वक यहां पर पधार कर मेरे भाई का जीवन बचा लें जो स्वंय उसके और उसके परिवार के लिए इतना मूल्यवान् है। केवल आप ही हैं जो उसका जीवन बचा सकते हैं और दूसरा कोई यह नहीं कर सकता। आपकी मदद के बिना हम असहाय हैं। यदि आप ही सहायता नहीं करते तो दूसरा कौन करेगा ?" इस प्रकार मैं लगभग एक घण्टे तक अपने बंधु का जीवन बचा लेने के लिए गुरुदेव से प्रार्थना कर रहा था कि मैंने स्पष्ट रूप से गुरुदेव की गूंजती हुई वाणी सुनी कि शीघ्र ही वे यहां पर आ रहे हैं और वे देखेंगे कि सब कुछ ठीक प्रकार से होता है। मैं शांत हो गया और मुझे एक प्रकार का संतोष मिला। द्वार खोलकर मैं बाहर आया और भाई साहब के कमरे में जाकर मैंने उन्हें बताया कि गुरुदेव ने प्रार्थना सुन ली है और

उन्होंने आश्वासन दिया है कि वे शीघ्र ही यहां आने वाले हैं। उन्होंने मुझे यह भी आश्वासन दिया है कि आपके स्वास्थ्य के बारे में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भाभी जी ने राहत भरी सांस ली और प्रार्थना करने के समान हाथ जोड़े। उन्होंने कहा,—"मुझे गुरुदेव में पूर्ण विश्वास है और निश्चित ही उन्होंने जो कुछ कहा उसे वे कर देंगे।" मेरे डाक्टर बंधु ने, कुछ भी नहीं कहा। जब उनसे मैं कक्ष में मिला तब वे बोले,—"माधव, इस समय भाई साहब गंभीरतम संकट से गुजर रहे हैं। जहां तक हम डाक्टरों का सवाल है, हमने आशाएं छोड़ दी हैं। जो कुछ भी संभव था, हम सब कर चुके हैं। मैं सोचता हूं कि जब तक, तुम्हें पूरा विश्वास न हो कि तुम क्या कह रहे हो तब तक तुम्हें झूठे वादे नहीं करने चाहिएं। मैंने कहा,—"देखिए, चिकित्सा विज्ञान का आपका ज्ञान कितना ही बड़ा क्यों न हो, आप गुरुदेव और उनकी क्षमता को नहीं समझ सके हैं। मैंने जो कुछ कहा, वह सत्य है और भाई साहब अब बच जायेंगे।" उन्होंने कहा,—"माधव, ऐसा कोई चमत्कार यदि होता है तो मैं बड़ा कृतज्ञ रहूंगा और तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि सदैव ही गुरुदेव का आभारी बना रहूंगा।"

दोपहर में मेरे बंधु की अवस्था और बिगड गई। बड़ी संख्या में डाक्टर लोग इकट्ठे हुए थे और उन्होंने सारी आशा छोड़ दी थीं। उन्होंने कहा कि अब केवल समय का ही प्रश्न रह गया है। बीमार व्यक्ति की प्राण-ज्योति बुझ रही है। इस सारे समय गुरुदेव की परिचित पद्ध्वनि सुनने के लिए मैं चौकन्ना रहा था और मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि कुछ और बुरी बात होने से पहले ही उन्हें आ जाना चाहिए।

मुझे बड़ी राहत मिली जब एक सेवक ने अन्दर आकर मुझे बताया कि एक साधु के समान व्यक्ति बाहर आया है और अन्दर आना चाहता है। पूरे वेग से मैं बाहर दौड़ पड़ा और मैंने देखा कि गुरूदेव मुस्करा रहे हैं। मैं उनके चरणों में गिर पड़ा उन्होंने मुझे उठा लिया। एक बच्चे के समान मैं उनकी गोद में सिसक रहा था। क्या हो रहा है यह देखने के लिए सभी लोग बाहर चले आए। मेरे डाक्टर बंधु ने अपनी पत्नी के साथ गुरूदेव का चरण स्पर्श किया। गुरूदेव ने कक्ष में प्रवेश किया और डाक्टरों से पूछा कि रोगी की अवस्था कैसी है ? गुरूदेव की उपस्थिति से डाक्टर लोग कुछ उपेक्षित हो गये थे और गुरूदेव का प्रश्न उन्हें अच्छा नहीं लगा। स्थिति को कुछ सामान्य बनाने के लिए भाई ने उन्हें बताया कि गुरूदेव महान् साधु पुरूष हैं और हमारे परिवार के गुरू हैं।" डाक्टरों से किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना गुरूदेव सीधे उस कमरे में पहुंचे जहां पर भाई साहब थे। हम सब उनके पीछे गये। बड़ी भाभी जी आंखों में आंसू लिए गुरूदेव के चरणों में गिर पड़ीं। "गुरूदेव आये हैं,"

ऐसा मैंने कहा। मेरी बात को भाई साहब समझ गए। उन्होंने आँखें खोलने का प्रयास किया किन्तु इतनी भी शक्ति उनमें नहीं थी। गुरूदेव धीरे से उनके निकट बैठे, अपना हाथ उनके माथे पर रखा और उन्हें धीरे-धीरे थपथपाने लगे। गुरूदेव ने कहा,—"विनायक, तुम बिलकुल ठीक हो, चिंता करने की कोई बात नहीं है।" जो कुछ गुरूदेव ने कहा था उसे भाई साहब समझ गये थे और एक मुस्कान उनके चेहरे पर छा गई। गुरूदेव उनकी शय्या पर बैठे और कुछ देर तक चुप रहे। क्या हो रहा है यह जानने के लिए डाक्टर लोग भी कमरे में आये। लगभग दस मिनट के पश्चात् गुरूदेव बिस्तर से उठे और बाहर आने लगे। जैसे कि गहरी नींद में हो, भाई साहब ने आंखें मूंद लीं। गुरूदेव ने कहा,—"जब तक ये अपने आप नहीं जगते तब तक कृपया उन्हें परेशान न करें।" वे कमरे से बाहर आये और सभी लोग उनके पीछे चले आये। भाभीजी ने बड़ी उत्सुकता से मुझे पूछा,—"माधव, तुम क्या सोचते हो?" उनकी आँखों में आशाएं थीं और मुद्रा पर कुछ आकुल भाव। मैंने उन्हें कहा "आपके पतिदेव अब संकट से मुक्त हो चुके हैं। वे निश्चित रूप से ठीक हो जायेंगे और जैसा कि गुरूदेव ने आश्वासन दिया है, उनके जीवन को अब कोई खतरा नहीं है।" जब मैं कक्ष में आया तो गुरूदेव दूध ग्रहण कर रहे थे। गुरूदेव ने मुझे अपने पास बैठने के लिए कहा और वे बोले,—"माधव, तुम इतने उदास क्यों हो? जैसे ही मुझे तुम्हारा सदेश मिला, मैं तुरन्त चला आया।" मैंने कहा,—"गुरूदेव, इतने थोड़े समय में आप कैसे आ सके? आप कहां से आ रहे हैं?" उन्होंने कहा,—"मैं बम्बई में था और तुम्हारे भाई से मिलने का मेरा विचार था। तुम मुझे बुला रहे थे तब तुम्हारी आवाज मैंने सुन ली थी और इसीलिये बात क्या है यह जानने के लिये मैं चला आया।" गुरूदेव के स्पष्टीकरण में मुझे विश्वास नहीं हुआ क्योंकि मैंने सोचा कि हमें बताना नहीं चाहते कि वे किस स्थान से आ रहे हैं। फिर भी, यह स्पष्ट ही था कि वे जहां कहीं रहे हों, उन्होंने मेरी प्रार्थना सुन ली थी और मेरे बधु का जीवन बचाने के लिये वे दौड़ पड़े थे। डाक्टरों में से किसी ने कहा,—"गुरूदेव, क्षमा करें, क्या आप सोचते हैं कि विनायक जी बच सकेंगे? क्या उन्हें बचाने के लिये आप कुछ कर सकते हैं? जहाँ तक हमारा प्रश्न है, जो कुछ हम कर सकते थे, हम कर चुके हैं। हम नहीं सोचते कि उनके बचने की कोई सम्भावना हो सकती है।" गुरूदेव मुस्कराकर बोले,—"विनायक जी की मृत्यु नहीं होगी और इस बात को आप उनके स्वास्थ्य की अवस्था देखकर जान सकते हैं। वह कुछ देर तक विश्राम कर ले, फिर आप चाहें तो उनकी परीक्षा कर सकते हैं।" गुरूदेव की बातचीत से लगा कि वे आगे बात बढ़ाना नहीं चाहते और इसके बाद उन्हें किसी ने प्रश्न नहीं पूछा। उन्होंने कहा,—"माधव, मुझे अपना कमरा दिखाओ मुझे स्नान करना है।" अपना कमरा दिखाने के लिए मैं तुरन्त उठा। गुरूदेव ने स्नान किया और वह शय्या पर आराम

से बैठ गए। मैंने पूछा,—"आपको किसी बात की आवश्यकता है?" उन्होंने कहा कि वे कुछ थके से हैं और एकान्त चाहते हैं।" मैं कमरे में छोड़कर बाहर चला आया। मैं भाई साहब के कमरे में गया। वह गहरी नींद में सो रहे थे। डाक्टर लोग कक्ष में प्रतीक्षा कर रहे थे और उनकी बातचीत का मुख्य विषय था—गुरूदेव। मुझे एक डाक्टर ने पूछा,—"माधव, गुरूदेव के बारे में आप हमें कुछ अधिक बता सकते हैं? चमत्कारों में हमारा कोई विश्वास नहीं है और हम इस बात पर विश्वास नहीं करते कि कोई मृत्यु को टाल सकता है। हमने साधु, सन्यासी और फकीरों के पास की दैवी शक्तियों के बारे में कितनी कथाएं सुन रखी हैं किन्तु स्वयं देखने का कोई अवसर नहीं मिला। यदि कोई व्यक्ति लोगों को मृत्यु से बचा सकता है तो सारे संसार में अव्यवस्था निर्माण होगी और प्रकृति की सारी कार्य प्रणाली ठप्प हो जाएगी। विनायक जी के बारे में क्या होता है हम यह देखते हैं। क्या आप सोचते हैं कि विनायक जी का जीवन बचाने का चमत्कार गुरूदेव कर सकते हैं?" मैंने कहा—"किसी ऐसी चीज के बारे में तर्क करने से कोई फायदा नहीं जिसे हम और आप दोनों नहीं जानते। मैं गुरूदेव से असंदिग्ध विश्वास रखता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि जो कुछ भी गुरूदेव चाहते हैं वह कर सकने में वे समर्थ हैं। उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों का आकलन करने में मैं असमर्थ हूं। क्योंकि मुझे उनका कुछ भी ज्ञान नहीं। जहाँ तक विनायक जी के जीवन का प्रश्न है, मुझे पूरा विश्वास है कि उनका जीवन बचा लिया गया है।" भाई साहब को गहरी नींद लगे अब दो घंटे बीत चुके थे। मैंने अपने भाई की आवाज सुनी। मैं पहुंचा तो भाई साहब धीरे-धीरे आँखें खोल रहे थे। वे मुस्करा रहे थे। उन्होंने मुझे अपने निकट बुलाया और मैं उनके समीप गया। मंद स्वर में वे बोले,—"मैं तुम्हारा अत्यधिक आभारी हूं। तुम नहीं जानते कि गुरूदेव ने मेरे लिए क्या किया है? उन्होंने मृत्यु से बचा लिया है। जीवन जो मुझ से दूर भाग रहा था, अब उनके कारण पुनः वापस लौट आया है। वे केवल महामानव ही नहीं, अपितु ईश्वर तुल्य हैं। उनके प्रति कृतज्ञ भाव व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।" उन्हें आगे बोलने से रोकते हुए मैंने कहा,—"भाई साहब कृपा करके आप न बोलें। आप पहले ही दुर्बल हैं। अधिक बोलने से आपके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। गुरूदेव ने पूर्ण विश्राम करने के लिए आप से कहा है और आपको उनके शब्दों का सम्मान करना चाहिए।" उन्होंने कहा,—"जैसा तुम चाहते हो, मैं गुरूदेव की आज्ञा का पालन करूंगा।" इतने समय में मेरे डाक्टर भाई ने भी अपने मित्रों के साथ कमरे में प्रवेश किया और विनायक जी ने आँखें खोली हैं, यह देख कर उन्हें प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा कि कैसा लग रहा है? श्री विनायक जी ने कहा कि "उन्हें बड़ी राहत मिलने का अनुभव हो रहा है।

और अब वह संकट से परे है।" उनके इस कथन पर संतोष व्यक्त कर डाक्टर भाई ने उनकी नाड़ी और हृदय देखा। उनकी अवस्था में सुधार देखकर उन्हें सचमुच आश्चर्य हुआ। उन्होंने भाई साहब को आराम करने के लिये कहा और सब लोग कक्ष में आ गए ताकि उन्हें कोई परेशानी न हो। मैंने डाक्टर भाई से पूछा कि भाई साहब की अवस्था के बारे में आपकी क्या राय है? उन्होंने कहा, "कुछ बदले हैं। किन्तु हमें विश्वास नहीं है कि स्वास्थ्य में प्रगति इसी प्रकार बनी रहेगी। यदि इसी तरह सुधार होता रहा तो मुझे विश्वास है कि एक या दो दिन में ही उनका संकट टल जाएगा।" उनके मित्र ने कहा, —"जो भी हो, परिवर्तन आश्चर्यजनक है। गुरुदेव की उपस्थिति के मनोवैज्ञानिक परिणाम के कारण ऐसा हो सकता है।" दूसरे ने कहा, "मनोवैज्ञानिक परिणाम अधिक समय तक नहीं बना रह सकता और मैं नहीं सोचता कि डूबते समय हृदय पर और रोगी की अर्धचेतना पर उसका इतना अद्भुत प्रभाव पड़ सकता है।" मैंने उन्हें बताया कि जो परिवर्तन आप देख रहे हैं वह सब कुछ गुरूदेव के अनुग्रह का ही फल है और जैसा कि वे बता चुके हैं आप देखेंगे कि विनायक जी पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर लेंगे। डाक्टर लोगों ने यह कहकर कि वे दूसरे दिन सुबह रोगी की अवस्था देखने आएंगे, हमसे विदा ली। हालांकि उन्हों ने मेरे भाई को बता दिया कि इलाज चालू रखें। जब मैं गुरुदेव को भोजन के लिए बुलाने गया तो मैंने देखा कि वह शय्या पर गहरी नींद ले रहे हैं। मैं कुर्सी पर बैठ गया और सोचने लगा कि उन्होंने हमारे लिए कितना कुछ कर दिया है। मैंने सोचा कि उनके उपकार कितने महान हैं और हम क्या कभी उनसे उऋण भी हो सकते हैं। वास्तव में हमने तो कुछ भी नहीं किया था, जो उनकी कृपा के पात्र होता। यह बात प्रकट ही थी कि हमसे उन्हें कोई अपेक्षाएं नहीं थीं फिर भी हम किसी प्रकार भी उनके काम नहीं आ सकते थे। वे अपने मार्ग से हटकर क्यों हम पर कृपा कर रहे हैं। यह भी एक प्रश्न था। जब मैं इस प्रकार विचारों में खोया था गुरूदेव ने अपनी आँखें खोलीं और कहा, —"माधव, केवल सोचने से तुम्हें ये बातें समझ में नहीं आ सकतीं।" मैं उठ खड़ा हुआ और अपना मस्तक उनके चरणों में रख कर मैंने कहा, —"गुरुदेव हम पर आप इतने अधिक कृपालु रहे हैं, आपने इतना अधिक हमारे लिए कर दिया है कि यह मेरी शक्ति से परे हैं कि मैं अपनी कृतज्ञता भाव व्यक्त करूं और मेरी भावनाएं बता सकूं। बुद्धि के द्वारा आपको समझना मुझे असम्भव लगा है, मैं जितना अधिक आपके बारे में सोचता हूं उतना ही अधिक सम्भ्रमित हो जाता हूं। आपने मेरा सारा जीवन मार्ग ही बदल दिया है और मैं नहीं जानता कि मैं किस ओर बढ़ रहा हूं। मुझे यही संतोष है कि मेरा जीवन, भविष्य अथवा जो कुछ भी है, वह सब आपके हाथों में सुरक्षित है। मैं परिणामों की चिन्ता नहीं करता। दुःख केवल इसी बात का है कि मैं किस लायक हूं और क्या कभी मैं यह ऋण चुका भी सकूंगा।" गुरुदेव ने

धीरे से मेरे मस्तक को सहलाया और कहा, —"तुम अभी भी बच्चे हो। अभी तुम्हें बहुत सारी बातें सीखनी हैं। जैसे तुम्हारी प्रगति होगी वैसे अपने आप समझ तुम्हारे में प्रविष्ट होगी। मैंने विशेष रूप से तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं किया है और तुम्हें इसके बारे में नहीं सोचना चाहिए। जैसा कि मैं तुम्हें पूर्व में ही बतला चुका हूं, हमें अभी भी काफी लम्बा रास्ता तय करना है और तुम्हें भविष्य अथवा अतीत के बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें तो केवल अपने वर्तमान को ही सर्वोत्तम बनाना है और यह यदि हो जाता है तो मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि तुमने बहुत कुछ कर लिया है। वे उठ गए और हम भोजन कक्ष में चले आये। भोजन के पश्चात् हम भाई साहब के कमरे में गये और वे तेजी से सुधर रहे हैं यह देखकर गुरुदेव को प्रसन्नता हुई। भाई साहब ने अपनी आंखें खोलीं और गुरुदेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए हाथ जोड़े। गुरुदेव बोले, —"विनायक, अब तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुमने संकट को पार कर लिया है और अब पूर्ण विश्राम लो। प्रातःकाल हमारी मुलाकात होगी।"

गुरुदेव के विश्राम के लिए एक कमरा रखा गया था और उन्हें मैं वहां पर ले गया। भाई साहब का स्वास्थ्य सुधर रहा है यह देखकर मुझे संतोष था। हम सब जल्दी सो गये। मुझे गहरी नींद लगी थी और दूसरे दिन सुबह मैं उठा तो ताजगी से भरा था। गुरुदेव शायद अभी सो रहे हों, इसलिए उन्हें देखने के लिए मैं उनके कमरे में गया। उनका कमरा खाली था यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। पता करने पर मालूम पड़ा कि तड़के ही स्नान कर वह बाहर गये हैं। मामा जी ने बताया कि उन्होंने गुरुदेव को एक प्याला दूध दिया था और वह किसी से मिलने गये हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी कार भी गुरुदेव के लिए उन्होंने दी है। वह दस बजे के लगभग लौटने वाले हैं। मैंने उन्हें पूछा कि मुझे क्यों नहीं बुला लिया तो उन्होंने कहा, —"गुरूदेव ने कहा था कि तुम्हारे विश्राम में बाधा न हो।"

लगभग नौ बजे डाक्टर लोग भाई साहब की हालत देखने आये। उनमें जो तेज सुधार हुआ था, उसे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। न केवल वह अब खतरे से बाहर हो गये थे किन्तु बड़ी तेजी से उनमें सुधार हो रहा था। उन्होंने कहा, —"विनायक जी, आप के आश्चर्यजनक स्वास्थ्य लाभ के लिए हम आपको बधाई देते हैं। हमें यह भी मान लेना चाहिए कि यह हमारे इलाज के कारण नहीं हुआ। इसके लिए आप गुरुदेव की महिमा के ही ऋणी हैं। यह इस प्रकार की बात है जिसे हम बिल्कुल नहीं समझ पाते।" "भाई साहब, जो अब बोल सकते थे, बोले, —"अपने जीवन के लिए मैं गुरूदेव का ऋणी हूं।" घर में बड़ा आनन्द छा गया था और भाभी जी बड़ी मुश्किल से अपनी भावनाएं रोक पा रही थीं। फिर भी डाक्टरों ने भाई साहब

को, पूरी तरह से चिन्ता करने और जब तक पूरी तरह स्वास्थ्य लाभ नहीं हो जाता तब तक इसी प्रकार सुधार बनाये रखने के लिए सलाह दी।

हम सब कक्ष में एकत्रित हो गये और चाय पान किया। उसी समय गुरुदेव ने कक्ष में प्रवेश किया। प्रत्येक व्यक्ति उनके सम्मान में खड़ा हो गया। गुरुदेव के मुख पर अपनी वही हंसी थी। वे सीधे अन्दर आ गये और एक कुर्सी पर बैठ गये।

उन्होंने डाक्टरों से पूछा कि क्या आपने रोगी की परीक्षा कर ली? वे सब नतमस्तक हुए और बोले,—"यह सब आप ही की प्रसन्नता है। हम अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। यह कुछ ऐसी चीज है जो सचमुच अलौकिक है। आज तक हमने किसी मनुष्य के पास इन शक्तियों के होने की बात केवल सुन रखी थी। आज हमने उन्हें देख लिया है। अपने ज्ञान पर हमें पूरा विश्वास था और इस निश्चित निष्कर्ष तक हम पहुंच चुके थे कि विनायक जी, अब ठीक नहीं हो सकते। अब हमें पता चला कि हमें अथवा कहना चाहिए कि विज्ञान से परे भी अज्ञात कोई ऐसी शक्ति है जो मरते हुए मनुष्य में पुनर्जीवन ला सकती है। यह केवल आश्चर्य ही नहीं किन्तु यह समझना बुद्धि से परे है कि यह किस प्रकार किया जा सका है।" गुरुदेव ने कहा,—"आश्चर्य, अलौकिक अथवा अवैज्ञानिक कोई बात नहीं होती। सहवास, शिक्षा, परिस्थिति और वातावरण के द्वारा हमने अपने अन्दर एक अहंकार को निर्माण कर लिया है जो हमें इस प्रकार सोचने के लिए बाध्य करता है या इस ओर ले जाता है कि हम सब कुछ समझ सकते हैं, हमारी बुद्धि वस्तुओं का जानने में समर्थ है और सभी बातें समझ सकने की क्षमता उसमें है। जो वस्तुएं, प्रसंग अथवा घटनाएं हमारे द्वारा नहीं समझी जातीं अथवा जो हमारी बुद्धि के दायरे में नहीं आतीं उन्हें ही आश्चर्य, अलौकिक अथवा दैवी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, इन शब्दों के उपयोग के द्वारा हम अपना अज्ञान छिपाते हैं। शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में हमेशा हम प्रस्थापित शैलियों का ही अनुकरण करते हैं अथवा चले हुए मार्गों पर ही चलते हैं। जैसा हम आगे बढ़ते जाते हैं, सामान्यतः हम अज्ञात वस्तुओं की खोज करने अथवा जो अप्रकट रहा है उसकी खोज करने का प्रयत्न करने के लिए प्रयास नहीं करते। जिसने इनकी गहराइयों में खोज की है उसे दैवी कहा जाता है और उसके कर्म दैवी कहलाते हैं। जब आप जिसे अज्ञात कहा जाता है उसके रहस्य को सुलझाने के लिए जानना चाहते हैं, परिश्रम करते हैं तो आपको ज्ञात होता है कि उसका भी अपना एक विज्ञान है और उसके निष्कर्ष भी वैज्ञानिक ही हैं। अपने किन्हीं कारणों से, हो सकता है कि उसका प्रयोग सार्वलौकिक न हो। मेरे लिए यह संभव नहीं है कि अल्प समय में मैं आपको यह बता दूं जिसे सीखने के लिए लोगों को सैंकड़ों वर्ष लगाने पड़े हैं और उसमें गम्भीरता पूर्वक विचार अथवा अध्ययन किए बिना आपके लिए भी उसे समझ लेना संभव नहीं है। किन्तु मैं केवल एक बात आपको बता सकता हूं कि आलौ-

किक अथवा दैवी कुछ भी नहीं है। जिस किसी की इच्छा हो, वह गंभीर प्रयोग, अध्ययन और परिश्रम से जो कई वर्षों तक, अथवा पूरे जीवन भर भी चल सकता है उसे प्राप्त कर सकता है।"

किसी डाक्टर ने कहा,—"गुरुदेव, आप बम्बई में कितने दिन रुकने वाले हैं? क्या इस विषय पर आपको सुनने का अवसर हमें मिलेगा?" गुरुदेव हंस दिए और बोले,—"जल्द ही मैं बम्बई से जाने वाला हूं। अगले समय जब मैं बम्बई रहूंगा उस समय. यदि आपकी इच्छा हो तो इस विषय पर अधिक जानकारी देने में मुझे प्रसन्नता होगी।" दोपहर के पश्चात् गुरुदेव ने भाई साहब को बताया कि वे उसी शाम बम्बई से चलने वाले हैं। भाई साहब ने कुछ अधिक दिन तक रुकने के लिए उनसे प्रार्थना की और भाभी जी ने भी अभ्यर्थना की कि जब तक उनके पति स्वस्थ न हो जाएं, वह रुके रहें। गुरुदेव ने कहा,--"विनायक, पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में तुम्हें कुछ समय लगेगा।" भाई साहब ने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। इन शब्दों के साथ गुरुदेव कमरे से बाहर आ गए और मैं उनके पीछे चला। कमरे में आने पर उन्होंने अन्दर से चटखनी बंद कर ली और एक कुर्सी पर बैठ गए। मैं उनके चरणों के पास बैठ गया। गुरुदेव ने कहा, --"माधव, मेरी बात सुनो।" मैं पूर्ण रूप से एकाग्र था और मुझे अनुकरण करने के लिए वह कौन से निर्देश बता रहे हैं, यह जानने के लिए स्वाभाविक रूप स उत्सुक था। गुरुदेव ने कहा,--"तुम्हारी प्रगति देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। तुम्हें अभी बहुत आगे चलना है। इसलिए शीघ्रता करनी होगी। मैंने जो कुछ बताया था, उसे तुम करते रहे हो और महान् मनोदशात्मक निरीक्षण भी तुम में आ गया है किन्तु इन दोनों में सहकार्य नहीं है जिससे अनुभव प्राप्त हो और उन्हें समझ अथवा ज्ञान के रूप में तुम जान सको। इनके कारण यही हैं कि तुम जो कुछ कह रहे हो और तुम्हें जैसे अनुभव हो रहे हैं उनके परस्पर प्रम्बन्ध निरीक्षण और ज्ञान किए बिना ही मेरे कथन के अनुसार करने का निश्चय तुमने कर लिया है। समझने में दोष है। यही कारण है कि में उसके विरोध में कह रहा हूं।"

पिछली बार जब मैं गुरुदेव से मिला था तब से अब तक अपने अनुभव मैंने गुरुदेव को बता दिए। उन्होंने कहा "तुम सही मार्ग पर हो यह देखकर मुझे खुशी है। ये बहुत सामान्य अनुभव है और ऐसा सोचकर कि तुमने कुछ उल्लेखनीय प्राप्त कर लिया है अपनी वचना कर लेने की तुम्हें आवश्यकता नहीं। उपलब्धियाँ चाहे छोटी हों या बड़ी यह दिखाने के अतिरिक्त कि तुम्हारी प्रगति सही दिशा में हो रही है इनका बहुत कम महत्व है। वे तुम्हारा ध्यान किसी प्रकार भी विचलित करने अथवा तुम्हारे प्रयासों में ढिलाई की ओर प्रेरित करने में समर्थ नहीं होनी चाहिए। तुम्हारे जीवन का कठिनतम समय यही है और तुम्हें इस ओर बड़ा ध्यान रखना

होगा । मुझ पूरा विश्वास है कि तुम्हें इस प्रयास में सफलता प्राप्त होगी और अपनी ओर से मैं पूरा प्रयत्न कर रहा हूं कि तुम्हें अपेक्षाएं पूर्ण करने योग्य देख सकूं ।" मैं नतमस्तक हो गया और उन्होंने अपने दोनों हाथ मेरे मस्तक पर रख दिए। मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और मुझ में संवेदना होने लगी, मेरे शरीर में लहर सी दौड़ने लगी । उस आनन्दमय अवस्था में मैं कुछ समय तक रहा और जब मैंने आंखें खोलीं तो मैंने देखा कि गुरूदेव अभी भी कुर्सी पर बैठे हुए हैं और मेरा मस्तक उनके चरणों पर है । गुरूदेव ने कहा,—"माधव, अपने वर्तमान सेवा कार्य और जीवन के ढंग के बारे में चिंता करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं । यथा समय अति स्वाभाविक रीति से उनमें बदल किया जाएगा ।" हम भोजन कक्ष में आए । गुरूदेव के विदा होने से पूर्व सारा परिवार उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये उपस्थित था । वह भाई साहब के कक्ष में गए, उन्हें आशीर्वाद दिया और सबसे विदा ली और चल दिए । स्टेशन तक मैं उनके साथ गया और उनका इच्छानुसार मैंने मद्रास का टिकट उन्हें सौंप दिया ।

भाई साहब ने तेजी से स्वास्थ्य लाभ किया और एक सप्ताह के भीतर ही मैं दिल्ली जाने के लिए समर्थ हो गया । फिर भी, विदा होने से पूर्व मैंने उन्हें बता दिया कि सेवा कार्य से त्यागपत्र देने और शेष जीवन सत्य और शाश्वत शाँति की खोज में समर्पित करने का निश्चय मैंने कर लिया है । मैंने उन्हें बताया कि सेवा कार्य आगे चलाते रहने में कोई लाभ नहीं है क्योंकि मुझे सेवा कार्य मे पदोन्नति की आकांक्षा अथवा गृहस्थ जीवन बसाने की इच्छा नहीं है । यदि मुझे अविवाहित जीवन ही व्यतीत करना है तो मेरी मृत्यु तक काम में आने योग्य पर्याप्त धन मेरे पास है । फिर भी मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि इस विषय में अन्तिम निर्णय लेने से पूर्व मैं उन्हें सूचित कर दूंगा ।

छटा प्रकरण

समय बीतता गया । बम्बई के आने पश्चात् लगभग एक वर्ष बीत चुका था । मेरा स्वास्थ्य अच्छा था और सब कुछ ठीक प्रकार से चल रहा था । अत्यन्त उत्साह और शक्ति के साथ मैं अपने प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा था । जीवन का मन्तव्य मेरे समक्ष प्रकट हो रहा था । महान् स्पष्टता मुझ में प्रत्यक्ष हो रही थी और परिणामस्वरूप मैं सत्य को उसके विभिन्न रूपों में देख सकने में समर्थ हो गया था

अब मुझे एकान्तवास में आनन्द का अनुभव होने लगा था । सामाजिक गतिविधियों में मेरी रुचि समाप्त हो चुकी थी क्योंकि वे मुझे निरर्थक लगने लगी थीं । जीवन के बारे में मेरे परिवर्तित दृष्टिकोण के स्वाभाविक ही मेरे मित्रों को आश्चर्य हो रहा था, अर्थात् मैं इस बात से जरा भी परेशान नहीं था ।

रविवार की सुबह समाचार पत्रों को देखने के बाद मैं चाय लेने वाला था कि मैंने विनोदिनी को बगले में प्रवेश करते देखा । उत्तम स्वास्थ्य से संपन्न और मनोदशा में वह थी । टेनिस कोर्ट से वह घर लौट रही थी । उसे कुर्सी पर बैठने के लिए कहकर उसके लिए चाय ले आने के लिए मैंने सेवक से कहा । विनोदिनी की मुद्रा देखकर मुझे लगा कि वह कोई विशेष बात बताने जा रही है । उसने कहा, —"किसी कारण से क्यों न हो, आप हमारा सहवास टालने लगे हैं । इसी निष्कर्ष पर हम लोग पहुंचे हैं । क्या आप मुझे विश्वास में लेकर इसका कारण बता सकते हैं ? मैं नहीं सोचती कि आपको हमसे अधिक अच्छे साथी मिल गए हैं । अथवा आप अपने कार्यक्रमों या कार्यालय के काम में इतने व्यस्त रहते हैं कि हमसे मिलने के लिए आपको समय ही नहीं मिलता है । मैं जानबूझ कर इसलिए आई हुं कि इन कारणों को मालूम करूं । मेरे माता-पिता के मन में संदेह है कि मैं ही इसके लिव किसी तरह उत्तरदायी हूं । आजकल आप क्लब में नहीं आ रहे हैं और हर व्यक्ति आपके प्रिय सहवास से वंचित हो रहा है ।"

मैं जोर से हंस दिया और मैंने कहा,—"विनोदिनी जी, आपने मुझे इतने सारे प्रश्न पूछ लिए हैं कि एक ही साथ सभी प्रश्नों का उत्तर देना मुझे कठिन लग रहा है । आप विश्वास करें या न करें मुझे इतना काम करने के लिए रहता है कि प्रातःकाल चार बजे उठने के बाद से सोने के पूर्व रात्रि के दस बजे तक बाहर निकलने के लिए मुझे बहुत कम समय मिल पाता है । क्लब में जाने या मित्रों से मिलने के लिए मुझे समय नहीं मिल पाता ।"

विनोदिनी ने कहा,—"माधव जी, क्या आप बता सकते हैं कि कार्यालय के समय के अलावा आप ऐसे कौन से काम में व्यस्त रहते हैं जो आपको अपने मित्रों से मिलने से रोके रहता है ?" मैंने कहा,—"सुनिए, मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे आप नहीं समझ सकेंगी और मैं बता भी दूं तो आप उसे मूर्खतापूर्ण भी कह सकती हैं । मेरे काम की गम्भीरता आपको जंच नहीं सकती । आप तो लाड प्यार में पली हैं और आपने कभी भी जीवन के बारे में गम्भीरता से विचार नहीं किया है ।"

उसने कहा,—"अच्छा तो बूढ़े बाबा, जरा मुझे भी उसके बारे में कुछ बता दीजिए, देखूं भी तो कि समझ पाती हूं या नहीं ।" मैंने कहा,—"सारी बात को संक्षेप में बताना हो तो मैं आप को एक संन्यासी के रूप में तैयार कर रहा हूं और

स्पष्ट है कि आपकी जैसी कन्या के सहवास से मुझे दूर रहना चाहिए। आप नहीं जानतीं कि एक युवा संन्यासी के लिए आपके आकर्षण कितने हानिकर सिद्ध हो सकते हैं। अब आप समझ लेंगी कि मैं जो कुछ कर रहा हूं वह सुरक्षा का एक उपाय भर है।" विनोदिनी ने कहा,—"आपने जो कुछ कहा एक शब्द में भी मेरा विश्वास नहीं है और मेरी प्रशंसा कर आप केवल सही बात मुझे बताना टाल रहे हैं। अब मेरी इस प्रातः की भेंट के सबसे महत्वपूर्ण भाग के बारे में यह कहना है कि आज रात्रि भोजन के लिए आपको निमंत्रण करने मैं आई हूं और मेरे माता-पिता ने यह कहा है कि यदि आप स्वेच्छा नहीं आते हैं तो आपको जबर्दस्ती पकड़ कर ले आऊं।" मैंने कहा,—"यदि आदेश इस प्रकार के हैं, तो मैं निश्चित रूप से उनका पालन करूंगा।" लगभग एक घण्टे तक अपने मित्रों और परिचितों के बारे में हमने बातचीत की और अपने निवास स्थान पर लगभग सात बजे पहुंच जाने के निश्चित आश्वासन लेकर ही विनोदिनी ने मुझ से विदा ली।

जब विनोदिनी चली गई तो उसने जो कुछ कहा था उसके बारे में मैं विचार करने लगा। यह सत्य था कि मैं जानबूझ कर अथवा किसी अन्य कारण से अपने मित्रों से लम्बे समय तक नहीं मिला था और पिछले कई दिनों से क्लब भी नहीं गया था। मैं उसके सहवास से दूर जा रहा था और किसी न किसी कारण समाज में रुचि खोने लगा था।

इस एक वर्ष में मैंने क्या पाया था यह भी एक समस्या थी। इस अवधि का सिंहावलोकन करने पर मुझे साफ दीख रहा था कि मुझे ऐसे कई अनुभव मिले थे जिनके बारे में मैंने सोचा तक न था। मेरे जीवनविषयक दृष्टिकोण में एक निश्चित परिवर्तन आया था और मूल्यों को परखने में भी एक बड़ा परिवर्तन हुआ था। मैंने ऐसे विचित्र पहलुओं का अनुभव किया था जिन्हें सामान्यतः मैं अनुभव नहीं कर सकता था और जो निश्चित रूप से मेरी बौद्धिक क्षमता से परे थे। निश्चित ही गुरुदेव के द्वारा निर्देशित विभिन्न क्रियाओं का वे परिणाम मात्र थे। इन सारी चीजों के बावजूद मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं किस ओर ले जा रहा हूं, वह कौन सा उद्देश्य है और मैं किस ओर धकेला जा रहा हूं। अर्थात् जब मैंने एक बार स्वतः को गुरुदेव के हाथों में पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया तो इस बात से कोई सरोकार नहीं था कि मेरे भविष्य में क्या लिखा लिख रखा है। मुझे इस बात से खुशी थी कि मैं गुरुदेव के निर्देशों का पूर्णरूप से पालन कर रहा था और परिणामों की चिंता मुझे कतई नहीं थी। आश्चर्य की बात यह भी थी कि कार्यालय में बड़ा काम होते हुए भी और घर में शारीरिक प्रयास और मानसिक दबाव के बावजूद न तो मैं थकान अनुभव करता था और न क्लान्त ही होता। मैं शारीरिक रूप से स्वस्थ था और अति

प्रसन्न मनोदशा में रहता था। मुझे गुरुदेव से मिलने कोई उत्सुकता नहीं थी क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास था कि योग्य समय पर वे जरूर आएंगे। एक बात स्पष्ट रूप से मेरे ध्यान में आ रही थी कि मुझ में अपार शक्ति भरी थी और मेरे प्रयत्नों के साथ वह बढ़ती जा रही थी। मुझे केवल यही करना था कि अपने स्वीकृत कार्य में शक्ति को लगा दूं इसलिए मुझे अपनी गतिविधियां बंद करनी पड़ती थीं। अपने माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् परिवार से मैं एक प्रकार से अलग हो चुका था। इसका कारण यह हो सकता था कि उनके बारे में चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं थी। मेरे आर्थिक मामलों की व्यवस्था इतनी अच्छी प्रकार बनी थी कि मुझे उनसे किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं होती थी। इस प्रकार मैं पूरी तरह आराम से था और मुझे किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं थी।

उस रात लगभग सात बजे मैं गुप्ताजी के यहां भोजन करने पहुंचा तो गुप्ता दम्पति मुझे देखकर प्रसन्न थे और उन दोनों ने मुझे वे ही सवाल किए जो विनोदिनी ने मुझे पूछे थे। श्री गुप्ता कुछ हद तक समझ रहे थे कि एक योग्य गुरु के मार्गदर्शन में मैं आध्यात्मिकता की गहराइयों में खोज कर रहा हूं। उन्होंने बड़ी तत्परता से मुझे बताया, "यह तो आग के साथ खेलने से भी अधिक खतरनाक है। मैं ऐसे कितने ही बुद्धिमान व्यक्तियों को जानता हूं जिन्होंने इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचारों के पीछे अपने उज्वल भविष्य को नष्ट कर लिया है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि आध्यात्म को समझने और शांति प्राप्त करने के लिए किसी को अपने सांसारिक जीवन का त्याग करना चाहिए। ऐसे भी कितने ही लोगों को मैं जानता हूं जिन्होंने सांसारिक जीवन का अंगीकार करके भी आध्यात्म में अच्छी-खासी प्रगति कर ली है। आपके समान बुद्धिमान व्यक्ति को तो जीवन में यश प्राप्त करनेमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए न कि किसी ऐसी बात के पीछे लगना चाहिए जो बुद्धि को जच नहीं रही हो। किसी अज्ञात वस्तु के लिए किसी वास्तविक, ठोस और निश्चित वस्तु को छोड़ देना मुझे मूर्खता समान प्रतीत होता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप जो कुछ कर रहे हैं उसके बारे में गंभीरता से सोच लें। केवल एक ज्येष्ठ व्यक्ति के नाते ही मैं आपको परामर्श नहीं दे रहा हूं अपितु मेरे मन में आपके प्रति सहज स्नेह है और मेरी इच्छा है कि जिस वस्तु के विषय में आप निश्चित रूप से नहीं जानते हैं उसके लिए आपको अपनी उपलब्धियों और सफलताओं का त्याग नहीं करना चाहिए।"

भोजन बहुत अच्छा बना हुआ था और हम सामन्य विषयों पर बातचीत करते रहे। मैं जिन क्रियाओं का अध्ययन कर रहा था उनके और मेरे गुरु के बारे में श्रीमती गुप्ता ने कई प्रश्न पूछे। उनकी उत्सुकता का समाधान करने की मनस्थिति में मैं नहीं था इसलिए मैंने उनका जवाब साधारण रीति से दिया। रात के साढ़े दस बजे मैं घर लौट आया।

काफी समय तक मुझे नींद नहीं आई। श्री गुप्ताजी की इस टिप्पणी ने कि वास्तविक को त्याग कर अस्पष्ट वस्तु के पीछे मैं भाग रहा हूं मेरे मन में विचार शृंखला प्रारम्भ कर दी थी। क्या मैं सचमुच ही किसी भ्रमपूर्ण वस्तु के पीछे दौड़ रहा था और अपना समय व्यर्थ में गंवा रहा था यह भी एक समस्या ही थी। जिसे वास्तविक कहा जाता है वह अपनी स्मृति के साथ जुडा रहता है। क्या गुप्ताजी स्वतः अपनी स्वार्जित संपत्ति और सीमित परिवार के साथ सुखी थे? सांसारिक जीवन में यदि व्यक्तिगत उपलब्धियां मनुष्य को सुखी नहीं बनातीं तो सांसारिक उपलब्धियों के पीछे लगे रहना मूर्खता ही समझी जाएगी। सांसारिक जीवन में कुछ प्राप्त करने के लिए, कुछ मिलान के लिए व्यक्ति को अपना सारा जीवन लगाना पड़ता है, सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है और अंत में उसके भ्रम का निराकरण हो जाता है कि जिस सुख, शांति को प्राप्त करने में उसने अपना सारा जीवन गंवा दिया वह तो प्राप्त हुई नहीं। क्या इसलिए अधिकांश लोगों के द्वारा न स्वीकारे मार्ग पर चलकर शांति और सुख मिलाने के लिय प्रयत्न करना अधिक तर्क संगत नहीं है? कम से कम दो व्यक्ति स्वामीजी और गुरुदेव—मैंने देखे थे जो न केवल सुखी और शांत प्रतीत हो रहे थे बल्कि यह उनका दावा भी था जिसे अप्रमाणित नहीं कहा जा सकता। उन पर अविश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं था और उनके मन में मुझसे असत्य बोलने अथवा मुझे गलत राह बताने का उद्देश्य रहा होगा ऐसा प्रतीत नहीं होता था। मैं पहले ही अपने परिवार से दूर हट चुका था और सांसारिक जीवन तथा आनंदों में बांध रखने वाली कोई बात नहीं रही थी। यदि आनन्द की भावना से तात्पर्य इन्द्रियों के माध्यम से मिलने वाले आनन्द से है तो आंतरिक प्रक्रिया द्वारा मुझे अधिक आनन्द मिल रहा था, जो अन्यथा नहीं मिल सकता था। इन्द्रियों से प्राप्त आनन्द यदि नित्य न भी कहा जाए तो भी वह अधकि समय तक टिकने वाला है। इसलिए सांसारिक जीवन में मेरा कोई हेतु नहीं रह गया था और मैं केवल यही कर सकता था कि किसी अपना शेष जीवन आध्यात्म के लिए समर्पित कर दूं। किसी न किसी प्रकार आध्यात्म के रहस्यों की छानबीन और अज्ञात की खोज ने मेरे मन को इस प्रकार जकड़ लिया था कि अब पीछे लोटना एकदम असम्भव था। मैं नहीं सोचता था कि मैं अंधकार में छलांग लगाने जा रहा हूं किन्तु विपरीत इसके, मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं अंधकार से प्रकाश में छलांग लगा रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास था कि ऐसा एक दिन जरूर आएगा जिस दिन मैं वह प्राप्त कर लूंगा, जिसे बहुत कम व्यक्तियों ने पाया होगा। इस प्रकार के विचार करते हुए लगभग आधी रात बीत चुकने के बाद मुझे नींद आई होगी।

दूसरे दिन जब मैं कार्यालय से लौटा तो घर पर गुप्ता दंपति मेरी प्रतिक्षा कर रहे थे। उनके आगमन के मन्तव्य के बारे में मैं कोई अनुमान नहीं लगा पा रहा था और

मैंने सोचा कि मार्ग से जाते समय वे सहज ही यहां पर रुक गए होंगे। सामान्य औपचारिकताओं के पश्चात् मैंने उन्हें पूछा कि उनका आगमन किसी विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ है अथवा सहज ही। श्री गुप्ता ने कहा,—"हम किसी निश्चित उद्देश्य को मन में लेकर ही यहां पर आये हैं और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर मैं आपसे बात करना चाहता हूं। हमने तय कर लिया है कि यथाशीघ्र विनोदिनी का विवाह कर दें। उसे पर्याप्त शिक्षा मिल चुकी है और उसके लिए मैंने काफी पैसा भी खर्च किया है। अब मेरी और मेरी पत्नी की आयु ढलना प्रारम्भ हो चुकी है और हम चाहते हैं कि उसका विवाह होकर वह अपना घर बसा ले। वह अपने लिए योग्य पति की खोज कर सके इसके लिए हमने उसे पूर्ण अवसर दिया है किन्तु लग रहा है कि वह चुनाव करने में असमर्थ हो रही है। कुछ भी हो, अब हमने तय कर लिया है कि हम उसके लिए योग्य पति की तलाश कर लें। हमारा अपना विवाह हमीने तय किया था और कदचित आप न जानते हों कि हम भिन्न जाति के हैं। हमारा आंतरजातीय विवाह हुआ है जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। मैं बहिष्कृत हूं और जाति से बाहर की लड़की से मेरा विवाह कर लेना पिताजी को अच्छा नहीं लगा इसलिए उन्होंने मुझे पैतृक संपत्ति से वंचित कर दिया और छोटी आयु में ही मुझे घर छोड़ देना पड़ा। वर्षों तक मुझे उपर्याप्त साधनों मर गुजारा करना पड़ा और कठिन पश्रिम से, सफलता के लिए दिन रात झगड़ते हुए मुझे संसार में अपना मार्ग बनाना पड़ा। अपनी वृद्धावस्था में पिताजी ने मुझसे पुनः मेल करने की इच्छा प्रकट की किन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी और काफी अंश तक मेंने अपना जीवन सफल बना लिया था। इसलिए मैं चाहता हूं कि मेरी बेटी का विवाह किसी होनहार नवयुवक से हो, चाहे वह किसी भी जाति अथवा सम्प्रदाय का क्यों न हो। मेरा और मेरी पत्नी का आपके बारे में बहुत अच्छा मत बन गया है और आज हम यहां पर यह जानने के लिए आये हैं कि आप हमारी बेटी को अच्छी तरह जानते हैं। क्या आप उससे विवाह करने के लिए स्वीकृति देंगे?" मैंने कहा,—"इस प्रकार सदभावनाए प्रदर्शित कर सचमुच ही आपने मुझे उपकृत किया है। किन्तु जैसा कि मैंने आपको कल बता दिया था, मैंने अविवाहित जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर रखा है और विवाह बद्ध होने की मेरी कोई इच्छा नहीं है।" कारण समझाते हुए मैंने उन्हें यह भी बताता, "अविवहित रहने का निर्णय किसी निराशा अथवा कुंठा का परिणाम नहीं है किन्तु परिपक्व विचार की ही परिणति है। विनोदिनी को सुखी विवाहित जीवन व्यतीत करते देखकर मुझे बड़ी खुशी होगी।" और इसके पश्चात् बंगाल के किसी श्री सेन के सम्बन्ध में मेरा मत पूछ लिया। श्री सेन मेरे ही कार्यालय में मुझसे कुछ निम्न पद पर कार्य कर रहे थे। मैंने श्री गुप्ता को बताया कि श्री सेन होनहार युवक हैं और विनोदिनी के लिए बड़े ही सुयोग्य हैं। वे स्वस्थ हैं, सुन्दर हैं और उनके परिचितों का उनके बारे में बड़ा ही

अच्छा मत है। वे विनोदिनी से कई अवसरों पर मिल चुके हैं और मैं सोचता हूं कि वे उन्हें अच्छी तरह जानते हैं।" गुप्ता दंपति ने मुझे कहा कि "मैं श्री सेन को इस प्रस्ताव से अवगत करा दूं और इस विषय में श्री सेन का क्या कहना है यह उन्हें बता दूं। उनकी सहायता करने का आश्वासन लेकर, कुछ समय पश्चात् वे चले गए।

दूसरे दिन सायंकाल मैं क्लब गया और श्री सेन से मुलाकात की। चाय लेते समय मैंने यही उन्हें पूछ लिया कि आपने विवाह कर जीवन बसाने के बारे में तय कर लिया है? उन्होंने आश्चर्य से मेरी ओर देखकर कहा,—"आपके मन में जो कुछ है उसे स्पष्ट कर दीजिए। आपके प्रश्न केवल उत्सुकतावश अथवा व्यर्थ की जानकारी के लिए नहीं हो सकते। आपको कुछ विशेष कहना है इसीलि इतने दिनों की अनुपस्थिति के पश्चात आप यहां पधारे हैं।" मैंने कहा, – "सेन साहब, यही समय है, अब आपको विवाह कर लेना चाहिए और जीवन में बस जाना चाहिए। अर्थात् स्वयं अविवाहित होते हुए आपको कोई परामर्श देने का मुझे अधिकार नहीं है किन्तु मैंने आजीवन अविवाहित रहना तय कर लिया है इसलिए मेरी बात बिलकुल अलग है।" जब मैंने उन्हें श्री गुप्ता के साथ पिछले दिन जो बात हुई थी उसके बारे में बताया तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ और वे मेरी बात पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने कहा कि यहां पर सब लोग श्री गुप्ता के दामाद के रूप से ही मुझे देख रहे थे। किन्तु मैंने कहा "न केवल अविवाहित रहने का निश्चय मैंने कर रखा है किन्तु अपना सेवा कार्य छोड़कर शेष जीवन आध्यात्मिकता का अध्ययन करने के लिए समर्पित कर देने का मेरा विचार है," तो वे चौंक गए। इस निर्णय पर अपना दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं कितना बड़ा त्याग करने जा रहा हूं और अवसरों को खो रहा हूं इसके बारे में सोच लूं। उनके मन में मेरे प्रति सम्मान रहते हुए उन्होंने कहा कि मेरा यह निर्णय किसी पागलपन से कम नहीं है।

मैंने फिर भी, उन्हें यही कहा कि मेरी जीवन वृत्ति के बारे में और कभी चर्चा करेंगे, इस समय मैं यह जानना चाहता हूं कि विनोदिनी जी के माता-पिता की ओर से यदि इस प्रकार का प्रस्ताव आता है तो क्या आप उनसे विवाह करने के लिए स्वीकृति देंगे? उन्होंने कहा कि मैं इस विशय पर सोचूंगा और रविवार की सुबह निवास स्थान पर मिलने चला आऊंगा। शाम के समय फोन पर मैंने श्री गुप्ता को बातचीत के बारे में बता दिया। दो दिन के पश्चात् मेरे निवास स्थान पर बिनोदिनी से मेरी मुलाकात हुई। उन्होंनें मुझे श्री सेन के विषय में पूछा, "मैंने प्रश्न किया, "इतने सारे लोगों की बात छोड़कर श्री सेन में ही आप क्यों रुचि दिखा रही हैं? इसके पीछे क्या कारण है? उसके मुख पर लालिमा छा गई किन्तु बिना किसी झिझक के वह

बोलीं,—"मेरे लिए प्रस्ताव के रूप में श्री सेन का नाम है। स्वाभविक ही मैं उनके विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहती हूं।" मैंने पूछा कि 'इस सम्बन्ध में आपकी राय क्या है?" उसने कहा कि "श्री सेन अच्छे व्यक्ति प्रतीत होते हैं किन्तु यदि मुझे पति के रूप में उन्हें स्वीकर करना है तो मुझे उनके विषय में और कुछ भी जानना चाहिए।" मैंने कहा,—"वह मेरे घनिष्ट मित्र होने पर भी मैं विश्वास के साथ कह कसता हूं कि वे स्वभाव से प्रिय, उच्च शिष्टाचार सम्पन्न व्यक्ति हैं, उनका भविष्य उज्ज्वल है और वे अच्छे सम्पन्न परिवार के हैं। मैं चाहता हूं कि आप उन्हें पति के रूप में स्वीकार कर लें। मझे पूरा विश्वास है कि आपका विवाहित जीवन सुखी होगा।"

रविवार की प्रातः श्री सेन मेरे यहां आये और उन्होंने कहा,—"सर, गत सप्ताह आपसे जो वार्तालाप हुआ था उस पर मैंने विचार किया और कुमारी गुप्ता से बात भी की है। मैंने अपने पिता से भी बात कर ली है और मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि हम दोनों को ही विबाह बन्धन में बधने के लिए कोई आपत्ति नहीं है।" इस समझदारी के निर्णय के लिए उन्हें बधाई देकर मैंने कहा कि विनोदिनी के साथ उनका जीवन सुखी रहेगा। दूसरे दिन उनकी सगाई पक्की हो गई और गुप्ताजी ने बड़ी धूमधाम के साथ इस अवसर पर हमें अच्छी खासी दावत दी। पता नहीं क्यों, विनोदिनी की सगाई हो जाने पर मुझे एक प्रकार से मानसिक दृष्टि से राहत मिलने का अनुभव हुआ।

इस प्रसग के लगभग आधे मास के भीतर ही मुझे कुमारी मालती गोखले का पत्र प्राप्त हुआ। वह विलायत से लौट आयी थी और बम्बई शासन के शिक्षा विभाग में एक अधिकारी के पद पर उसकी नियुक्ति भी हो चुकी थी। उसने यह भी सूचित किया था कि मेरा मित्र रमेश भी अमेरिका से लौट आया था। बड़े हर्ष की बात थी कि उन दोनों की सगाई की बात पक्की हो चुकी थी। उन दोनों का ही घनिष्ट मित्र होने के कारण उसने अति आग्रहपूर्वक मुझे आमंत्रित करते हुए मेरी उपस्थिति अनिवार्य है, ऐसा भी लिखा।

दो वर्ष बीत गए। विनोदिनी और मालती का विवाह संपन्न होकर दोनों का सांसारिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। भाई साहब मुझे बम्बई आने के लिए समय-समय पर लिखा करते थे, किन्तु काफी समय से मैं बम्बई नहीं गया था। मैं सोचता हूं कि न केवल समाज और मित्रों से ही बल्कि अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों से भी मैं दूर रह रहा था। उसके प्रति मुझे जितना लगाव था वह कम होता जा रहा था। और अब तो क्षीण हो चुका था। गुरुदेव ने मुझे जो कुछ करने के लिए कहा था उसे मैंने पूर्ण कर लिया था और तब शान्तियुक्त स्पष्टता का अनुभव मुझे

हो रहा था । जो बातें पहले मुझे अलौकिक लगती थीं अब मेरे समक्ष स्पष्ट हो गईं थीं और उनका कारण और परिणाम जानने लगा था । मेरा अधिकांश समय चिंतन और जिसे ध्यान कहा जाता है उसमें व्यतीत हो रहा था । मन को केन्द्रित करना मुझे पहले कठिन लगता था । अब मेरे लिए आसान हो गया था और उसके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता था । पुस्तकों में केवल संदर्भ को छोड़कर मुझे कोई रुचि नहीं थी । चिन्तन केवल अवलोकन को प्रक्रिया ही थी और नियंत्रक के रूप में मन अस्तित्व लुप्त हो चुका था । अब मैं अपने जीवन में किसी परिवर्तन की आशा कर रहा था और उसे सम्पन्न करने के लिए गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रहा था ।

वर्षों पश्चात् मुझे पुनः एक स्वप्न आया जिसमें मैं उसी साधु पुरुष से मिला जिनसे बर्फाच्छादित हिमशिखरों पर मैं मिल चुका था । वे बहुत प्रसन्न प्रतीत हो रहे थे । उन्होंने कहा, —'तुम्हारी प्रगति देखकर मुझे प्रसन्नता है और गुफा में अपना स्थान ग्रहण करने के लिए तुम शीघ्र ही यहाँ पर आने वाले हो ।" चौंककर मैं उठ बैठा किन्तु मुझे आश्चर्य नहीं हुआ था । मैंने सोचा कि यह स्वप्न मेरे जीवन में परिवर्तनसूचक भविष्यवाणी कर रहा था ।

शुभ दिन प्राप्त हो गया । प्रातःकाल के समय गुरुदेव मेरे कमरे में प्रवेश कर रहे हैं यह मैंने देखा । मेरे निवास स्थान पर उन्हें समीप देखकर मुझे कैसा लगा इसका वर्णन करने के लिए शब्द बड़े अपर्याप्त हैं । मेरे हर्ष की सीमा नहीं थी और कुछ समय तक मैं कुछ भी नहीं बोल पाया । उन्होंने मुझे उठाकर मेरा आलिंगन किया । वे दो दिन तक मेरे साथ रहे । उनके सहवास में समय कैसे बीत गया मुझे पता ही नहीं लगा । उन्होंने मुझे कुछ निर्देश दिए और अपने भविष्य के बारे में मैंने उनसे बातचीत की मुझे अपने अनुभवों के बारे में उन्हें बताने के लिए बहुत कुछ था और उन्होंने स्वेच्छापूर्वक मेरे संशय और समस्याएं हल कर दीं । हममें पूरा मेल था और मुझसे सम्बन्धित हर बात पर वे इतना स्पष्ट थे कि अपने बारे में अथवा अपने भविष्य के बारे में सोचने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था और एक बड़ा स्पष्ट मार्ग मेरे समक्ष खुला था । इस समय वे दिल्ली में किसी भी व्यक्ति से नहीं मिले किन्तु मेरे साथ सारे समय रहे और मैंने भी उनके आगमन के बारे मे किसी को नहीं बताया । वे हिमालय की ओर जाने के लिए ऋषिकेश चल पड़े ।

छः मास के भीतर ही मैंने अपनी सेवा से त्यागपत्र दे दिया । बड़ी कठिनाई से शासन ने मुझे सेवा मुक्त करने के लिए अनुमति दी । अपनी सेवा के पुरस्कार स्वरूप मुझे सेवानिवृत्ति प्रदान की गई किन्तु उसके लिए मेरी कोई इच्छा नहीं थी । इस प्रकार का पग उठाने के कारण मेरे मित्र और परिचित बड़े दुःखी थे ।

सभी ने केवल मुझे छोड़कर, मैंने जो कुछ किया उसके लिए दुःख प्रकट किया । अपना सामान मैंने बांध लिया और दिल्ली से विदा ली । विदाई कठिन थी । गुप्ता दंपति, विनोदिनी और उनके पति और मेरा सारा मित्र परिवार मुझे विदा देने उपस्थित था । मैंने उन्हें यह आश्वासन दिया कि सेवाकार्य के बन्धन से मुक्त होने के बाद अब मैं समय-समय पर मिलता रहूंगा । मैं बम्बई के लिए चल पड़ा ।

सातवा प्रकरण

मैंने अपना निर्णय बन्धुओं को बता दिया था और दिल्ली छोड़ने से पूर्व ही मैंने यह भी लिख दिया था कि मैं बम्बई आ रहा हूं । मैं सीधा बम्बई गया और भाई साहब स्टेशन पर मुझे मिले । मैं कुछ दिन तक उनके साथ रहा । मेरे निर्णय की सूझबूझ के बारे में उन्हें विश्वास दिलाना कुछ कठिन सा था । अपने बन्धुओं से परामर्श कर मैंने अपनी आर्थिक व्यवस्थाओं को पूर्ण कर लिया और मैं नगर गया । गुरूदेव के आगमन से पूर्व मैंने वहीं पर रहने का निर्णय किया था । मेरे माता-पिता की स्मृतियों और उनके साथ व्यतीत हुए सुखी दिनों की यादों से भरपूर मेरा पुराना घर अब पूरी तरह से बदल चुका था । प्रिय माता-पिता के बिना उस घर में रहना कठिन था। सेवकों ने घर को साफ-सुथरा रखा था और मेरे वहां पर रहने की बात सुनकर पुराने नौकर भी लौट आए थे । घर मेरे माता-पिता की स्मृतियों से परिपूर्ण था और प्रिय माता-पिता के बिना घर अकेले रहना कठिन था । बड़ी कठिनाई से अपनी भावनाओं पर मैंने काबू किया और नित्यकर्म में अपने आपको व्यस्त कर लिया । मेरे आगमन से पूर्व ही मेरे सेवा से त्याग पत्र देने की बात लोगों को पता थी । मेरे मित्र हितचिंतक और रिश्तेदार यह जानने के लिए बड़े ही उत्सुक थे कि इतनी अच्छी नौकरी मैंने क्यों छोड़ दी ? जब मैंने उन्हें बताया कि मुझे नौकरी में कोई रुचि नहीं रही और मैंने निवृत्त जीवन बिताना तय कर लिया है तो उन्हें संतोष नहीं हुआ। कुछ ने उसे मूर्खतापूर्व समझा और दूसरों ने मेरी सूझबूझ के बारे में संदेह प्रकट किया । दिन के बाद यह चर्चा समाप्त हो गई और अब उसे ही तथ्य के रूप में मान लिया गया ।

लगभग एक माह पश्चात् मेरे दोनों भाई अपने परिवार को साथ लिए मेरे साथ रहने के लिए आ गए । अब पुनः वह एक पारिवारिक सम्मेलन जैसा ही था और

खाली घर भर गया मेरे भविष्य के बारे में पुनः चर्चा छिड़ गई किन्तु मैंने स्पष्ट शब्दों में अपना अंतिम और दृढ़ निर्णय सुना दिया कि गुरुदेव का अनुसरण और चिरंतन शांति और सुख खुद अपने आप ढूंढ निकालना मैंने तय किया है। सत्य और सच्चे प्यार की खोज कर उसका अनुभव करने की भी मेरी इच्छा थी। मुझे अपनी बात पर अडिग देखकर इस विषय पर आगे बातचीत नहीं हुई। मैं और मेरे भाई चाहते थे कि सम्पत्ति के बारे में कार्यवाही पूर्ण कर ली जाए और पारिवारिक जीवन छोड़ने की व्यवस्थाओं को मैंने अंतिम रूप दे दिया। उन्होंने मुझसे आश्वासन ले लिया कि मैं अपने स्वास्थ्य की ठीक तरह से चिंता करता रहूंगा और अपने वास्तव्य स्थान के बारे में और सभव हो सके तो अपनी प्रगति के बारे में भी उन्हें बताता रहूंगा। अब जहाँ पर चाहूं वहां पर जाने के लिए मुक्त था और मुझे कोई बन्धन नहीं रह गया था।

मेरे बंधुओं के बम्बई लौट जाने के एक दो दिन पूर्व ही गुरुदेव हमारे घर पधारे। सबको उनके आने की खुशी थी। मुझे पता था कि गुरुदेव आएंगे और मैं किसी भी समय उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था और जब मेरे बंधुओं ने गुरुदेव को आते देखा तो उन्हें बड़ी राहत मिली। मेरे भविष्य के बारे में गुरुदेव ने क्या तय कर रखा है यह स्पष्ट रूप से जानने के लिए उन्हें गुरुदेव से मिलने की बड़ी उत्सकता थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि निरपवाद रूप से सभी ने गुरुदेव का अच्छा स्वागत किया। जब भाई साहब ने उन्हें पूछा तो गुरुदेव ने बताया कि उन्होंने कोई योजना नहीं बना रखी है और आगे कहा, —"माधव, अपने मन का मालिक है और अपना जीवनक्रम निश्चित करने के लिए पूर्ण रूप से समर्थ है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं उसकी देखभाल करता रहूंगा और उसकी सुरक्षा अथवा स्वास्थ्य के बारे में आपको संदेह नहीं होना चाहिए।" मेरे भाईयों ने कहा, —"गुरुदेव हमें पूर्ण विश्वास है कि माधव की देख-भाल व्यस्थित रुप से होती रहेगी। हमें तो उसके भविष्य के बारे में उत्सुकता है। उसने सेवा से त्याग पत्र दे दिया है और हमें पता नहीं कि आगे वह क्या करने वाला है। जब हमने पूछा तो माधव ने बताया कि आपके मार्ग दर्शन में, आपके साथ अपना शेष जीवन बिताना उसने तय कर लिया है। वास्तव में इस बात से उसका क्या मतलब है यह हमारी समझ में नहीं आया। हम सोचते हैं कि वह किसी अस्पष्ट और अनिश्चित वस्तु के पीछे भाग रहा है। वह हमारा प्रिय बधु है और स्वाभाविक ही हम चाहते हैं कि उसके जीवन में विफलता न हो और वह जहाँ कहीं भी रहे और जो कुछ भी करता रहे, सुखी रहे। हमें विश्वास है कि आप योग्य प्रकार से उनकी देखभाल करेंगे और यदि कभी हमारी सहायता की आवश्यकता होने पर आप हमें बतायें तो हम आपके आभारी रहेंगे। हमारे माता-पिता की यह इच्छा थी कि माधव का भाग्य आपके हाथ में सौंप दिया

जाए और उसे पूरी तरह से आपके सुपुर्द कर दें में हमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हैं।" गुरुदेव के मुख पर गभीरता थी। उन्होंने कहा, —"मुझे खशी है कि मुझमें आपका विश्वास है। यदि मुझमें आपको श्रद्धा है और कल्याण करने की मेरी क्षमता के बारे में आपको विश्वास है तो आपको माधव और उसकी भलाई के बारे में चिंतित रहने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि आप कहते हैं, आपके माता पिता ने माधव को मेरे सुपुर्द कर दिया है और उनके सुपुत्र के नाते आपने उनकी इच्छाओं को पूर्ण किया है। माधव ने संसार का अनुभव पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर लिया है और उससे कुछ प्राप्त करने की मेरी इच्छा नहीं है। जैसा कि मैं समझता हूं, योग की गहराइयों में जाने, आध्यात्मिकता समझने और सत्यता को जानने की बात उसने तय की है। यदि अपना लक्ष्य प्राप्त करने में मैं किसी प्रकार से उसकी सहायता कर पाता हूं तो मैं अपना कर्तव्य पूर्ण कर लूंगा अथवा उसके माता पिता द्वारा मुझे जो काम सौंपा गया है उसे पूरा कर लूंगा। जब तक वह मेरे साथ है तब तक मैं उसकी पूरी देख-भाल करता रहूंगा किन्तु यदि वह मुझे छोड़ देने अथवा अकेले जीवन बिताने की इच्छा करता है तो मैं उसके मार्ग में बाधक नहीं बनूंगा। किसी भी परिस्थिति में मैं अपने निर्णय उस पर थोपूंगा नहीं अथवा मेरी इच्छा के अनुसार चलने के लिए उसे बाध्य नहीं करूंगा। मैं आपको इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि उसके जीवनक्रम में कोई भी बदल हो अथवा कोई दूसरी बात हो तो आपको तत्काल सूचना मिल जाएगी। इस समय तक आप जान गए होंगे कि आप सब लोगों से बिल्कुल भिन्न प्रकार की श्रेणी में माधव आता है। मैं यही कहूंगा कि इस संसार में हर व्यक्ति के लिये अलग प्रकार का अभिनय करना होता है। किसी जीव के जीवन में नियति भी एक महत्व-पूर्ण भाग अदा करती है। चाहे कोई व्यक्ति इसे माने या न माने, उसे निरिक्षण और परिणाम द्वारा यह बात स्वीकारनी ही पड़ेगी। यदि आप यह सोचते हैं कि स्वामीजी को या मुझे माधव के जीवन से कुछ करना है तो मैं आपको बता दूं कि हमें उससे कुछ भी नहीं करना है। किसी बिल्कुल भिन्न शक्ति के द्वारा बस निर्देशित है जो हमसे कहीं अधिक श्रेष्ठ है, और जिसे आप नियति या और कुछ कह सकते हैं। उसके भविष्य में क्या लिखा है यह कोई नहीं जानता लेकिन मुझे विश्वास है कि वह बहुत महान है और किसी व्यक्ति ने जो कुछ भी सोचा होगा उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इस अवस्था में मैं इससे अधिक कुछ भी नहीं कह सकता किन्तु वह किसी भी क्षेत्र में रहें, मैं उसके लिए अति सफल और तेजस्वी जीवन की कामना करता रहूंगा।" मेरे बंधुओं नें कुछ भी नहीं कहा। दो दिन के भीतर ही वे बम्बई चले गए।

जाने से पूर्व दोनों नें ही लगभग दो घंटें तक गुरुदेव से बातचीत की थी। उस समय मैं घर में उपस्थित नहीं था। यद्‌यपि अपने बंधुओं को मैंने बता रखा था कि अपनी यात्रा से लौटने के तुरन्त पश्चात् मैं उनसे भेंट करूंगा, फिर भी विदा होते समय दोनों के ही आंखों में आंसू थे। मुझें लगा जैसे उन्हें मेरी बात सें विश्वास नहीं हो रहा था। उनके बम्बई जाने के दूसरे ही दिन मैंने घर में ताला डाला और गुरुदेंव के साथ बगाल जाने के लिए चल पड़ा। यात्रा के दौरान कोई विशेष बात नहीं हुई और हम ठीक तरह सें कलकत्ता पहुंच गए।

चौथा भाग

पहला प्रकरण

मुझे आशा थी कि हम किसी बंगाली सज्जन अथवा मारवाडी व्यापारी के यहां निवास करने जाएंगे किन्तु गुरुदेव मुझे एक मन्दिर ले गए जहां पर एक अच्छे घर में एक सन्यासी रह रहे थे। इस गृह का नाम आनन्दाश्रम था और यहाँ पर कई साधु और सन्यासी आया करते थे। और हमारे मेजबान कृष्णानन्दजी महाराज बंगाल के प्रसिद्ध व्यक्तियों मैं से थे। वह ब्रह्मचारी थे और गुरुदेव को समीप से जानते थे। जब उन्होंने हमें देखा तो उन्हें सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई और गुरुदेव का वास्तव्य यथा-संभव सुखपूर्वक हो इसके लिए वह बड़े ही प्रयत्नशील थे। साधु और सन्यासियों के मध्य गुरुदेव बड़े आराम से थे और सभी उनका आदर करते थे। मुझे यह वातावरण बड़ा ही विचित्र लगा और मैं कुछ परेशान सा था। मुझे यह एक नया अनुभव था और इस प्रकार के लोगों से मैं अभी तक नहीं मिला था। मुझे वहां पर असुविधा हो रही थी और मैंने सोचा कि उन लोगों के जीवनयापन का ढंग एक प्रकार से अस्वच्छ और गंदा था। मुझे संदेह था कि मैं अधिक समय तक उनके साथ कैसे रह संकूगा। मुख्य रूप से इसका कारण मेरी शिक्षा और संवर्द्धन का वह तरीका था जो संस्कार बद्ध रूप में अभी भी कहीं मेरे पन या स्मृति के किसी कोने में दबा पड़ा था।

मेरे विचार और भावनाएं गुरुदेव ने जान ली थीं किन्तु उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा। गुरुदेव और साधुओं के विभिन्न गुटों में जो वार्तालाप होता रहता उसमें मैं सम्मि-नहीं होता लित था। जो लोग मेरे संपर्क में आ रहे थे उनके द्वारा धीरे-धीरे मैं भी उनके वार्तालाप में सम्मिलित होने लगा और लगभग एक सप्ताह के भीतर ही उनके कार्यकलापों में मेरी रुचि बढ़ने लगी। उनके जीवन के ढंग से भी मैं परिचित हो गया और मैंने देखा कि वह न केवल सादगी पर ही आधारित था बल्कि उसके कारण मनुष्य में रहने वाला अंहकार कम होने, "अंह" प्रक्रिया के घटने में सहायता होती थी और आध्यात्मिकता की दृष्टि से निश्चित रूप से उसका एक शैक्षणिक मूल्य था। अब मैं अनुमान कर सका था कि मुझे गुरुदेव यहां पर क्यों लाए थे और किसी आलीशान भवन में रहने के स्थान पर हम आश्रम में क्यों रह रहे थे। गुरुदेव का दर्शन करने के लिए कितने ही धनी व्यक्ति आ चुके थे और उन्होंने गुरुदेव को अपने निवास स्थान पर आमन्त्रित भी किया था किन्तु गुरुदेव ने बड़ी दृढ़ता से किसी न किसी आधार पर, जो मेरी दृष्टि में बड़े साधारण थे, उनके निमन्त्रण को अस्वीकार किया। लगभग पन्द्रह दिन

से भी अधिक समय तक हम कलकत्ता में थे, । गुरुदेव ने बता रखा था कि मैं खुल कर मठ में रहने वालों और समय-समय पर वहां आने वाले साधु और सन्यासियों के साथ मिला करूं । इस सारे समय तक गुरुदेव हमारे मेजबान के साथ ही रहे, बाहर घूमने के लिए नहीं गए । नये वातावरण और जिन लोगों से मिलने का अवसर मुझे जीवन में अभी तक नहीं मिला था उनमें घुलने मिलने के प्रति मेरी प्रतिक्रियाओं को वे बारीकी से देख रहे थे ऐसा मुझे लगा । मैंने पाया कि जिनसे मैं मिला लगभग वे सब लोग किसी बिशिष्ट गुरु के अनुयायी थे और किसी पंथ अथवा सम्प्रदाय में श्रद्धा रखते थे । जीवन के विभिन्न पहलुओं को बारीकी से देखना और उसे विविध दृष्टिकोणों से देखने रहना बड़ा मजेदार था । किसी न किसी प्रकार मुझे लगा कि यद्यपि उनमें कई व्यक्ति पूर्णत्व प्राप्त कर लेने का दावा करते थे और जिन्हें अतिमानवी शक्तियां कहा जाता है उन्हें उन्होंने हस्तगत कर लिया है ऐसा माना जाता था फिर भी आध्यात्मिकता क्या है यह उन्होंने नहीं समझा था ।

और उनमें से किसी ने भी स्पष्टता को प्राप्त नहीं किया था जो मैंने गुरुदेव और स्वामी जी में देखी थी । मुझे लगता है कि इसका कारण यह था कि वे लोग किसी व्यक्ति या शैली का अनुकरण कर रहे थे और उन्होंने किसी से जो कुछ सुना था या पुस्तकों में पढ़ा था उसे प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे । मैं जिन लोगों से मिला था उनमें बुद्धिमानी खोज करना या मुक्त चिंतन करना इसका अभाव था । विभिन्न क्रियाओं साधनाओं और भक्ति के द्वारा उनमें से कई व्यक्तियों ने कुछ शक्तियां अर्जित की थीं किन्तु सत्यता और आध्यात्मिकता के बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं था । उनमें से कुछ लोगों ने, जिनके प्रति मुझे आत्मीयता लगने लगी थी, मेरे ज्ञान का आकलन करने और गुरुदेव से मैंने कितना सीखा है यह जानने का प्रयास किया । उनमें से लगभग सभी व्यक्ति एक बात पर सहमत थे कि गुरुदेव उड़े महान गुरू हैं और उन जैसा गुरू प्राप्त होने के कारण मैं बड़ा भाग्यवान हूं । उनमें से कुछ लोगों ने मुझे विभिन्न मंत्र सिखाने और कुछ चमत्कारों का प्रदर्शन मेरे समक्ष करने का प्रयास किया । जब मैंने उन्हें बताया कि मैं चमत्कारों और मंत्रों को विशेष महत्व नहीं देता और मेरी मान्यता है कि उनके बिना भी आसानी से चमत्कार किये जा सकते हैं तो उन्हें कुछ निराशा हुई । मैंने इस धारणा पर बल देने का प्रयास किया कि यदि कोई "जीवन शक्ति" और "सत्य" को समझने और साक्षात् करने का प्रयास करता है तो शक्तियां अर्जित करने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता उसे नहीं है । मैंने जो कुछ कहा उसे बहुत कम मात्रा में वे समझ पाते थे और उन्होंने सोचा कि इस मार्ग में मैं अनुभवी व्यक्ति नहीं हूं । कुछ भी हो, मेरा समय बड़ी अच्छी तरह व्यतीत हो रहा था ।

कलकत्ता आने के उपरान्त अपने वास्तव्य स्थान और स्वास्थ्य आदि के बारे में मैंने भाई साहब को दो पत्र लिखे थे । कलकत्ता में एक दिन भोजन के उपरान्त हम लोग बैठे हुए थे और इस मार्ग के कुछ विभिन्न प्रसिद्ध संतों के बारे में बातचीत कर रहे थे । उन साधुओं में से एक ने, जिसे मुझसे बड़ा लगाव हो गया था, गुरुदेव से पूछा,—"माफ करें गुरुदेव, यह आपका युवा शिष्य हमें 'जीवन शक्ति' और साक्षात्कार के बारे में बताता रहता है । वह पद्धतियों और प्रक्रियाओं को कुछ भी महत्व नहीं देता जो हमारे दृष्टिकोण से परमावश्यक है । गुरुदेव क्या आपका यही विश्वास है कि प्रणालियां और प्रक्रियाएं केवल समय और शक्ति का उपव्यय ही हैं ? क्या आप सोचते हैं कि ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार को प्रणालियों और प्रक्रियाओं के बिना भी प्राप्त किया जा सकता है ? क्या आप सोचते हैं कि वह व्यक्ति जिसने साक्षात्कार कर लिया है, मन्त्रों की महायता के बिना शक्तियां अर्जित कर सकता है ?" एक एक कमरे में चल रही गडबड शांत हो गई । इस विय पर गुरुदेव का मत जानने के लिए हरेक व्यक्ति उत्सुक था । गुरुदेव ने कहा,—"ज्ञान क्या होता है और साक्षात्कार क्या होता हैं इसे जाने बिना ही आपने ये प्रश्न पूछे हैं । उसी प्रकार मन्त्रों का अर्थ, उनका कारण और परिणाम आप नहीं समझे हैं । यद्यपि आपमें से अनेक व्यक्तियों ने उनके प्रयोगों से शक्तियां प्राप्त कर ली हैं । किन्तु क्या आपने कभी यह सोचा कि वे प्रभावशाली क्यों हैं ? जिस विषय पर आप मेरा मत जानना चाहते हैं वह इतना हल्का और तुच्छ नहीं है जिस प्रकार अपाने मुझे पूछा है । मेरा स्वीकारात्मक अथवा नकारात्मक उत्तर आपको विषय का सही परिप्रेक्ष्य नहीं प्राप्त करा सकता और उससे आपका समाधान नहीं होगा । इस विषय को समझने के लिए हमें सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि की रचना ईश्वर किसे कहते हैं, माया किसे कहते हैं और आप हम तक की सृष्टि से प्रारम्भ करना पड़ेगा । इस सबका अर्थ क्या है यह समझाने के लिए स्वाभाविक ही कुछ समय लगेगा । इसलिए में सुझाव दूंगा कि किसी विशेष वस्तु अथवा घटना से सम्बन्धित विशिष्ट प्रश्न आप मुझसे पूछें तो आपको समझने और मुझे समझाने में भी आसानी रहेगी । हमारे मेजबान श्रीं कृष्णानन्द जी ने कहा, "गुरूदेव, क्षमा करें, हमारे में से अनेक व्यक्ति आपकी बातें सुनने का अवसर प्राप्त होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं और यदि इस विषय पर आप प्रकाश डालें तो हम अपने को बड़ा भाग्यशाली मानेंगे ।" उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि कक्ष में अपना स्थान ग्रहण करें और हम लोगों से भी अपना स्थान ग्रहण कर लेने के लिए कहा । कुछ अन्य लोगों को भी इस बात की सूचना दी गई जो गुरुदेव का भाषण सुनना चाहते थे । कुछ ही समय में कक्ष पूरी तरह से भर गया । श्रोतागण में अधिकांश साधु और संन्यासी थे और कुछ बाहर के लोग भी थे जो उस समय मन्दिर में उपस्थित थे । गुरुदेव ने अत्यन्त स्पष्ट वाणी में प्रारम्भ बोलना किया ।

गुरुदेव ने कहा,— "जैसी कि आपकी इच्छा थी आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए और अपनी योग्यता के अनुसार उन्हें समझाने और आपकी कठिनाइयां हल करने के लिए मैं यहां पर उपस्थित हूं। प्रारम्भ में ही मैं आपको बता दुं कि मेरा भाषण केवल उन्हीं लोगों के लिये है जो तत्परता से खोज में लगे हैं और वस्तुओं को जानने के लिए जिनके मन में प्रामाणिक इच्छा है। अब आप मुझे बता दें कि आपकी कठिनाइयां और संदेह क्या हैं?" श्रोताओं में से किसी ने कहा,—"क्षमा करें महाराज, क्या हमें बतायेंगे कि ब्रह्म और माया क्या है? यदि माया भ्रम है तो ज्ञान रूप ब्रह्म उसके द्वारा क्यों मोहित होता और आच्छादित होता है? मनुष्य के लिए माया के बंधन हटा देना कैसे संभव है जिसमें सर्वशक्तिशाली ब्रह्म, उलझ गया है?" गुरुदेव ने कहा,—"ब्रह्म और माया क्या हैं यह समझने के लिए पहले आपको यथार्थ क्या और अयथार्थ क्या है यह जानना होगा। माया और ब्रह्म दोनों ही एक अर्थ में अयथार्थ होने के कारण केवल उपमाओं और रूपकों द्वारा ही शाब्दिक स्तर पर उन्हें समझा जा सकता है। माया और ब्रह्म को जानने के लिए केवल अनुभव ही सहायक होता है और यह अनुभव व्यक्ति को होता है। मैं यदि उदाहरण दूं तो मैं यह कहूंगा कि आप में से कई लोगों ने सूरज की गर्मी के कारण जो मरीचिका बनती है उसे देखा होगा। वह इतनी यथार्थ लगती है कि जिसे मरीचिका के बारे में पहले से ज्ञान नहीं होता वह उसे वास्तविक ही समझ लेगा। वह व्यक्ति मरीचिका से प्रवंचित ही नहीं होगा तो जो व्यक्ति उस मरीचिका को वास्तविक मानने से परावृत्त करने का प्रयास करेगा उसे वह मूर्ख और नासमझ मान लेगा। उसे अपनी मूर्खता का ज्ञान केवल ज्ञान और अनुभव से ही हो सकता है अन्य किसी से नहीं। उसी प्रकार माया भी जीवनशक्ति या जिसे चैतन्य या ब्रह्म कहा जाता है उसी के कारण होती है।

"माया के भ्रमपूर्ण अस्तित्व को मानवा देना केवल एक ही बात हो सकता है जिसे ज्ञान अथवा अनुभव कह सकते हैं। मरीचिका केवल तभी दिखती है जब आकाश में सूरज हो अर्थात सूर्य के उदय से पूर्व या अस्त के बाद उसे नही देखा जा सकता। उसी प्रकार जब जीवन शक्ति अपने सबसे अच्छी दशा में होती है तभी पुरुष या ब्रह्म के कारण माया बनती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि पुरुष या ब्रह्म अपनी सबसे अच्छी दशा में जब बना होता है, उसी समय माया का अस्तित्व है, किसी दूसरे समय नहीं। और अच्छी तरह समझाने के लिए जब ब्रह्म क्रियाशील हो, माया का अस्तित्व होता है। मरीचिका में आप प्रकृति की संरचना और उसके भिन्न पहलुओं को देखते हैं। यह सब पूर्ण रूप से हट जाता है और उसकी निशानी भी नहीं रहती। सूर्य पूर्ण रूप में नहीं चमकता जब वह क्रियाशील नहीं होता, उसी प्रकार माया की सारी संरचना तब हट जाती है जब ब्रह्म क्रिया-

शील नहीं होता। समझने में आसान रहे इसके लिए इस उपमा को आगे बढ़ाने पर सूर्य वास्तव में तो कभी अस्त नहीं होता और उदय भी नहीं होता बल्कि सारे समय अपनी कक्षा में घूमता रहता है। इसलिए वह स्थायी व नष्ट न होने वाला है किन्तु मारीचिका नष्ट होने वाली है, उसे जन्म है और विनाश भी। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि ब्रह्म जीवन शक्ति है जिसे जन्म या मृत्यु नहीं है किन्तु माया के साथ यह नहीं है। क्या अब स्पष्ट दहीं होता कि प्रत्येक वस्तु जिसे जन्म और मृत्यु है, आरम्भ और अन्त है, विनाशशीलता और नाश है, संक्षेप में पाया है।

"आपके प्रश्न के दूसरे भाग का विचार करें कि माया के द्वारा ब्रह्म मोहित होता है और उलझ जाता है। आप देखेंगे कि सूर्य के कारण मरीचिका बनती है, मरीचिका का अस्तित्व सूर्य पर निर्भर रहता है और उसका अन्त भी। केवल यही नहीं तो आप देख सकते हैं कि मरीचिका में सूर्य परावर्तित हुआ है और सूर्य के द्वारा विकिरित शक्ति पर सारी को सारी मरीचिका काम करती है। एक क्षण के लिए समस्त पहलू को हम उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखते हैं जो उस मरीचिका के विषयों में से एक है। उसे यह दिखेगा कि मरीचिका के कार्य में सूर्य भी सम्मिलित हुआ है या पूरी तरह वह उसी में निमग्न हो गया है और मरीचिका में उसे विशिष्ट आनन्द या खास रूचि है। संक्षेप में, उसे यह लगेगा कि मरीचिका की सत्ता में सूर्य पूरी तरह उलझ गया है। कृपया मुझे यह बतायें कि मरीचिका में सूर्य उलझ गया है यह मानना सही कहा जाएगा? निश्चित रूप से नहीं। सूर्य को मरीचिका से कोई मतलब नहीं है, मरीचिका सूर्य से निकली किरणों से बनती है। यही नहीं, सूर्य को इतना ध्यान भी नहीं रहता कि एक ही समय उसके कारण एक या कई मरीचिकाएं बन रही हैं। उसमें उसे आनन्द भी नहीं है, रूचि भी नहीं उसे चिन्ता नहीं कि मरीचिकाऐं बनती हैं, बनी रहती हैं या बिगड़ जाती हैं। उसी प्रकार ब्रह्म, पुरुष, परमात्मा अथवा चैतन्य, उसे आप जो कुछ कहते हैं, माया के फंदे में फंसता या उलझता नहीं, क्योंकि उसमें उसे कोई रूचि नहीं, और उसके बनने में उसे कोई आनन्द नहीं आता और जब वह नष्ट हो जाती है तो वह दुखी नहीं होता। उसके अस्तित्व का भी उसे ध्यान नहीं रहता।

"अब माया के बन्धन में मनुष्य प्राणी को फसाने वाली बात कौनसी है और इसमें से बाहर कैसे निकलें? यह समस्या सामने हैं। फिर एक बार सूर्य और मरीचिका का दृष्टान्त लें। आप जान लेंगे कि मरीचिका उसके लिए यथार्थता है जिसे इसका अनुभव और ज्ञान नहीं है। आप ने यह भी देखा होगा कि तालाब अथवा पानी से भरी बाल्टी में जब सूर्य अथवा चन्द्र का प्रतिबिम्ब बनता है तो बालक सोचते हैं कि सूर्य या चन्द्र पानी में गिर गये हैं। अतः इससे यह स्पष्ट है कि अनुभव सहित ज्ञान ही एक ऐसा साधन हैं जो माया को काट देता है। अतः यह काफी स्पष्ट हो जाता है माया की बला टालनी हो तो ज्ञान और अनुभव ही एक मात्र मार्ग है। कृपया यह

ध्यान में लें कि उपरोक्त दृष्टान्तों को केवल ब्रह्म और माया के सम्बन्ध को समझाने के लिए ही दिया गया है अतः उनका अधिक परीक्षण करने में अपनी शक्ति का अपव्यय न करें। इस प्रकार आप देख रहे हैं कि माया की निर्मिति करना ब्रह्म का उद्देश्य कदापि नहीं रहा है। ब्रह्म सर्वव्यापी शक्ति और जीवन है। इस शक्ति और सामर्थ्य से ही माया की सारी रचना है। अतः ब्रह्म की शक्ति और सामर्थ्य सब चेतन, अचेतन पदार्थों में, तात्पर्य यह कि माया की सारी संरचना में व्याप्त है। अतः यह स्पष्ट है कि यही एक सर्वव्याप्त सामर्थ्य अथवा ब्रह्म भिन्न-भिन्न रूपों और लक्षावधि निर्मित पदार्थों की अपेक्षा बिना अपने आप में परिपूर्ण है। यह सामर्थ्य, शक्ति अथवा चैतन्न या तो विषय या विषयी के रूप में स्थित है और इसे जाना जा सकता है और नहीं भी जाना जा सकता। यह विद्यमान रह सकता है और सुप्त भी किन्तु इसके बिना कोई अवकाश या शून्य कभी भी नहीं हो सकता। आप सब विद्युत से परिचित हैं। इस कक्ष में जहां हम बैठे हैं, कितने ही विद्युतदीप जल रहे हैं। सामान्यतः विद्युत निर्माण गृह में कितनी ही विद्युत पैदा हो रही है इसका ज्ञान हमें नहीं होता किन्तु विविध कार्यों में उसका उपयोग हो सकता है यह हम जानते हैं।

जब आप विद्युत का स्विच दबाते हैं तो विद्युत शक्ति विविध बिजली के उपकरणों या उससे चलने वाली मशीनों के द्वारा दृष्टिगोचर होती है। यदि कोई कहे कि बिजली केवल वहीं पर है जहां विद्युतदीप जल रहा है या उपकरण काम कर रहा है या मशीन चल रही है और तार में और कहीं पर भी नहीं है तो क्या कहना सही होगा ? अर्थात् यह सही नहीं होगा। वह पूरे तार में दौड़ रही है और केवल वहीं पर दिख रही है जहां उसके प्रकट होने के लिए कोई साधन उपलब्ध हैं। उसी प्रकार ब्रह्म, चैतन्य, शक्ति अथवा ईश्वर सर्वदूर व्याप्त है, सारी सृष्टि में भरा है किन्तु जहां उसका आस्तित्व प्रकट होने के लिए वस्तु बनी है वहीं पर उसका अस्तित्व जाना जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि ब्रह्म माया के द्वारा व्यक्त होता है अथवा दूसरे शब्दों में ब्रह्म का व्यक्त रूप माया है। आप यह भी देखेंगे कि उस एक या अनेक वस्तुओं का अस्तित्व, जो चैतन्य या ब्रह्म के अस्तित्व को व्यक्त करती हैं, समय के दृष्टिकोण से वे जिन पदार्थों से बनी होती हैं उस पर निर्भर करता है, मर्यादित होता है किन्तु समय तत्व की अपेक्षा के बिना उनकी विनाशशीलता निश्चित है। जब विद्युदीप फुक जाता है अथवा उपकरण खराब हो जाता है उस समय हम नई विद्युत धारा नहीं लाते किन्तु उस वस्तु को बदल देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्युत शक्ति अथवा विद्युत धारा वही है और बदली हुई वस्तुओं में वह पुनः व्यक्त होती हैं। इसलिए जिसके माध्यम से विद्युत व्यक्त होती है वह वस्तु महत्वपूर्ण नहीं है जो ठीक की जा सकती है, नयी लायी जा सकती है या बेकार होने पर फेंक दी जाती है। किन्तु महत्व पूर्ण है। विद्युत शक्ति और विद्युत प्रवाह। इस प्रकार आप देखेंगे कि सृष्टि रचना में विभिन्न, जड़ अथवा चेतन वस्तुओं

और रूपों का बहुत कम मूल्य है जब हम उन्हें उस शक्ति अथवा सामर्थ्य सम्बन्ध में देखते हैं जो उन्हें जीवित रखती हैं या उनमें व्याप्त हैं।

"आपने यह भी देखा होगा कि विद्युतदीपों का प्रकाशन उनकी क्षमता के अनुसार कम ज्यादा होता है। इसका मतलब यह हैं कि सामर्थ्य या शक्ति को अभिव्यक्त करने की क्षमता उस वस्तु को बनाने वाले पदार्थ पर निर्भर करती है और भिन्न-भिन्न वस्तुओं में यह भिन्न-भिन्न हो सकती है। सृष्टि में जो मानव इस सर्वव्याप्त शक्ति को अधिक अभिव्यक्त करते हैं "अवतार," साधु आदि कहा जाता है। स्वाभाविक ही अधिक अभिव्यक्त करने की क्षमता उस सूक्ष्म पदार्थ पर निर्भर करती है जिसकी वह वस्तु बनी है।

ब्रह्म चैतन्य अथवा ईश्वर की अभिव्यक्ति जहां तक मनुष्य प्राणियों का सम्बन्ध है, उनके अनुभव, ज्ञान और समझ पर निर्भर करती है।

श्रोताओं में से किसी ने कहा, "व्यवधान के लिए क्षमा हो, महाराज आपने यह कहा कि जब ब्रह्म क्रियाशील या अपनी सबसे अच्छी दशा में होता है उस समय माया बनती है और जब वह अक्रियाशील होती है तब वह हट जाती है। महाराज, क्या आपका यह तात्पर्य है कि ब्रह्म अपने रूपों को बदलता है और कभी क्रियाशील तो कभी अक्रियाशील होता है ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जीवन शक्ति चैतन्य में लहरों जैसा ज्वार-भाटा आता हैं ?"

गुरुदेव ने कहा,—"मुझे खेद है कि आपने मेरी बात को ठीक तरह से नहीं सुना है। मैंने आपको पहले ही बता रखा था कि आप केवल दृष्टान्तों पर ही विचार न करें किन्तु विषय समझ लें जिसके लिए दृष्टान्त दिये है। आप यदि कल्पनाओं, जानकारी और बौद्धिक चेतना से अपनी समझ ढक लेते हैं तो विषय समझ लेना आपके लिए असम्भव होगा। संक्षेप में, आपकी समस्या वैसी ही बनी रहेगी। फिर भी, यदि आप सब जानना चाहते हैं या आप लोगों का प्रश्न यही है तो मैं कहूंगा कि सूरज की गरमी स्थिर रहती है किन्तु हम दूसरी तरह से अनुभव करते हैं और सृष्टि के लिए भी वह कई प्रकार से सहायक होती है क्योंकि पृथ्वी की भिन्न गतियों, वायुमंडल में परिवर्तनों और भिन्नताओं तथा अन्य कई बातों के कारण हम सूरज की गर्मी को अलग-अलग कोणों से प्राप्त करते हैं। ये सब बातें सूर्य पर असर नहीं करती जहां तक गरमी को विकिरण करने को उसकी क्षमता का सम्बन्ध आता है। उसी प्रकार ब्रह्म, चैतन्य अथवा जीवन शक्ति परिपूर्ण और स्थिर है और वह कम ज्यादा नहीं होती। उसी समय किन्हीं बातों के कारण चैतन्य से निकलने वाली शक्ति के द्वारा शून्य अथवा अवकाश में, उसे आप कुछ भी नाम दें, एक प्रकार की क्रिया-

शीलता निर्माण होती है और यह माया के अस्तित्व को बनाती है। सूरज से निकली गरमी केवल कुछ जगहों पर ही भिन्न-भिन्न तत्वों पर निर्भर होकर, मरीचिकाओं को जन्म देती है, सारे ब्रह्माण्ड या भूतल के हर इंच पर नहीं। उसी प्रकार, शून्य में माया बनना कुछ बातों पर निर्भर करता है, इसका ब्रह्म के साथ सम्बन्ध नहीं होता तो शून्य अथवा अवकाश के साथ होता है।"

गुरुदेव का भाषण लगभग दो घण्टे से अधिक समय से चल रहा था और अत्यन्त शान्तिपूर्ण वातावरण में उनकी गूंजने वाली वाणी एक कोने से दूसरे कोने तक सुनी जा रही थी।

उसी समय हमारे मेजबान श्री कृष्णानन्दजी महाराज ने कहा, "गुरुदेव, आपको प्रवचन करते दो घण्टे से भी ज्यादा समय हो चुका है। आज आप और अधिक कष्ट लें यह मुझे उचित नहीं लगता और कुछ लोगों को काफी दूर चलकर घर पहुंचना है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि कल सांय सात बजे से पुनः वार्तालाप जारी रहे।" इस प्रकार की बाधा से काफी लोग निराश हो गये क्योंकि इतना कठिन विषय इतनी योग्यता और अधिकार वाणी से गुरुदेव समझा रहे थे। किन्तु उन्होंने यह भी सोचा कि हमारे मेजवान द्वारा कही गई बात भी ठीक थी। कुछ भी हो, दूसरे दिन की शाम तक बैठक स्थगित हो गई। लोग दर्शन करने उमड़ पड़े और घर जाने से पूर्व गुरुदेव के चरण स्पर्श का अवसर प्रत्येक व्यक्ति पा सका था।

दूसरा प्रकरण

दूसरे दिन सायंकाल गुरुदेव का भाषण सुनने के लिए काफी भीड़ हो गई। जब लोगों ने सुना कि गुरुदेव तत्वमीमांसा पर प्रवचन करने वाले हैं तो नगर से सैंकड़ों की संख्या में लोग आ रहे थे। कक्ष में बैठने के बजाय खुले प्रांगण में बैठक की व्यवस्था रखी थी। श्रोताओं को सम्बोधित करने हेतु गुरुदेव के लिए मंच बना था। ठीक सात बजे गुरुदेव ने अपना स्थान ग्रहण किया। मेरे मन में पहले संदेह था कि इतने विशाल प्रांगण में सब लोगों को उनकी आवाज कैसे सुनाई देगी। किन्तु मैं देख रहा था कि बिना किसी कठिनाई के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रत्येक व्यक्ति उनकी आवाज सुन सकता था। वे आराम से बैठे थे और लगता था कि किसी प्रयास के बिना सहज

भाव से बोल रहे थे। गुरुदेव ने कहा,—"कल की बात आगे बढ़ाने से पहले कृपया मुझे यह बतायें कि अब तक विषय का जितना विवेचन हुआ है उसमें किसी प्रकार की कठिनाई तो नहीं है?" श्रोताओं में से एक संन्यासी ने कहा,—"गुरुदेव, कल के भाषण में आपने माया और ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट किया था। यह भी स्पष्ट है कि केवल ज्ञान ही अज्ञान का निवारण कर सकता है और यही सत्य जानने के लिए एक मात्र मार्ग है। क्या आप हमें बताएंगे कि विभिन्न व्यक्तियों ने जिन्हें 'अवतार' अथवा ईश्वर की विभूतियां कहा जाता है, विभिन्न धर्मों की स्थापना क्यों की है और आध्यात्मिकता उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे भिन्न-भिन्न मार्गों का समर्थन क्यों करते हैं? क्या आप यह नहीं सोचते कि इन बातों को स्पष्ट करने के स्थान पर उन्होंने केवल संशय को बढ़ावा दिया है और सामान्य व्यक्ति के लिए इन तथाकथित महान् व्यक्तियों के उपदेशों में श्रद्धा रखना कठिन हो गया है?"

गुरुदेव ने कहा,—"जिन व्यक्तियों ने स्पष्टता, ज्ञान, सत्यको प्राप्त कर लिया है उन्हें अवतार, विभूति, साधु आदि कहा जाता है। समझने का एक तरीका विकसित करने के परिणामस्वरूप यदि ऐसा हो तो उसे उपलब्धि कह सकते हैं। ज्ञान अथवा यथार्थता को आच्छादित करने वाली बातें स्वयं हमीं ने बनाई हैं और वस्तु को यथार्थ रूप में समझने के लिए किसी व्यक्ति को अपनी स्वयं की क्रियाशीलता का अच्छी तरह से अध्ययन या निरीक्षण करना होता है। आकस्मिक रूप से, यह समझ बहुत कम लोगों को प्राप्त हो जाती है और ज्यादातर यह सत्य के लिए निष्ठायुक्त खोज और इस दिशा में किये गये प्रयत्नों के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। लगभग सभी मामलों में उस पर आधारित अनुभव और खोजें वही होती हैं जब कि पहुंचने के तरीके भिन्न होते हैं।

"परिस्थितियों, वातावरण, वायुमण्डल, सामाजिक व्यवस्था और अन्य अनेक तत्वों के कारण व्यक्ति के तरीकों में भिन्नता आ जाती है। इसलिए महत्व की बात समझने की समस्या है न कि पहुंचने के तरीके। दुर्भाग्य से हम देखते हैं कि समस्या से भी अधिक महत्व तरीकों को दिया जाता है और इसी कारण संशय उत्पन्न होता है। जिन्हें संत कहा जाता है उनके उपदेश और उनके द्वारा समर्थित मोटे सिद्धान्त सामान्यतः एक से जैसे होते हैं। उनके अनुयायी जो तरीकों और क्रियाओं को अधिक महत्व देते हैं, संशय उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं और उन्होंने ही तरीकों और क्रियाओं द्वारा लक्ष्य ढक दिया है। हम जिन महापुरुषों के बारे में कह रहे हैं उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि उनके अनुयायी मूल सिद्धान्त के बारे में ही संशय खड़ा करेंगे और आकारों, औपचारिकताओं, क्रियाओं और तरीकों को ही अधिक महत्व देंगे।

अब समस्या यह रही क्या यह संत किसी काम के रहे हैं ? अथवा दूसरे शब्दों में, जहाँ तक मानवमात्र के उद्धार का प्रश्न है क्या सामान्यतः मानव जाति के लिए या जो लोग सत्य की खोज में लगे हैं, विशेष रूप से उनके लिए इन संतों को कोई योगदान रहा है ? आप सभी जानते हैं कि जिस व्यक्ति को मरीचिका के बारे में अनुभव या ज्ञान हो वह व्यक्ति उन लोगों का भ्रम कुछ मात्रा में दूर करने का प्रयत्न कर सकता है जिन्हें उसके बारे में भ्रम है। इसका अर्थ यह है कि कोई अनुभवी व्यक्ति दूसरे अज्ञानी व्यक्ति का भ्रम निवारण करने के लिए काम का हो सकता है ? किन्तु भ्रम का निराकरण होना एक अनुभव है जिसे उस दूसरे व्यक्ति को ही प्राप्त करना है। एक सन्त अथवा गुरु व्यक्ति को उस अवस्था को प्राप्त करने में केवल सहायता कर सकता है जिसमें अनुभव की सम्भावना विद्यमान हो। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए हम एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लें जो निद्रित अवस्था में है और स्वप्न देख रहा है। स्वप्न की अवस्था इतनी वास्तविक लगती है कि यदि कोई दूसरी बात न हो अथवा कोई अन्य व्यक्ति उसे नहीं जगाता तो वह उसी स्वप्न जगत् में विचरण करता है जैसा कि वही वास्तविक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वप्न टूटने के लिये किसी और घटना की आवश्यकता होती है या स्वप्न ही पूरा हो जाना चाहिये। इसी प्रकार इस जीवन में ज्ञान या परम साक्षात्कार की प्राप्ति के लिये तीन बातें आवश्यक हैं। साधक के जीवन में कोई ऐसी घटना घटे जो उसे निद्रित अवस्था से जागृत अवस्था में ला दे। मेरा मतलब अज्ञान की अवस्था से ज्ञान या परम साक्षात्कार की अवस्था प्राप्त कर लेने से है। कुछ भाग्यवान व्यक्तियों के जीवन में ऐसी घटना घटी है किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं और उन्हें सयोग या अपवाद कह सकते हैं।

"दूसरी बात बाहरी सहायता मिलना है जो बहुत महत्वपूर्ण है और इसे ध्यान से सुनना चाहिये। सामान्यतः सारी मानव जाति और विशेष रूप से जागृत अवस्था पाने के लिए प्रयास करने वाले लोगों की सहायता करने के लिए संत या महान पुरुष या हम उन्हें अनुभवी व्यक्ति कहें, तत्पर रहते हैं। जो लोग सो रहे हैं उनकी नींद कितनी गहरी है या उनकी दशा कैसी है इस पर इन पुरुषों की सहायता निर्भर करेगी। इन सन्तों के उपदेशों और मार्ग दर्शन से जिन लोगों का भला हुआ है वे स्वाभाविक ही उनके प्रति आभारी होंगे। कुछ लोग इन सन्तों के प्रयत्नों को लाभकारी माप सकते हैं तो कुछ के लिए यह तकलीफ देने वाली बात भी हो सकती है। इस लिए जो लोग अभी नहीं जगे हैं वे यदि सन्तों के कार्य के बारे में कोई धारणा बनाते हैं तो वह गलत होगा। जो लोग सोये हैं वे यदि जगे हुए लोगों के बारे में कोई धारणा बनायें तो वह बेबकूफी होगी। इसलिये क्या यह स्पष्ट नहीं है कि जिन लोगों ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे मानवजाति के लिए फिर वह किसी अवस्था में क्यों न

हो और निश्चित रूप से उन लोगों के लिए जो सचमुच इस प्रकार की खोज में लगे हैं, सहायक नहीं सिद्ध हुए हैं ?

"तीसरी बात यह है कि जो सो रहा है वह अपने आप जग जाये तो उसकी निद्रित अवस्था समाप्त हो जायेगी। इस स्थिति में समय और अवकाश का कोई विचार नहीं हो सकता और उस साधक को प्रलय काल तक राह देखनी होगी जब तक जीवन का सारा स्वप्न ही समाप्त न हो।"

इस समय एक प्रश्न पूछा गया गया, "गुरूदेव क्या आपके कहने का तात्पर्य यह है कि सन्त उन लोगों की सहायता करने में समर्थ नहीं हैं जो नींद की अवस्था में रहना ही पसन्द करते हैं अर्थात् जो सन्तों और उनके उपदेशों की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते ? यदि ऐसे लोगों को उद्गार के लिए प्रलय काल तक राह देखनी है तो इस मानव जाति के लिए सन्तों ने क्या योगदान दिया है ऐसा हम कह सकेंगे ?"

गुरुदेव ने कहा—, "जिस प्रकार हमने उन थोड़े भाग्यवान लोगों के बारे में नहीं सोचा उसी प्रकार हम उन लोगों का भी विचार छोड दें जिन्हें अपवाद ही कहा जा सकता है। जब आपके चारों ओर हंगामा और शोर हो रहा हो उस समय आप शोर की ओर ध्यान न देते हुए गहरी नींद की अवस्था में रहना चाहें तो भी आप नही सो सकेंगे। एक समय आयेगा जब इस लगातार चल रहे शोर के कारण आप जग जायेंगे चाहे आप चाहें या न चाहें। उसी प्रकार सन्तों के उपदेशों उनके सन्देशों की तीव्रता और आस पास के वातावरण पर उनके द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले प्रभाव से मानवजाति को सत्य को पाने में सहायता मिलती है, अर्थात् इसके लिए समय और अवकाश का महत्व नहीं है। आपका यह कहना कि इन तथाकथित महान् व्यक्तियों ने आम संशय को बढ़ावा दिया है, सही नहीं है। संशय का कारण उनके उपदेशों का गलत अर्थ लगाना ही है। कुछ मामलों में तो यह अपनी इच्छा से होता है और दूसरे मामलों में किसी विशेष परम्परा के अनुकूल बनाने के लिए, किसी धार्मिक प्रचार आदि में सहायक हो इसलिए महा-पुरुषों के उपदेशों को बड़े प्रमाण में प्रचारकों, मानने वालों पुरस्कर्ताओं और दूसरे लोगों की आवश्यकता के अनुरूप, बताया जाता है। इसके पीछे स्पष्ट रूप से सामान्य जनता का समर्थन प्राप्त करने अथवा बड़े प्रमाण में धर्म परिवर्तन का उद्देश्य रहता है। ऐसे अवसरों पर उस उद्देश्य के अनुकूल बनाने हेतु महान् व्यक्तियों के उपदेशों का गलत अर्थ लगाया जाता है। इसलिए महापुरुषों पर संशय निर्मित के लिए दोषारोपण करना बुद्धिमानी का काम नहीं होगा क्योंकि संशय बनाने में जो लोग रुचि रखते हैं उन्हों ने ही इसे बनाया है।"

गुरुदेव ने कहा, "मैं सोचता हूं कि अपनी योग्यता के अनुसार मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया है यदि मेरा कथन व उसका कुछ भाग भी आपकी समझ में न आया हो, तो कृपया बता दें। यदि कोई विशेष प्रश्न आपको पूछना हो तो उसका उत्तर देने में मुझे खुशी होगी।' गुरुदेव ने भाषण समाप्त किया। किसी ने प्रश्न नहीं पूछा। कुछ और बातचीत के बाद लगभग नौ बजे बैठक समाप्त हुई। ऐसा लग रहा था कि गुरुदेव के भाषण से प्रत्येक व्यक्ति संतुष्ट था।

दूसरे दिन सुबह के लगभग आठ बजे का समय था। मैं मन्दिर में बैठा था और गुरुदेव बाग में थे। दो बंगाली युवकों ने मेरी ओर देखा और फिर वे सीधे मूर्ति के पास जाकर कुछ समय तक श्रद्धा से खड़े हो गये। किसी कारण ही मैं उनकी गतिविधि को ध्यान से देख रहा था। वे मेरे पास आये और उन्होंने पूछा क्या आप वही सन्यासी हैं जिन्हें गुरुदेव कहा जाता है?" मैं हंसा और मैंने पूछा,—"इस ढीले पाजामा कुर्ते में क्या में सयासी लगता हूं? कृपया बैठ जायें और मुझे बतायें कि आप कौन हैं और किस काम के लिए गुरुदेव से मिलना है?" उनमें से एक ने कहा, "हमने सुन रखा है कि गुरुदेव महान संत हैं और उत्सुकतावश हम उनका दर्शन करने आये हैं मैंने कहा, "कि आप चाहे मुझे काम न बतायें किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि इतनी सुबह कोई भी व्यक्ति केवल उत्सुकतावश गुरुदेव के दर्शन करने नहीं आता।" उनमें से एक ने कहा,—"क्या आप माधव हैं, गुरुदेव के पढ़े लिखे शिष्य?" मैंने कहा,—"आपको मेरे बारे में पूरी जानकारी है और स्वाभाविक ही आपको मुझ से बातचीत करने से लाभ होगा। यदि कोई परेशानी न हो, तो क्या आप मुझे अपना नाम बताना चाहेंगे?" फिर भी, वे कुछ जाहिर करना नहीं चाहते थे और इसलिए इस विषय पर जोर न देकर मैंने कहा,—"चलिए, गुरुदेव से मिलने बाग में चलते हैं।"

गुरुदेव एक पेड़ के नीचे बैठे थे और लगता था जैसे झपकी ले रहे हों। हम लोगों की आवाज सुनकर उन्होंने अपनी आंखें खोलीं। मैंने उन्हें बताया कि दो युवक आपका दर्शन करने आये हैं। गुरुदेव ने एक क्षण उन्हें ध्यान से देखा और कहा,—"कृपया बैठ जायें। माधव की मौजूदगी से परेशान न हों। वह विश्वसनीय हैं और आपकी गोपनीयता बनी रहेगी।" यह सुनकर उन युवकों को आश्चर्य हुआ और वे कुछ उदास दिखाई पड़े। गुरुदेव मुस्कराये और उन्होंने कहा,—"माधव या मेरे से डरने की कोई बात नहीं है। मैं जानता हूं कि आप कौन हैं और मेरे पास किस काम से आये हैं।" युवकों में तुरन्त कुछ हलचल हुई। गुरुदेव ने कहा—"तुम्हारी जेबों में जो रिवाल्वर रखे हैं उन्हें छूने का प्रयास न करो। ये बिना सूचना के कभी-कभी बेकार हो जाते हैं।" गुरुदेव की बात सुनकर युवकों के चेहरों पर 'सर्चलाइट' के समान भाव बदलते रहे। एक दो क्षण तक के अवाक् खड़े रहे और फिर गुरुदेव के चरणों पर गिर पड़े। "अब शांत हो जाओ," गुरुदेव ने कहा,—

"और अपनी समस्या बताओ" उन्होंने कहा,—"हम यहां पर दर्शन करने और आपका आशीर्वाद पाने के लिए आये हैं। हमने जिस काम को स्वीकार किया है उसे आप जानते हैं और उसके लिए आप जैसे संतों के आशीर्वाद की बहुत अधिक आवश्यकता है।" बाग में कोई भी नहीं था और किसी के द्वारा बाधा पहुंचने की सम्भावना नहीं थी। हमेशा के समान गुरुदेव बोले, "तुम लोग अभी छोटे हो, तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। तुम लोग हिंसा के द्वारा अपने देश को स्वतन्त्र करना चाहते हो। तुम सोच रहे हो कि तुम्हारा संगठन मजबूत है और अपने देश से विदेशियों को निकाल बाहर करने में तुम्हें सफलता मिलेगी। तुम्हारी भावनाओं और स्वतन्त्रता के लिए तुम्हारे संघर्ष का मैं पूरी तरह सम्मान करता हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारी देश-भक्ति बहुत उच्च कोटि की है और आदर पाने योग्य है। अपनी मातृभूमि के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने की इच्छा केवल सम्मान पाने योग्य और श्रेष्ठ ही नहीं अपितु उससे भी कुछ अधिक है। क्या तुमने कभी इस बात पर विचार किया कि कैसे हमारा देश पराये शासन के अधिकार में आ गया? क्या तुमने कभी यह सोचा कि मुट्ठी भर विदेशी लोग इतनी कुशलता से कोटि-कोटि लोगों पर क्यों शासन कर रहे हैं? केवल कुछ विदेशी व्यक्तियों का, फिर वे किसी भी पद पर क्यों न हों, सफाया कर देने से यह व्यवस्था छिन्न भिन्न नहीं होगी और तुम्हें अपने उद्देश्य में सहायता नहीं मिलेगी। सारे देश में फैली फूट, दुश्मनी, ईर्ष्या, सत्ता की लालसा और कई सारे धर्मों और सम्प्रदायों आदि के कारण तुमने स्वाधीनता खो दी है। जब तक समूचे देश में लक्ष्य की एकता और स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एकमेव उद्देश्य दूसरी किसी भी भावना, संवेदना या विचार पर हावी नहीं होगा तब तक स्वतन्त्रता प्राप्त करना असम्भव है। जब तुम्हारा सारा का सारा देश किसी भी कीमत पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए एक हो तब विदेशी सरकार का काम चलना असम्भव बन जाएगा और इज्जत के साथ या बेइज्जती से उन्हें यहां से निकलना पड़ेगा।

हिंसा, हिंसा को ही जन्म देगी और तुम्हारे इस संघर्ष को वर्तमान शासक एक आह्वान के रूप में लेंगे। अपनी सारी शक्ति के साथ वे इसे कुचल देने का प्रयास करेंगे और ऐसा करने में वे इतने कठोर होंगे कि स्वन्त्रता प्राप्ति की दशा में किए गए सारे प्रयत्न कुछ समय के लिए ठप्प हो जाएंगे।" उन्होंने कहा,—"गुरुदेव, क्या आपके कहने का तात्पर्य है कि हमारी मातृभूमि कभी भी आजाद नहीं होगी?" एक प्रश्न जो भावना की उस गहराई और निष्ठा से पूछा गया था कि तत्काल मेरे मन में उन दोनों युवकों के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हुआ जो मुश्किल से यौवन में पदार्पण कर रहे थे। गुरुदेव ने कहा,—"तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हरी मातृभूमि निश्चित रूप से स्वाधीन होने वाली है। जो इसे सारे बन्धनों से

मुक्त करने वाला है वह सत्य और अहिंसा के हथियार के साथ और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तैयार सारा देश अपने पीछे लेकर कैसी भी शक्तिशाली सरकार से सफलता पूर्वक मुकाबला करने में समर्थ होगा। मैं आपको अश्वासन दे दूं कि तीन या चार दशाब्दियों में ही भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होने वाली है किन्तु मुझे विश्वास नहीं है कि वह भाग्य का दिन देखने के लिए तुम लोग रहोगे भी। मैं तुम्हें यह भी विश्वास दिला दूं कि एक दिन ऐसा भी आएगा जब तुम्हारे देश के इतिहास में तुम्हारे नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होंगे। मैं जानता हूं कि तुम मेरी सलाह नहीं मानोगे। किन्तु एक बार यह भी समझ लो कि उच्च आदर्श के लिए किया गया समर्पण कभी व्यर्थ नहीं होता।" उसमें से एक ने कहा,—'गुरुदेव आपने जो कुछ भी कहा वह सत्य हो सकता है। हमें यह जानकर खुशी है कि भारत स्वतन्त्र होगा। यह बात महत्व की नहीं कि उस भाग्यवान दिन के लिए हम रखें या न रहें। हमारा संघर्ष समस्त जनता के लिए है, व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं। हम जानते हैं कि असफल होने पर हमारे भाग्य में क्या लिखा है।" दूसरे ने कहा,—"गुरुदेव, हमारी समझ में यह नहीं आता कि आप अपने देश से प्रेम करते हैं अथवा नहीं और आप जैसे व्यक्ति देश को बन्धन से मुक्त कराने के लिए क्या कर रहे हैं।"

गुरुदेव ने कहा,—"धैर्य ही गुण है और इस कार्य में तुम्हारी उतावली से कुछ भी लाभ नहीं होगा। तुम कितना भी चाहो किन्तु जो चीज कल होने वाली है वह आज नहीं होगी। यदि तुम्हें सूरज का उदय देखना है तो तुम्हें और चौबीस घण्टे तक प्रतीक्षा करनी होगी। तुम्हारी सारी इच्छाएं, भावनाएं और उतावलापन सूरज को समय से पूर्व उदय नहीं करा सकता। उसी प्रकार जो घटनाएं किसी विशेष समय पर होनी हैं वे आज नहीं ही सकेंगी फिर आपकी इच्छाएं कितनी ही प्रबल क्यों न हों और आप कितना भी बड़ा प्रयत्न क्यों न करें। अर्थात् एक उच्च लक्ष्य सामने रखकर जो प्रयास किया जा रहा है वह कभी व्यर्थ नहीं होगा और ध्येय प्राप्त करने के दृष्टिकोण से देखने पर उसका निश्चित रूप से बहुत बड़ा मूल्य है। जहां तक देश और देशवासियों से मेरे प्रेम का प्रश्न है, मैं आपको बता दूं कि ज्ञान और अनुभव बढ़ने के साथ प्रेम का क्षेत्र भी परिमाण में बढ़ जाता है। जब तक तुम छोटे बालक थे तब तक तुम्हारा प्रेम माता-पिता पर ही केन्द्रित था और तुम्हारे घर की चार-दिवारी तक ही सीमित था। आज ज्ञान बढ़ने के साथ साथ तुम्हारा प्रेम भी परि-माण में बढ़ गया है और समूचा देश और कोटि देशवासियों तक फैल गया है। अब यदि कोई तुम्हें पूछता है कि क्या तुम्हारा प्रेम उस विशिष्ट घर अथवा ग्राम तक सीमित है तो तुम सोचोगे कि प्रश्न बड़ा हास्यास्पद है और कहोगे कि तुम्हारे प्रेम का विस्तार हो गया है और उसके अन्तर्गत अनगिनत ग्राम और घर आ गये हैं। जब तुम अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष में लगे हो तो तुम्हें लगेगा कि गांवों में

चलने वाले जमीन, जायदाद के झगड़े बड़े ही तुच्छ से हैं और उन्हें गम्भीरता से लेने में अपना सम्मान कम होगा ऐसा भी तुम्हें लगेगा। एक ऐसे ही व्यक्ति की कल्पना करो जिसने इससे भी अधिक ज्ञान प्राप्त किया है, अधिक विस्तार से अनुभव पाया है, परिणाम स्वरूप उसके प्रेम की परिधि बहुत बड़े प्रमाण में बढ़ जाएगी और जाति सम्प्रदाय. धर्म, देशभक्ति और भौगोलिक सीमाओं से परे समूची मानवजाति उसमें समा सकेगी। उस व्यक्ति के लिए एक समूह के नियन्त्रण से दूसरे समूह का स्वतन्त्र होना उतना महत्वपूर्ण नहीं होगा जितना तुम सोच रहे हो। अर्थात् ऐसा हो व्यक्ति भी यह पसन्द नहीं करेगा कि एक शक्तिशाली इकाई, दूसरी अपेक्षाकृत दुर्बल इकाई पर गुलामी थोप दे। इसलिये वह ऐसे साधनों की खोज करना चाहेगा जिनसे अधिक शक्तिशाली इकाई पर गुलामी अथवा बन्धन थोपने की निरर्थकता का विश्वास दिला सके। किसी भी परिस्थिति में वह हिंसा अथवा रक्तपात को बढावा नहीं देता क्योंकि वह सारी मानव जाति से प्रेम करता है। समस्त रचना के लिए प्रेम ही एक दिन पृथ्वी पर शांति प्रस्थापित करेगा। एक ऐसा दिन आयेगा जब मानजाति प्रेम शब्द का सही अर्थ समझ लेगी। तथाकथित महान् संतों की उपयोगिता का उद्देश्य यही है। मुझे गलत मत समझना और तुम जहां भी जाओ वहीं मेरे प्रेम को अपने साथ लेते जाना।" इन शब्दों के साथ गुरुदेव खड़े हो गये और उन्होंने मन्दिर की ओर चलना प्रारम्भ किया। युवकों ने पुनः प्रणाम किया और वे दूसरे रास्ते से बाग के बाहर चले गए।

तीसरा प्रकरण

दो दिन बाद ही हम जगन्नाथ पुरी के लिए कलकत्ता से चल पड़े। जगन्नाथ जाने के लिए हमारे मेजबान श्री कृष्णानन्द जी महाराज और अन्य कई साधु भी आये थे। वैसे रास्ते में कोई विशेष घटना नहीं हुई किन्तु साधुओं के साथ से यात्रा आराम से हुई। श्री कृष्णानन्द जी महाराज ने मन्दिर के प्रमुख पुजारी को पहले ही सूचित कर दिया था और गुरुदेव का स्वागत करने के लिए स्टेशन पर बड़ी भीड़ हुई थी। खूब सारी मालाओं से गुरुदेव का स्वागत किया गया। मन्दिर के प्रमुख पुजारी के हम अतिथि थे और उनके आलीशान निवास स्थान पर हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी गुरुदेव, श्री कृष्णानन्द जी और मैं एक साथ रुके थे और शेष साधुओं के लिए विभिन्न धर्मशालाओं में रुकने की व्यवस्था की गई थी।

वहां पहुंचने के कुछ देर बाद हम समुद्र स्नान करने गए। जगन्नाथ का समुद्र-तीर आकर्षक है। वह काफी बड़ा है और बहुत लुभावना है। हम लगभग एक घंटे तक पानी में थे और हममें से प्रत्येक ने स्नान का आनन्द लिया। स्नान करने के पश्चात् हम मन्दिर में दर्शन करने गए। मन्दिर के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और वह सदियों से वहाँ पर खड़ा है। हमारे मेजबान ने मुझे मन्दिर का महत्व समझाया और संक्षेप में विभिन्न राजा महाराजाओं और अमीर लोगों के द्वारा दिये गये दान और आभूषणों का इतिहास बताया। मन्दिर में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् हम निवास स्थान पर लौट आये। यहाँ पर प्रचलित प्रणाली के अनुसार मन्दिर से भी जगन्नाथ के प्रसाद के रूप में हमारा भोजन आ गया। वह बहुत अच्छी किस्म का बढ़िया भोजन था। गुरुदेव ने थोड़ा सा ग्रहण किया और हम लोगों ने भरपेट भोजन किया।

कुछ समय तक विश्राम करने के पश्चात् में शहर देखने और कुछ वस्तुएं खरीदने के लिए गया। लगभग शाम के समय मैं लौटा और पूछने पर पता चला कि गुरुदेव पहले ही मन्दिर चले गये हैं। इसलिए मैं मन्दिर के लिए चल पड़ा और गुरु-देव और मेजबान से वहाँ पर भेंट की।

जब हम मन्दिर की इमारत से बाहर निकल रहे थे उस समय हमने किसी अच्छे घराने की एक महिला को देखा जो जोर-जोर से चिल्ला रही थी और असभ्य लोगों की तरह बर्ताव कर रही थी। उसे कुछ लोग जबर्दस्ती मन्दिर की ओर घसीट कर ला रहे थे। मैं यह दृश्य देखकर चकित हो गया और इस घटना को नहीं समझ सका। मन्दिर के दरवाजे की सीढ़ियों के पास हम लोगों को खड़े देखकर कुछ हमारे पास आये और उन्होंने हाथ जोड़कर गुरुदेव को प्रणाम किया। उन्होंने कहा,—"गुरुदेव आप महान् पुरुष हैं, जिस महिला को आप पागल जैसा वर्त्ताव करते देख रहे हैं, वह हमारी रिश्तेदार है। उसे भूत लग गया है और हम लोग उसे इस श्रद्धा के साथ यहां लाये हैं कि आप उसे पूरी तरह से अच्छा कर देंगे।" इस बीच उस महिला को मन्दिर के पास लाया गया था और वह चिल्ला रही थी और पागलों जैसा बर्ताव कर रही थी। लोग इकट्ठा हो गए थे और समीप के कई साधु और संन्यासी भी क्या हो रहा है यह देखने के लिए चले आये थे। आशा और उत्सुकता के साथ गुरुदेव की ओर सबकी आँखें लगी हुई थीं।

गुरुदेव सीढ़ियों पर बैठ गये और उन्होंने हम सबको बैठने के लिए कहा। कलकत्ता से हमारे साथ जो साधु आये थे उनमें से एक को सम्बोधित करके उन्होंने कहा,—"इस भूत से ग्रस्त महिला का इलाज करने के लिए कृपया अपने मन्त्रों का

प्रयोग करें"। सब लोग उसकी ओर देखने लगे और वह सन्देह में पड़ गये। उन्होंने कहा,—"महाराज, क्षमा करें, आपने कैसे जाना कि मैं भूत भगाने वाले मन्त्र जानता हूं।" गुरुदेव ने स्मित किया, बोले कुछ नहीं। उस महिला को सम्बोधित करके उन्होंने कहा,—"भूतों को अधीन करने के मन्त्र यह साधु जानते हैं। मुझे विश्वास है कि उसे दूर भगाने के लिए वह आपकी सहायता करेंगे।"

उस साधु ने, कुछ पानी लेकर उस महिला पर छिड़का और मन्त्रोच्चारण करना प्रारम्भ किया। उस महिला ने गाली देना शुरू किया और पहले से भी अधिक जंगलीपन का बर्ताव कर साधु के प्रति बड़ा अवज्ञापूर्ण रुख अपना लिया। यह कुछ समय तक चलता रहा और किसी न किसी कारण से उसका भूत साधू के वश में नहीं हो सका। जैसे-जैसे वह अधिक प्रयत्न करता, वैसे-वैसे उस महिला का जंगलीपन बढ़ता जाता। आखिर उस साधु ने कहा,—"गुरुदेव यह भूत कुछ प्रबल लगता है और तुरन्त वश में होना कठीन है। उसे भगाने के लिए एक या दो दिन लग जाएंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं भूत पर नियन्त्रण पाने में सफल हो जाऊंगा चाहे कितना भी बड़ा भूत क्यों न हो।" उस महिला के रिश्तेदार जो उस साधु की क्रियाएं देख रहे थे, बोले,—"गुरुदेव, यह सब हम पहले भी कर चुके हैं और कई मान्त्रिकों ने इसके लिए प्रयत्न भी किया था किन्तु सबने यही स्वीकार किया कि जिस भूत ने इस महिला को पकड़ लिया है वह बड़ा ही शक्तिशाली और बदमाश भूत है। हम इस विश्वास से आपके पास आये हैं कि आप यदि चाहें तो भूत को भगा सकते हैं। बहुत लम्बे समय से यह महिला दुःखी है और यदि आप उसे ठीक कर दें तो हम हमेशा के लिए आपके ऋणी रहेंगे।" उस महिला की दशा इतनी दयनीय थी और दृश्य भी इतना दर्दनाक था कि अपनी सीमा से बाहर जाते हुए मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि जिस प्रकार की यातना से वह महिला पीड़ित है उसे दूर कर दें। श्री कृष्णानन्द जी महाराज और हमारे मेजबान ने भी मेरी प्रार्थना का समर्थन किया। गुरुदेव ने उस साधु से पूछा कि यदि वे ठीक करने का प्रयास करते हैं तो उन्हें आपत्ति तो नहीं होगी।"

वह साधु अच्छा आदमी था और उसने कहा,—"गुरुदेव आप तो सर्वश्रेष्ठ हैं। यदि आप इस महिला को ठीक कर दें तो मुझे अपनी हार या छोटापन जैसा कुछ नहीं लगेगा। समस्या यह है कि इस महिला को जल्दी ठीक कैसे किया जाए, मेरी प्रतिष्ठा की समस्या नहीं है। उस महिला की दशा सचमुच बड़ी दयनीय है और मैं खुद आपका आभारी रहूंगा यदि उसे जल्दी ठीक कर दिया जाये।" इस पर गुरुदेव ने महिला की ओर देखा और बड़ी कठोर आवाज में उसे बैठ जाने के लिए

कहा। एक क्षण उसने गुरुदेव की ओर कठोर दृष्टि से देखा और दांत भींचते हुए वह जोर से जमीन पर बैठ गई। एक या दो मिनट तक गुरुदेव ने अपनी आँखें उस स्त्री के चेहरे पर गड़ा दीं और कहा,—"मैं जानता हूं कि तुम कौन हो लेकिन मैं नहीं जानता कि इस गरीब प्राणी को सताने के पीछे तुम्हारा उद्देश्य क्या है?" हमारे लिए आश्चर्य की बात यह थी कि जो महिला अब तक होश से बाहर लग रही थी, कर्कश आवाज में बोली,—"इस महिला ने मेरा अपमान किया है और उसका बदला लेने के लिए मैंने उसे पकड़ लिया है। मैंने तय किया है कि जीवन भर मैं इसे दुःखी करता रहूंगा। इस महिला को सजा मिली है और धरती पर का कोई भी उसे ठीक नहीं कर सकेगा।" गुरुदेव जोर से हंस पड़े और बोले—"तुम मूर्ख हो। तुम्हें पता नहीं है कि तुम किसके साथ बातें कर रहे हो। यह महिला अब मेरे संरक्षण में आ चुकी है। इस पृथ्वी पर और उससे परे भी ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसे अब तकलीफ दे सकें। इससे पहले कि मैं दूसरा काम करने की सोचूं क्या तुम तत्काल इस महिला को छोड़ दोगे? मुझे जवाब देने से पहले दो बार सोच लो और उसे छोड़ने से पहले तुम्हें कुछ कहना हो तो मुझे बता दो। मेरे आदेश अन्तिम हैं और तुम्हें अभी उस महिला में से निकलना है।"

उस महिमा ने एक क्षण के लिए गुरुदेव की ओर देखा और विनीत आवाज में वह बोली,—"आप एक महान् सन्त हैं और आपको किसी के प्रति पक्षपात नहीं करना चाहिए फिर चाहे मेरे जैसी कोई प्रेतात्मा भी क्यों न हो। आपके हाथों न्याय प्राप्त करने की मेरी कामना है।" गुरुदेव हंस कर बोले,—"तुम पहले ही अपनी सांसारिक वस्तुओं, रिश्तेदारों और मित्रों को छोड़ चुके हो, तो अब क्या यह अजीब नहीं लगता कि तुम प्रतिशोध जैसी भावनाओं से चिपके रहो जो सांसारिक जीवन में भी गर्हित है और तुम अब जिस प्रकार के जीवन में हो उसमें तो उससे भी अधिक। वास्तविक बात तो यह है कि तुम जितनी शीघ्रता से अपनी आकांक्षाओं, इच्छाओं और आशाओं आदि से पीछा छुड़ा लेते हो उतनी ही शीघ्रता से अभी तुम जिस प्रकार का जीवन जी रहे हो उससे तुम मुक्ति पा लोगे।"

वह महिला बोली,—"मेरा यह जीवन न तो मैंने चुना है और न तो मुझे उससे प्रेम ही है। यह कोई मेरा दोष नहीं था कि अपनी लौकिक वस्तुओं को छोड़ने से पूर्व आप जैसे लोगों से मेरा संपर्क नहीं हुआ। आपके समान महान् व्यक्तियों को हम पर दया करनी चाहिए और जीवन का कोई भी रुप क्यों न हो, उसमें बाँध रखने वाली श्रृंखलाओं और बन्धनों से हमें मुक्त कर देना चाहिए। भाषण देने से कोई लाभ नहीं हैं, जब मैं धरती पर चलने वाला मनुष्य प्राणी था उस समय मैंने बहुत भाषण सुन रखे हैं। इस दुष्ट जीवन में मैं अभी भी सड़ रहा हूं जबकि मैंने दर्शन के बारे में

बहुत कुछ जान और पढ़ रखा हैं। आवश्यकता है रुपान्तरण अथवा मोक्ष की, चाहे आप उसे कुछ भी नाम दें। मुझे मुक्ति, रूपान्तरण अथवा मोक्ष देने की स्थिति में आप हैं ऐसा माना जाता है। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप मुझ पर कृपा करें और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं तत्काल इस महिला को छोड़ दूंगा।" गुरुदेव ने कहा,—"क्या यह विचित्र नहीं है कि तुमने अपने आपको बदले की भावना से बांध रखा है ओर चाहते हो कि मैं तुम्हें मुक्ति दिला दूं? जरा एक क्षण के लिए यह तो सोचो कि तुम क्या कर रहे हो? बदले का बोझ उतार दो, महिला को अकेला छोड़ दो और तुम मुक्त हो। तुम्हारा समय हो चुका है और तुम्हें जिसकी चाह है वह तुम्हें मिल जाएगा।" एकाएक वह महिला उठ खड़ी हुई और गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ी। अपने दोनों हाथ फैला कर उन्होंने उस स्त्री के मस्तक पर आशीर्वाद दिया और उसकी पीठ थपथपाई। महिला खड़ी हो गई। अपने पैरों पर खड़े रहने का प्रयास उसने किया किन्तु खुद संभल न सकी। गुरुदेव ने धीरे से उसे अपने हाथों में लिया और वह बेहोश हो गई। उसके चेहरे पर ठंडा पानी छिड़का गया और पांच मिनिटों में उसने अपनी आँखें खोल दीं। जैसे ही उसने अपनी आँखें खोलीं वह उठ खड़ी हुई और आश्चर्य के साथ हम सबको देखने लगी। वह सन्देह में पड़ गई और अपने कपड़ों और बालों की हालत देखकर चकित सी दिखाई दी। गुरूदेव ने कहा,—"बेटी, चिन्ता न करो। तुम पूरी तरह से ठीक हो गई हो।" और उन्होंने लोगों को उसे घर ले जाने के लिए कहा।

बिना एक शब्द बोले गुरूदेव खड़े हो गए और सीधे समुद्र के किनारे की ओर चल पड़े। किसी बाधा को सहन करने की मनोदशा में वह नहीं थे। इसलिए मैंने सब लोगों से प्रार्थना की कि उन्हें अकेले ही रहने दें और मैं उनके पीछे चलने लगा।

मैं रेत पर गुरुदेव के साथ चलने लगा और हम काफी दूर निकल गए। मैंने उन्हें पूछा, "क्या आप किसी बात से नाराज हैं या आपकी तबियत ठीक नहीं है।" उन्होंने कहा कि वे अच्छी तरह से हैं और किसी से नाराज या परेशान नहीं हैं। उन्होंने कहा, "माधव, संसार के बारे में तुम कम जानते हो और आध्यात्मिकता के बारे में और भी कम। तत्वमीमांसा और आध्यात्मिकता की खोज करने वाले व्यक्ति को एक बात से दूर रहना चाहिए और वह है प्रचार, अर्थात् प्रसिद्धि पाने का काम। हमें यह स्थान छोड़कर जाना पड़ेगा नहीं तो हमारे चारों ओर हजारों लोग इकट्ठा हो जाएंगे और अपनी बीमारियों का इलाज कराने के लिए प्रार्थना करने लगेंगे। नियति का चक्र बदलना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है और कोई भी व्यक्ति हमेशा के लिए आराम नहीं पहुंचा सकता। लोग सामान्यतः वस्तुओं को समझना नहीं चाहते।

वे नहीं चाहते कि निष्ठा से प्रयत्न करें, सीखने के लिए कष्ट उठाएं, ज्ञान के लिए गरीबी उठायें, किन्तु यह चाहते हैं कि वस्तुएं उन्हें भेंट के रूप में मिल जायें। वे केवल उत्सुकता के लिए चमत्कार देखने की इच्छा करते हैं और अपनी परेशानियाँ और बीमारियां दूर करने के लिए अपने में किसी प्रकार का बदल किए बिना अपने तरीकों से ही जीवन बिताना चाहते हैं।

लगभग सात बजे हम लौट आये। भोजन के पश्चात् हमारे मेजबान ने प्रार्थना की कि कलकत्ता में गुरुदेव ने जैसा भाषण दिया था वैसा ही भाषण यहाँ पर दें। गुरुदेव ने कहा कि वे भाषण देने के पक्ष में नहीं हैं और आज बोलने की मनोदशा में नहीं हैं। तथापि उन्होंने कहा कि यदि लोगों की इच्छा है तो प्रश्नों का उत्तर देने में उन्हें प्रसन्नता होगी किन्तु अधिक समय तक वार्तालाप करने की स्थिति में वे नहीं हैं। इसलिए हमारे मेजबान ने अपने घर के चबूतरे पर एक अनौपचारिक बैठक का आयोजन किया। जगन्नाथ तीर्थ यात्रा का प्रसिद्ध स्थान है और हर दिन लोग अच्छी संख्या में श्रद्धा से यहां आते हैं। गुरुदेव कुछ बोलने वाले हैं यह सुनकर काफी लोग चले आए और नौ बजे के लगभग सारा चबूतरा पूरी तरह भर गया। गुरुदेव ने हमेशा के समान कहा,—"आपकी इच्छा के अनुसार मैं यहां पर उपस्थित हूं। आप को जो कुछ पूछना है वह पूछ सकते हैं। कृपया अपने प्रश्नों को जितना संभव हो संक्षेप में बतायें।" श्रोताओं में से किसी ने कहा,—"गुरुदेव आज शाम आपने उस महिला को पूरी तरह ठीक कर दिया जिसे भूत ने पकड़ रखा था। कृपा करके आप हमें बतायें कि भूत लगना क्या होता है और यह कैसे होता है? ये प्रेतात्माएं मनुष्य शरीर पर अधिकार करना क्यों चाहती हैं और मनुष्यों के माध्यम से ये अपनी इच्छाएं कैसे व्यक्त करती हैं?"

गुरुदेव ने कहा,—"आपके सारे प्रश्नों का उत्तर विस्तार से दूं तो काफी अधिक समय लगेगा, लेकिन मैं आपको संक्षेप में बताने का प्रयास करूंगा और मैं आशा करता हूं कि आप मुझे शांतिपूर्वक सुनेंगे। पुनर्जन्म की प्रक्रिया को समझाने का प्रयास मैं नहीं करूंगा किन्तु आपको यह बता दूं कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की अवस्था प्रेत-जगत् होती है। कुछ व्यक्तियों के लिए प्रेत-जगत् उसमें केवल गुजरना भर होता है किन्तु दूसरे व्यक्तियों को पुनर्जन्म प्राप्त कर सकने के पूर्व उसमें काफी समय तक रहना पड़ता है। आप कहीं गलत न समझ लें कि प्रत्येक मृत व्यक्ति को प्रेत जगत् में जाना पड़ता है किन्तु उनमें से कुछ लोगों को उसमें जाना पड़ता है और मैं केवल उन्हीं के बारे में बातचीत करूंगा। कौन-सी वजह उन्हें प्रेत जगत् की ओर ले जाती है? ये समस्यायें पूरी तरह अलग हैं और आगे मुझे समय मिला तो मैं उनकी चर्चा करूंगा। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके जीवनकाल में

भिन्न-भिन्न इच्छाओं, भावनाओं, पसन्द, नापसन्द और अन्य कई वस्तुओं से उसके शरीर में जो कुछ बना होता है वह उसके विनाशी शरीर को छोड़ जाता है। यह बनी वस्तु जिसे हम समझने के लिए पदार्थ कहेंगे प्रेत-जगत् में स्थान लेती है। मनुष्य के शरीरों को मोटे तौर पर जो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, ठोस और छेददार। आप इस बात को आसानी से समझ सकते हैं कि ठोस वस्तु में से निकलना कठिन होता है किन्तु छेददार वस्तुओं जैसे द्रव और गैसीय पदार्थों में से कोई चीज आसानी से घुस सकती है। यद्यपि सभी मनुष्य एक जैसे दिखाई पड़ते हैं किन्तु जिस शरीर तंतु से उनका निर्माण होता है वह एक दूसरे से काफी अलग होता है। सामान्य रूप से महिलाओं के शरीर पुरुषों के शरीरों से ज्यादा छेददार होते हैं किन्तु पुरुषों में भी आप छेददार शरीर देख सकते हैं। ये प्रेतात्माएं अदृश्य जीवों के रूपों में होती हैं और हवा या गैसों से भी ज्यादा सूक्ष्म होती हैं। जो छेददार शरीरों में आसानी से प्रवेश कर लेती है और उस पर अधिकार कर लेती है। यही कारण है कि भूत लगने वाले व्यक्तियों में महिलाओं की संख्या अधिक होती है। प्रेतात्माएं उनके कोमल छेददार शरीरों और उसी के समान कोमल मानसिक संरचना से लाभ उठाती हैं। साधारणतया: महिलाओं के मन पर जल्दी प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार का मन प्रेतात्माओं को अपनी मर्जी के समान बर्ताव करने में सहायता देता है। मैं ऐसे कई पुरुषों से भी मिल चुका हूं जिन्हें भूत लग गया था। जैसा कि मैंने आपको पहले ही बता दिया था, प्रेत-जगत् अपूर्ण इच्छाओं और विभिन्न तत्वों से बनी वस्तु से बना होता है। प्रेतात्माएं, इसलिए जब किसी मनुष्य शरीर पर अधिकार कर लेती है, तो उनके द्वारा अपनी इच्छाओं को व्यक्त करती है। जब तक उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक वे उस व्यक्ति को परेशान करती हैं। कभी-कभी वे तब तक बदला लेती रहती हैं, जब तक कि उस पुरुष अथवा स्त्री का दुःखद अंत नहीं होता। प्रेतात्माओं को नियन्त्रित करने के लिए मंत्र भी एक साधन है। जिसे भूत लगा है उस पर कितना असर होता है इस पर मंत्र की शक्ति का आकलन किया जा सकता है।"

"क्या आपके कथन का तात्पर्य यह है कि सभी मामलों में मंत्रों का असर नहीं होता? क्या आप कृपया यह बताएंगे कि आपने शाम के समय उस महिला को मंत्र से या किसी दूसरे तरीके से ठीक किया था?" श्रोताओं में से किसी ने कहा। गुरुदेव ने कहा,—"किसी मंत्र में कुल्हाड़ी के समान शक्ति होती है। किसी वस्तु को दो भागों में बांटने के लिए कुल्हाड़ी काम में लायी जाती है किन्तु जब कोई कठोर वस्तु वज्र से टकराती जाती है तो वह काम नहीं कर सकती किन्तु कभी-कभी टूट भी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मंत्रों का प्रभाव उस व्यक्ति के शरीर के पदार्थ पर और उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जिस पर मंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

"शाम की घटना के बारे में कहना हो तो मैं आपको बता दूं कि ब्रह्माण्ड के भिन्न-भिन्न तत्वों का नियन्त्रण करने के लिए मंत्रों के अलावा भी दूसरे साधन हैं। जिस व्यक्ति को ब्रह्माण्ड और तत्वों का ज्ञान हो, उसे इस प्रकार के कामों के लिए मत्रों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। मैं सोचता हूं कि मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया है और यदि आप इस समय क्षमा करें तो मैं बात खतम करना चाहता हूं।' इन शब्दों के साथ गुरुदेव अपने स्थान से उठे और चबूतरे से नीचे आ गए। मैं भी उनके साथ नीचे आ गया। मैंने उन्हें पूछा कि किसी चीज की आवश्यकता है क्या? उन्होंने कहा,—"माधव, हम बाहर चलकर सागर तीर पर बैठते हैं।"

किनारे की रेत पर चलकर गुरुदेव बोलने की मुद्रा में हैं, ऐसा मुझे लगा। उन्होंने कहा, —"माधव, कुछ लोग मन्त्र और दूसरी क्रियाएं सीखते हैं जिनसे वे ऐसी परिस्थितियाँ करने में सफल होते हैं जिन्हें स्वाभाविक रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे इसी में अपना समय गंवा देते हैं। जो लोग अज्ञानी हैं वे इन्हें ही चमत्कार मान लेते हैं। यह केवल समय की बरबादी ही है और इससे मनुष्य की कोई प्रगति नहीं होती। उससे केवल अहंकार ही पनपता है और इस प्रकार कलाबाजियों में काफी शक्ति बरबाद हो जाती है। इन बातों से एक प्रकार की थकान भी आ जाती है जिससे आखिर तक यह व्यक्ति नहीं उबर पाता। थकान आने पर मन्त्र और इस प्रकार से प्राप्त शक्तियों का प्रभाव धीरे धीरे कम हो जाता है और अन्त में वह व्यक्ति पूरी तरह से प्रभावहीन हो जाता है। इसके बाद मन एकाग्र करने में उसे कठिनाई होती है और उसका जीवन दुखी बन जाता है। मैंने ऐसे सैंकड़ों, व्यक्ति देखे हैं जिन्होंने इस मार्ग में प्रसिद्धि, यश, संपत्ति आदि प्राप्त हों। इसलिए मंत्रों और क्रियाओं के पीछे लग-कर, उन पर नियन्त्रण करके चमत्कार करने में सफल होने के लिए ही अपना होन-हार जीवन बरबाद कर लिया है। वास्तव में तो, सत्य समझने के लिए अथवा ज्ञान प्राप्त करने में यह एक प्रकार की बाधा है। इसलिए मैं तुमसे इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि उक्त बुराई से बचने के लिए तुम इस प्रकार की क्रिया से बिलकुल दूर रहो।"

मैंने कहा,—"गुरुदेव क्या आपके कहने का तात्पर्य यह है कि चमत्कार करने के लिए अथवा किसी व्यक्ति को ठीक करने के लिए जब कोई व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग करता है तो वह अपनी शारीरिक शक्ति खर्च करता है? यदि ऐसा नहीं है तो जैसा कि आप कहते है उसे थकान क्यों आती है?" गुरुदेव ने कहा, कि किसी मनुष्य की शारीरिक थकान उसके मानसिक तनाव पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार की घटनाओं में किसी व्यक्ति को मानसिक शक्ति बड़े प्रमाण में खर्च करनी उसकी पड़ती है। लगातार का मानसिक तनाव मानसिक थकान को जन्म देता है और ऐसे

कई मामलों में इस कारण शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। जो व्यक्ति आध्यात्मिकता अथवा ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में आगे बढ़ते हैं वे अवश्य ही इस प्रकार की शक्तियां प्राप्त कर लेते हैं और चमत्कार करने अथवा किसी का इलाज करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति वास्तव में अधिक शक्तिशाली होते हैं। क्योंकि वे किसी महान और श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति भी यदि प्रसिद्धि यश, सम्पत्ति आदि प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की शक्तियों को खर्च करने के बुरे मार्गों में पड़ जाते हैं तो उन्हें दुख प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की बातें करने से उनका यह लक्ष्य आंखों से ओझल हो जाता है जिस लक्ष्य की खोज से ही उन्हें शक्तियां मिली हैं। इसलिए यह बात महत्वपूर्ण है कि इस विशेष मार्ग पर चलते समय किसी व्यक्ति को बड़ी साव-धानी बरतनी चाहिए। जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उससे किसी को अपना ध्यान नहीं हटने देना चाहिए। मैंने कहा,—"गुरुदेव जब गुरू अपने शिष्यों को मार्ग दर्शन देता है उस समय क्या वह अपनी कुछ शक्ति खो देता है? क्या यह कहना ठीक होगा कि ज्ञान प्रदान करने की उसकी क्षमता के अनुसार वह कुछ सीमित संख्या में ही अपने शिष्य बना सकता है? यदि वह बड़ी मात्रा में ऐसा करता है। तो क्या उसकी शक्ति समाप्त हो जाएगी?"

गुरुदेव बोले, "जो कुछ तुम सोच रहे हो वह सही नहीं है। अपने शिष्यों का मार्ग दर्शन करते समय गुरू अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति उसे नहीं देता है और इस प्रकार का मार्ग दर्शन कोई चमत्कार या इलाज नहीं होता। अतः यह स्पष्ट है कि शिष्यों की संख्या से मार्ग दर्शन करने की क्षमता मर्यादित नहीं होती किन्तु गुरू के भौतिक अस्तित्व की समयावधि से मर्यादित रहती है। कोई दीपक कुछ घण्टों तक जलने की क्षमता रखता है जो तेल की मात्रा पर निर्भर करती है। निश्चय ही कितने लोग इस प्रकाश से लाभ उठाते हैं, इस पर वह नर्भिर नहीं करती। यदि कोई भी उसके प्रकाश से लाभ नहीं उठाता तो भी वह जलता ही रहेगा। दिन के कुछ सीमित घण्टों के लिए सूर्य प्रकाश देता है और उदय और अस्त इस बात पर निर्भर नहीं करता कि कितने लोग उससे प्रभावित हो रहे हैं। उसी प्रकार जिस व्यक्ति ने सत्य अथवा ज्ञान को प्राप्त कर लिया है और जिसे सही अर्थ में गुरू कर सकते हैं उसकी ज्ञान प्रदान करने की कोई सीमा नहीं होती। तुम्हारे मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि एक ही गुरु के भिन्न-भिन्न शिष्य समान स्तर तक क्यों नहीं पहुंच पाते? इसे समझने का सरल तरीका यह है। वर्षा तो सभी स्थानों पर होती है किन्तु फसलों में विभिन्नता होती है और उनकी मात्रा में भी फरक होता है। उतनी ही मात्रा में वर्षा होने पर भी चट्टानों या बंजर भूमि में कुछ पैदा नहीं होता। हर व्यक्ति भिन्न-भिन्न पदार्थों से बना रहता है, उसकी शारीरिक और मानसिक संरचना

चौथा प्रकरण

हम लोग जिस सज्जन के यहां रुकने वाले थे, उन्होंने वहां पर पहले से सूचित कर दिया था और उनके लोग हमें लेने के लिए स्टेशन आये थे। स्टेशन से हम उस बंगले में गये। बंगले की देख भाल अच्छी प्रकार से हो रही थी और केवल हम लोग ही उसमें रहने वाले थे। हमारा निवास सुखपूर्वक हो इसके लिए हर बात की व्यवस्था की गयी थी और कई नौकर हमारी सुविधा के लिए तैनात थे। दार्जिलिंग हिमालय के उस भाग का पर्वतीय स्थल है जो चित्र के समान बड़ा ही सुन्दर स्थान है। बंगाल के राज्यपाल वहां पर गर्मी के दिनों में आते हैं। नगर की देख भाल की उचित व्यवस्था है। मौसम बहुत अच्छा रहता है। आदमी सारा दिन उत्साह में होता है। रातें ठडी होती हैं।

पहले दो दिन भिन्न-भिन्न जगहों पर जाने और प्राकृतिक सौन्दर्य देखने में बीत गए। गुरुदेव के दर्शन के लिए कोई भीड़ नहीं थी और कोई निश्चित कार्यक्रम हमारा नहीं था। इसलिए हम बड़े आराम से थे और दो दिनों में मेरे स्वास्थ्य में अच्छा परिवर्तन हुआ। मैंने गुरुदे से कहा,—"हमारी जब से भेट हुई है तब से अब तक इतना शांतिमय और एकान्त का स्थान अब मिल सका है। इसलिए अब मैं आपके सहवास से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता हूं।" अब तक मुझे जैसे अनुभव हुए थे और जो कुछ काम किया था वह सब मैंने उन्हें बता दिया। मैंने अपनी कई कठिनाइयाँ भी उनके सामने रखीं। उन्होंने मेरी बातों को ध्यान से सुना और फिर वह बोले,—"माधव, मैं केवल इसी उद्देश्य से तुम्हें यहाँ पर लाया हूं। मैं तुम्हारे अनुभव जानना चाहता था। ज्ञान अथवा समझने की सच्ची अवस्था जानने का एक मात्र सही मापदंड केवल अनुभव ही है। तुम्हारी बाकी सारी कठिनाइयां तो केवल मनचाहे या काल्पनिक सिद्धान्त हैं या फिर तुम्हारी वे इच्छाएं हैं जो तुम बनना चाहते हो। हम जो कुछ पुस्तकों में तढ़ते हैं या लोगों से सुनते हैं उसके कारण इस प्रकार की इच्छाएं पनपती हैं या कभी कभी वे हमारी जानकारी के संग्रह के परिणामस्वरूप होती हैं।

कुछ साल पहले मैंने वृद्धश्वर में कुछ क्रियाएं करने के लिए तुम्हें कहा था। शारीरिक और मानसिक दशा में सामञ्जस्य की स्थिति लाने में ये क्रियाएं आवश्यक थीं। उनका लाभ तुम देख चुके हो। अब जिसे निर्विकल्प समात्रि कहा जाता है उसमें

एक पाठ मैं तुम्हें बता रहा हूं। इस अवस्था में भौतिक अस्तित्व का ज्ञान और उनकी याद मानसिक अवस्था के विशाल विस्तार में विलीन हो जाती है, आन्तरिक इन्द्रियों से बना सारा संसार डूब जाता है। फिर मानसिक पहलू इतनी बड़ी मात्रा में विकसित हो जाते हैं कि अन्दर और बाहर की सभी बातें पूरी तरह घुल जाने की सीमा तक पहुंच जाती है जिसमें मानसिक चेतना बिलकुल लोप हो जाती है। अनुभव और अनुभव पानें वाले अलग-अलग नहीं रहते और इसलिए संबन्ध जोड़ने या बताने के लिए कोई अनुभव नहीं बचता।"

दूसरे दिन सुबह स्नान के बाद गुरुदेव ने बताना शुरू किया। मुझे पता नहीं है कि मैं कितने घण्टों तक उस विशेष दशा में रहा करता था। कभी-कभी कुछ दिन तक और कभी कभी पूरे सप्ताह भर। मुझे कभी भी भूख नहीं लगी और न कुछ विशेष थकान का अनुभव हुआ। मैं कुछ दुबला हो गया था किन्तु मेरा तेज बड़ी मात्रा में बढ़ गया था और स्वास्थ्य भी काफी अच्छा हो गया था। हम दार्जिलिंग में तीन महिने तक रहे। जिस व्यक्ति के बंगले में हम रुके थे वह व्यक्ति केवल एक बार हमसे मिलने आया था। मेरी दशा देखकर वह चकित हो गया था और उसने अकेले में मुझे कहा कि मेरे स्वरूप और स्वास्थ्य में आश्चर्यकारी परिवर्तन हुआ है। उसने कहा,—"मैं आपके बारे में अधिक नहीं जानता किन्तु आप गुरुदेव से भी महान् पंत लग रहे हैं।" उनकी शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद देते हुए मैंने कहा,—"आप नहीं जानते गुरुदेव क्या हैं? और मुझमें गुरुदेव का अंश मात्र भी नहीं है। मैं तो अभी नौसिखिया हूं और उनके चरणों में बैठकर कुछ सीख लेना चाहता हूं।" जब मैं अकेला होता तब मैं उन दिनों के बारे में सोचा करता जब मैं गुरुदेव के साथ रहा था और अपने में परिवर्तन के बारे भी सोचता। कुछ महीने पहले मुझमें जो बड़ा सरकारी अधिकारी था, वह कहीं नहीं बचा था। मैंने सोचा कि यदि मैं अपने लोगों से मिलूं तो वे मुझे नहीं पहचान सकेंगे। मुझमें कोई शारीरिक परिवर्तन नहीं हुआ था। मैं अब भी साफ पाजामा, कुर्त्ता ही पहनता था और आवश्यकता पड़ने पर ऊनी जर्सी ओढ़ लेता। मैं अभी भी दाढ़ी बनाता था और विदेशी ढंग से रहता था। परिवर्तन हुआ था मेरे दृष्टि कोण में, मेरे विचार, मानसिक पक्ष और भिन्न-भिन्न समस्याओं के आकलन में। ऐसा लगता था कि मुझ स्पष्टता मिल गयी थी और कुछ समय पहले जो चीजें मुझे समस्या से भरी प्रतीत होती थीं, अब इतनी साफ हो चुकी थीं कि अब मैं उन्हें समस्याओं के रूप में नहीं देखता था। वर्तमान के साथ मैं पूरी तरह संतुष्ट था और पूर्ण संतोष की भावना मुझमें थी। एक ऐसी भावना थी कि अपने ध्येय के बहुत समीप मैं आ पहुंचा हूं और ध्येय मेरी पहुंच में है। गुरुदेव की कृपालुता शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकती थी और उनके पास जो कुछ था वह सब मुझे सिखाने अथवा कहना चाहिए कि प्रदान करने

के लिए वे तैयार थे। उनमें मैं सच्चे गुरु को देख सकता था जो अपने दान की मात्रा के किसी विचार के बिना ही सब कुछ दे देता है। बिना किसी विचार के बिना किसी अपेक्षा के वे सब कुछ मुझे प्रदान कर रहे थे। संसार को सुखी बनाने के लिए सूर्य प्रकाश देता है या वर्षा बरसती है या पृथ्वी अपना सब कुछ दे देती है। गुरुदेव उसी प्रकार अपना सब कुछ प्रदान कर रहे थे।

मैं हरेक क्षण जी रहा था और अतीत के लिए मुझे कोई पश्चाताप नहीं था और न भविष्य के बारे में कोई चिन्ता। वर्तमान के साथ लगभग उसी गति से मैं चल रहा था प्रत्येक क्षण नया था और सुख और आनन्द से भरा था। भविष्य का कोई विचार नहीं था। कोई बन्धन नहीं थे और न कोई विचार परंपरा भी। आंतरिक और बाहरी, दिखने की पहुंच में और उससे परे सारी सृष्टि सुख से भर गई थी।

एक दिन गुरुदेव ने कहा,—"माधव, तुम्हारी प्रगति देखकर मैं संतुष्ट हूं। मैंने भरसक प्रयत्न किया है और जो कुछ मैं दे सकता था वह सब मैंने तुम्हें दे दिया है। अब मैं तुम्हें एक रहस्य बता रहा हूं। तुम नहीं जानते हो कि हमारा संपर्क अचानक ही नहीं हुआ। वह सोच समझकर हुआ। मेरे गुरु ने मुझे कहा था कि मैं तुम्हारा उत्तरदायित्व लूं और स्वयं तुम्हारे उनसे मिलने से पूर्व मैं तुम्हें शिक्षा प्रदान करूं। मैं नहीं जानता कि मैं कहां तक सफल हुआ हूं। इसका निर्णय उन्हें करना है, मुझे नहीं। अब समय आ चुका है और उनसे मिलने हम हिमालय जाने वाले हैं।" यह कोई भेद खुल जाने जैसी बात थी और मुझे उससे आश्चर्य भी हुआ। एकाएक मुझे उस स्वप्न का स्मरण हो आया जो विद्यालय में पढ़ते समय मैंने देखा था। मुझे हिमालय का उस सन्यासी के साथ अपनी भेंट का उसकी वर्फाच्छादित गुफा का स्मरण हो आया और मुझे कुछ कुछ उनके शब्द भी याद आये कि वह गुफा मेरी है और मुझे एक दिन वहां जाना है। मैंने ये सारी बातें गुरुदेव को बता दीं। वे मुस्कराये और बोले,—"माधव, तुम उसी व्यक्तित्व से मिलने जा रहे हो और गुफा में रह सकते हो। पृथ्वी के सबसे महान् संत के हाथों में तुम रहोगे। तुम नहीं जानते कि तुम कितने भाग्यवान् हो क्योंकि तुम उन कतिपय व्यक्तियों में से हो जिन्हें उनकी कृपा प्राप्त हुई है। वे प्रत्यक्ष ईश्वर के समान है।"

"इस प्रकार तुम देख सकते हो कि एक महान् व्यक्ति ने तुममें रूचि ली है और तुम्हारे जीवन का मार्ग निर्धारित किया है। इसके कारण केवल उन्हीं को पता है। केवल यही नहीं, किन्तु उन्होंने सब व्यवस्थाएं कीं, सारे अवसर निर्माण किये और तुम्हारे जीवन की सारी घटनाओं को इस प्रकार से ढाल दिया कि तुम्हें उनके

द्वार बनाये गये मार्ग पर चलना पड़ा चाहे तुम इसे चाहो या न चाहो। अर्थात् यह सब तुम्हारे कल्याण के लिए ही था जिसे अब तुम समझ गये हो। मैं तो केवल यन्त्र ही रहा हूं, सारा श्रेय उन्हीं को है।" जब गुरुदेव ने यह कहा तो मैं गद्गद् हो गया। मैं उनके चरणों में गिर पड़ा और बालक के समान रोते रहने से स्वय को रोक न सका। मैंने कहा —"गुरुदेव यह व्यक्तित्व कौन है यह मैं नहीं जानता और न मुझे उसकी चिन्ता ही है। आपने जो कुछ मेरे लिए किया है उसके लिए मैं सदैव कृतज्ञ हूं। मेरे जीवन में जो रूपान्तरण हुआ है वह केवल आपके कारण ही है, अन्यथा यह न हो पाता। अपनी भावनाएं व्यक्त करना मेरे लिए असंभव है किन्तु मैं आपको यह बता देता हूं कि साक्षात् ईश्वर भी मेरे जीवन में इतने चमत्कार नहीं करा सकता था जितने आपने आसानी से कर दिखाये हैं।" गुरुदेव ने मुझे उठा लिया और मेरे दोनों गालों का चुंबन किया।

दो दिन बाद हमने दार्जिलिंग छोड़ दिया और हम कलकत्ता आये। यात्रा में गुरुदेव ने मुझ से कहा,—"माधव मैं तुम्हें किसी उद्देश्य से बंगाल लाया था और तुम जानते हो कि मेरा काम पूरा हो गया है। अब अपने जीवन मार्ग का निर्धारण करने में तुम स्वतन्त्र हो। अब केवल एक ही बात मेरे लिए रह गयी है कि हिमालय के तुम्हारे प्रवास में, मैं तुम्हारे साथ रहूं। अब मैं यह तुम्हारे ऊपर छोड़ रहा हूं कि तुम अपना कार्यक्रम बना लो और हरिद्वार में मुझे मिलो। अपने मित्रों और रिश्तेदारों से मिलने के लिए और शेष व्यावहारिक बातें पूरी कर लेने के लिए आवश्यक समय ले सकते हो और जिस दिन तुम हरिद्वार पहुंचोगे उस दिन मैं तुम्हें मिल जाऊंगा।" मैंने कलकत्ता में गुरुदेव से विदा ली और मैं बम्बई के लिए रवाना हो गया। अपने आने के बारे में मैंने भाई साहब को खत लिख दिया था और जिस दिन मैं बम्बई पहुचा उस दिन रविवार था। भाई साहब भाभी जी को साथ लेकर स्टेशन आये थे। जब उन्होंने मुझे देखा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों बोले,—"माधव, तुममें बड़ा परिवर्तन हुआ है और हम प्रसन्न हैं।" हम घर पहुंचे। मुझ देखकर बच्चों ने बड़ा शोर किया और उन्हें खुशी होना स्वाभाविक ही था। मैंने दाढ़ी बनाई और स्नान करने के बाद जब मैं नीचे आया तो चाय बन चुकी थी और नाश्ता तैयार था। अपने छोटे परिवार के साथ भाई साहब प्रतीक्षा कर रहे थे। भाभी जी ने कहा,—"माधव जी, गुरुदेव के साथ आपने समय कैसे बिताया, सन्त बनने में आपकी कितनी प्रगति हुई, इसके बारे में हमें बतायें।" मैंने कहा, "हमेशा की तरह ही गुरुदेव का स्वास्थ्य अच्छा है और उनके साथ लगभग छह माह तक मैं बंगाल रहा। आपने देख ही लिया होगा कि मैं संत या सन्यासी नहीं बना हूं और वैसा ही हूं जैसा पहले था।" भाई साहब ने कहा,—"मेरी पत्नी से क्यों छिपा रहे हो? तुममें जो परिवर्तन हुआ है वह काफी स्पष्ट है। शारीरिक रूप से तुम्हारा वजन घटा है लेकिन तुम्हारा स्वास्थ्य

बड़ा अच्छा लग रहा है और तुम्हारा चेहरा ताक़त से भरा दिख रहा है और तेज भी खूब है। विशेष रूप से तुम्हारी आंखें तुम्हें हमसे दूर ले जाती हैं। कैसे भी हो, मुझे लगता है कि यद्यपि तुम इस समय मेरे इतने समीप हो, तुम हमसे दूर हो, चाहे तुम इसे मनोदशात्मक, मानसिक या कुछ भी कहो।" मैंने हंस कर कहा,—"ऐसी कोई बात नहीं, मैं लगभग छह माह तक आप से दूर था इसलिए आपको ऐसा लग रहा है। भाभी जी ने कहा,— 'आप सत्य बताना नहीं चाहते या कहना चाहिए कि सत्य छिपाना चाहते हैं।" किसी न किसी तरह हमें लग रहा है कि कम से कम हमारे मुकाबले में क्यों न हो, आपने बेहतर अवस्था प्राप्त कर ली है।" विस्तार में न जाते हुए कलकत्ता, जगन्नाथ और दार्जिलिंग में मैंने अपने दिन कैसे बिताये यह मैंने उन्हें बता दिया। मेरे डक्टर भाई और उनका परिवार भोजन के लिए आमंत्रित था। अतः भोजन के समय एक प्रकार का पारिवारिक सम्मेलन जैसा लग रहा था। उन्होंने भी मुझ में परिवर्तन के बारे में वही मत प्रकट किया। भाई साहब ने पूछा कि अब आगे क्या करना है। मैंने उन्हें बताया कि अपने भविष्य के बारे में मैंने पहले ही तय कर लिया है और एक या दो दिन में ही मैं अपनी योजना उनके सम्मुख रख दूंगा। अपने मित्रों के साथ मिलने में और कई स्थानों में जाते हुए लगभग एक सप्ताह मैंने बिता दिया। एक सप्ताह बाद मैंने अपने भाईयों को बुलाकर कहा कि मैंने हिमालय जाना तय कर लिया है और यह निश्चित नहीं है कि मैं आगे उनसे मिल सकूंगा भी या नहीं। उन दोनों को ही यह सुनकर आश्चर्य हुआ और धक्का सा मिलगा। मेंने कहा,—"कृपया मुझे ध्यानपूर्वक सुनिये। कुछ मास तक जब मैं गुरुदेव के साथ था तब आध्यात्मिकता को बड़े प्रमाण में समझने का मैंने प्रयास किया है। मै आपको ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूं कि आध्यात्मिकता क्या है यह मैं काफी अच्छी तरह समझ सका हूं। कुछ बनने, कुछ बड़ा व्यक्ति बनने अथवा कुछ प्राप्त करने के संघर्ष में अब मेरी कोई रुचि नहीं रही है। आप देख ही रहे हैं कि मैं पूर्णतः सुखी हूं और जो कुछ भी मेरे साथ रहने वाला है उससे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हूं। आप का और मेरा संसार अलग-अलग, इस अर्थ में है कि आपकी दृष्टि से जो वस्तुएं अधिक महत्व की हैं, या आवश्यक हैं, आपके मत में जो उद्देश्य और ध्येय हैं उनका मूल्य और इंगिति, जहां तक मेरा प्रश्न हैं, कुछ भी नहीं रह गया है। सांसारिक आसक्तियाँ, अलौकिक उपलब्धियाँ, मेरे आकलन में कम महत्वपूर्ण रह गई हैं। संक्षेप में आपके संसार में मैं ठीक नहीं बैठता अतः अब मैं ऐसा सोचने लगा हूं कि सामाजिक जीवन व्यतीत करना मेरे लिए असंभव है। आप एक प्रकार से जीवन से बंध गए हैं, इस संसार में आपके लिए आकांक्षाएं और प्रेरणाएं मौजूद है। आपकी अपनी जिम्मेदारियां हैं और कर्तव्य हैं। सौभाग्य से मैं इन सबसे मुक्त हूं और मुझे पीछे रोक रखने के लिए कुछ भी नहीं है। सुखी बनने और खुशहाली पाने के लिए आप अपने रास्ते पर चल रहे हैं। इसलिए मेरे रास्ते पर चलने और जो कुछ ध्येय मेरा हो उसे

पीने के लिए मुझे इजाजत दीजिए। अब तक आपने मेरी देख भाल की है और मेरे हितों का ध्यान रखा है। मैं नहीं सोचता कि रक्षण करने लायक अब मेरा ऐसा कोई संसार में स्वार्थ शेष रहा है, जिसका ध्यान रखना चाहिए। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अपने ध्येय की खोज में हिमालय जाने के लिए मुझे आज्ञा दीजिए और मुझे विश्वास है कि आपके आशीर्वाद से मैं सफलता प्राप्त करूंगा।" मेरे भाई और भाभियों की आँखों में आँसू भर गए थे। मैंने कहा,—"दुःख की कोई बात नहीं है। आपको तो आनंदित होना चाहिए क्योंकि मैं सुखी हूं और परम सुख की खोज में हिमालय जा रहा हूं। किसी भी परिस्थिति में अपनी चिंता करने के लिए मैं पर्याप्त रूप से सक्षम हूं और विश्वास के साथ आपको यकीन दिलाता हूं कि कभी मुझ पर संकट नहीं आएगा। केवल एक बात मैं आपको निश्चित रूप से आज नहीं बता सकता, कि हम फिर कब मिल सकेंगे। जब आपको मेरी बड़ी आवश्यकता होगी तब मैं किसी न किसी तरह आपसे संपर्क साधने का प्रयास करूंगा इसका आप विश्वास रखें। मैं नहीं सोचता कि मुझे अब धन की आवश्यकता पड़ेगी और मेरी जायदाद का मेरी नजर में कोई महत्व नहीं रहा है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप दोनों में समान रूप से उसका वितरण होना चाहिए।" वे इसके लिए सहमत नहीं हुए और मेरे बड़े भाई साहब ने कहा,—"माधव, यह मेरे ऊपर छोड़ दो और जो कुछ व्यवस्था पहले बनी है उसे बिगाड़ने की आवश्यकता नहीं है। उन बातों के लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं है जिसके लिए तुम्हें आसक्ति नहीं रही है और जैसा कि तुमने कहा है। तुम्हारी संपति की व्यवस्था अब तक जैसे हो रही थी वैसा हो चलने दो।

मैं अपने मित्र रमेश और उसकी पत्नी मालती से नहीं मिल सका था। वे उत्तर हिन्दुस्तान में अपनी छुट्टियाँ बिता रहे थे किन्तु किसी समय उनके लौट आने की आशा थी। शनिवार की सुबह थी और मुझे भाई साहब के यहां रमेश से मिलकर सुखद आश्चर्य हुआ। रमेश मेरे बारे में पूछने आया था। वे शाम को ही लौटे थे और उन्हें पता चला था कि मैं बम्बई में हूं और उनके यहां भी हो आया हू। रमेश एक अच्छा खासा आदमी लगता था। उसका वजन भी बढ़ गया था। वह सुखी और उत्साही लग रहा था। मुझ से मिलकर वह बहुत खुश था और उसने अपने यहाँ रात्रि भोजन के लिए आने का निमन्त्रण दिया। मालती के बारे में पूछा तो पता चला कि उसकी सेहत अच्छी है और अब उसके दो बच्चे भी हैं जिन्हें मैं पहली बार मिलने वाला था। शाम के लगभग सात बजे मैं उनके निवास स्थान पर गया। बम्बई के अमीर लोगों की बस्ती में एक अच्छे सुसज्जित घर में वे रह रहे थे। जैसाकि मैंने सोचा था सम्पत्ति और समृद्धि के चिन्ह मुझे दिखाई पड़े। हर वस्तु कलात्मक ढंग से

अच्छी तरह रखी थी। मालती ने काका माधव के रूप में अपने बच्चोंसे मेरा परिचय करा दिया। दोनों ही बच्चे सुन्दर और स्वस्थ थे और उनकी देखभाल अच्छी तरह से हो रही थी। कुछ बातचीत के बाद हम भोजन कक्ष में गये। बच्चों का खाना पहले ही हो चुका था और परिचारक उन्हें शयन कक्ष में ले गये थे। हम तीनों के लिये टेबल पर बहुत अच्छा खाना रखा हुआ था। भोजन के पश्चात् मैंने कहा : "मालती आप सुखी और अमीर लग रही हैं। रमेश में आपने एक आदर्श पति को पाया है। मैं आप दोनों के लिये सारी समृद्धि और हर अच्छी वस्तु की कामना करता हूं।" रमेश बोला, "माधव, तुम ऐसी भाषा में बोल रहे हो जैसे दादा, परदादा बोला करते हैं। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि तुम सांसारिक जीवन से पूरी तरह निवृत्त हो गए हो और तुम्हें अब कोई रुचि नहीं रही। जब से मैं तुमसे सुबह मिला हूं तभी से तुम में जो बदल आया है उसे समझने में मैं असमर्थ हो रहा हूं।"

मालती ने कहा, – "माधव, हमने तुम्हारे और तुम्हारे गुरुदेव के बारे में इतना कुछ सुन रखा है कि मुझे भय है कि तुम किसी भी क्षण सन्यासी बन सकते हो। पिछले कई वर्षों से मुझे ऐसा ही लग रहा था किन्तु अब मैं सोचती हूं कि बात इस सीमा तक बढ चुकी है कि तुम इस दिशा में किसी भी समय निर्णय ले सकते हो।" रमेश ने कहा, "अब जरा साफ-साफ बता दो अपने भविष्य के बारे में तुमने क्या तय किया है ? तुमने पहले ही सरकारी नौकरी त्याग दी है और जहाँ तक हम समझते हैं, तुम बिना उद्देश्य के घूम रहे हो। अब हमें बता दो कि तुम्हारी अगली क्या चाल है ?"

मैंने कहा, – "चाल वाली कोई बात नहीं है किन्तु जैसा मालती ने पहले ही कहा है, मैंने गुरुदेव के पदचिन्हों का अनुसरण करना तय कर लिया है। कदाचित् आपके साथ यह मेरी अंतिम भेंट है। मैं हिमालय जा रहा हूं और मैं नहीं जानता कि कब लौटूंगा। ऐसा भी हो सकता है कि मैं सालों बम्बई न आ सकूं।" इस बात पर वे दोनों गम्भीर हो गए और मैं देख रहा था कि मालती की आँखों में आँसू आ गए हैं। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा,— "वास्तविक सत्य, वास्तविक सुख और शान्ति प्राप्त करने की इच्छा मुझमें थी। मैं आपको बता दूं कि मैं लगभग सफल हो गया हूं। तुम लोगों को यह अजीब लगता होगा और हो सकता है कि तुम इस बात को स्वीकार न करो किन्तु इस वर्तमान जीवन से मैं पूरी तरह सुखी हूं। मैं आपको यह बता दूं कि मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है और जिस वस्तु को पास रखना चाहिए ऐसी कोई वस्तु मुझ से नहीं छूटी। आप जिस प्रकार जीवन की ओर देखते हैं उससे अलग तरह से मैं जीवन को देखता हूं। हम एक ही बात को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देख रहे हैं। मैं आपमें

या आपके जीवन पद्धति में दोष नहीं ढूंढ रहा हूं किन्तु मैं आपको विश्वास दिला दूं मेरा जीवन भी दोष रहित है।" रमेश ने कहा,—"क्या तुम ऐसा सोचते हो कि तुम अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के बीच रहकर अपने उद्देश्य को नहीं पा सकते ? क्या तुम ऐसा सोचते हो कि इस संसार को त्याग कर हिमालय की शरण लेना परम आवश्यक है ? यदि तर्क के लिए यह स्वीकार कर भी लें कि तुमने आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कोई श्रेष्ठता प्राप्त भी कर ली है, किन्तु सामान्य रूप से उसका मानवता के लिए और विशेष रूप से तुम्हारे निकट सम्बन्धियों के लिए क्या उपयोग होने वाला है ?" मालती ने कहा, —"माधव तुम हम सबको छोड़कर जाने की अपेक्षा हमारे बीच रह कर समाज की सेवा और अधिक अच्छी तरह से कर सकते हो।" मैंने कहा,—"आप दोनों की मेरे प्रति जो भावनाएं हैं उन्हें मैं अच्छी तरह जान रहा हूं किन्तु मैं आपको बता दूं कि वर्तमान के मेरे उद्देश्य को पूरा करने के लिए मुझे इस समय हिमालय में ही रहना होगा। आयु, अनुभव और ज्ञान के साथ आपने देखा होगा कि जीवन के मूल्यों में सतत बदल होता रहता है। कितनी ही बातें जिन्हें हम बचपन में महत्व दिया करते थे, अब हमारे लिए किसी भी कीमत की नहीं रही हैं। उसी प्रकार समझ के साथ समाज, समाज सेवा, निकट सम्बन्धी, मित्र और रिश्तेदारों के मूल्य भी बदल जाते हैं। आज, जहां तक मेरा सम्बन्ध है, इन सब चीजों के मूल्यों में भारी बदल आ चुका है और एक प्रकार से इन सारे विचारों से मैं मुक्त हूं।" रमेश ने कहा,— "माधव, जैसा कि तुम जानते हो, मैं भी दर्शन का विद्यार्थी हूं किन्तु दुर्भाग्य से मैं वह भाव पाने में असमर्थ रहा हूं जो तुम्हारे पास है। मैं देख सकता हूं कि कोई तर्क या दलीलें अपने निर्धारित रास्ते को बदलने के लिए तुम पर असर नहीं करेंगी। यदि तुम्हारे अनुभव और उपलब्धियां शब्दों में प्रकट हो सकती हों तो मैं चाहता हूं कि तुम उन्हें मुझ तक पहुंचा दो।" रात को लगभग दस बजे हम भोजन करके बाहर आये। उन दोनों से विदा लेते समय उन्हें सचमुच ही काफी दुख था।

पाचवां प्रकरण

दूसरे दिन मैं बम्बई से दिल्ली के लिए चल पड़ा। मेरे मित्र और सम्बन्धियों के अलावा भी कई व्यक्ति स्टेशन पर मुझे विदा करने आये थे। दिल्ली आने के बारे में मैंने गुप्ता जी को बता दिया था। वह अपनी पत्नी के साथ मुझे लेने के लिए स्टेशन आये थे। मैं सीधा उन्हीं के घर गया और विनोदिनी, उसके पति और बच्चे

से मुलाकात की। विनोदिनी के एक छोटा सा अच्छा बच्चा था बिल्कुल गुडिया जैसा और होशियार। वहां पर मेरा बड़ी अच्छी तरह से स्वागत हुआ और काफी समय पश्चात् उनसे मिलने में सचमुच बड़ा आनन्द था। गुप्ता दम्पति कुछ वृद्ध हो चले थे किन्तु प्रसन्नचित्त लग रहे थे। विनोदिनी का स्वास्थ्य अच्छा था और हमेशा जैसा वह हस मुख थी। मैं दो दिन तक उनके साथ रहा। दूसरे दिन सायंकाल जब हम भोजन के बाद बैठे थे मैंने तब गुप्ता जी को हिमालय जाने के बारे में बताया। मुझे जो कुछ कहना था, उसे उन्होंने बड़ी शान्ति से बिना कोई टिप्पणी किये सुन लिया। वह बोले,- "अच्छी तरह सोच विचार के बाद आपने यह निर्णय किया है ऐसा मैं सोचता हूं और आपके लिये सबसे अच्छी बात क्या है यह आप जानते है। आपका उद्देश्य चाहे कुछ हो उसमें आपको सफलता मिले यह मैं कामना करता हूं। यदि आपको कभी सहायता की आवश्यकता हो तो आप मुझे अपने मित्र जैसा मानें और मैं आपको विश्वास दिला दूं कि मेरी सारी योग्यता से मैं आपकी सहायता करूंगा।" विनोदिनी ने कहा,—"माधव जी मुझे विश्वास नहीं होता कि सन्यासी का जीवन आपको अच्छा लगेगा। मेरी दृष्टि में आपने बड़ा कदम उठा लिया है और आपके एकान्तवास से न आपको लाभ होगा और न संसार की कोई सहायता होगी। यदि मैं कह सकूं तो यही कहूंगी कि आपका कदम केवल गलत ही नहीं है, वह बेवकूफी वाली बात है। आप लौट कर आयें और समाज में रहें तो मुझे खुशी होगी।" मैं हस दिया और आगे बोलने के लिए उत्साहित नहीं किया। श्रीमती गुप्ता ने कहा,—"माधव जी, योग और ज्ञान के बारे में मैं कुछ ज्यादा नहीं जानती। मैं एक सीधी सादी महिला हूं जैसा कि आप जानते हैं और अपने जीवन भर में भक्ति में विश्वास करती आ रही हूं और पारिवारिक परम्पराओं के अनुसार कुछ धार्मिक बातें करती रही हूं। मैंने कितने ही लोगों से सुन रखा है और संतों द्वारा लिखी धार्मिक पुस्तकों में पढ़ रखा है कि भक्ति के द्वारा किसी व्यक्ति को मुक्ति मिलती है और वह ईश्वर को पा सकता है। भक्ति में किसी को ससार को त्यागने अथवा सन्यास लेने की आवश्यकता नहीं होती। सामान्य साँसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी कोई भक्ति में आगे बढ़ सकता है। यदि यह सत्य है तो क्या मैं जान सकती हूं कि आपने संसार का त्याग करने और सन्यास लेने की बात क्यों सोच ली? मैं सोचती हूं कि आप बहुत बड़ा त्याग कर रहे हैं जो आवश्यक नहीं है।" श्री गुप्ता ने भी अपनी पत्नी के तर्क का समर्थन किया। मैंने कहा "आप जो भी कह रहे हैं वह कुछ सीमा तक सही हो सकता है। मैं कभी उस रास्ते से नहीं गया हूं पर मैं आपको बता दूं कि सांसारिक जीवन जटिलताओं से भरा हुआ है और विभिन्न प्रकार की समस्याएं सामने रखता है। इनको सुलझाने में सारी जीवन शक्ति बरबाद हो जाती है और कोई ठोस कार्य करने के लिए बहुत कम समय बच पाता है। कोई व्यक्ति दिन प्रति-

दिन की समस्याओं में इतना उलझ जाता है कि भक्ति यान्त्रिक वस्तु बन जाती है और मूलभाव को छोड़कर जिम्मेदारी का भाग बनकर रह जाती है। वह किसी ठोस परिणाम तक ले जा सकती है इसके बारे में मुझे आशंका है। मैंने भी ऐसे कई व्यक्तियों के जीवन चरित्र पढ़ रखे हैं जिन्होंने सत्य को प्राप्त करने में भक्ति के माध्यम से बड़ी प्रगति की है किन्तु लगभग सभी मामलों में उन्हें उसमें से अपने को पूरी तरह से बाहर निकाल लेना पड़ा है जिसे आप सांसारिक जीवन कहते हैं। समाज में उनका जीवन केवल नाटक मात्र रह गया था और किसी मामले में उसे सफल नहीं कहा जा सकता। बिना आकार के चित्र के समान उस जीवन को कहा जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भक्ति में भी आंतरिक रूप से क्यों न हो सांसारिक जीवन का त्याग करने की आवश्यकता होती है। मैं तो इसे दम्भी का जीवन जीने के समान समझता हूं। क्या इस लिए उस व्यक्ति को जिसे सत्य की प्राप्ति करनी है वांछनीय है कि वह सीधा संसार का त्याग कर दे? प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि वह दुहरा जीवन जी सके जैसा कि भक्त को करना पड़ता है। कितनी बार उसका परिणाम दुखदायी होता है और किसी भी समय वह समन्वय से भरा नहीं रहता। वह आप जैसे लोगों के लिए अच्छा हो सकता है जो उसके बारे में ज्यादा गम्भीर नहीं होते और ज्यादा ठोस परिणाम पाने की इच्छा नहीं करते। किन्तु निश्चित रूप से वह मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता जो निश्चित उपलब्धि और विशिष्ट ध्येय की पूर्ति के पीछे लगा है। मुझे क्षमा करें, मैं आपको नीचे दिखाना नहीं चाहता और किसी भी तरह आपकी भावनाओं को आघात पहुंचाना नहीं चाहता और न तो आपकी भक्ति की आलोचना ही करने की मेरी इच्छा है किन्तु मैं आपको यही बता देना चाहता हूं कि भक्ति एक लम्बी प्रक्रिया है जो आपत्तियों और जटिलताओं से भरी है और मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाती हम लोग कड़ी धातु के बने हैं और जब हम अपने ध्येय की खोज में रहते हैं तो हम तब तक चैन नहीं लेते जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेते।" श्री गुप्ता ने कहा—"माधव जी आप जो कुछ कह रहे हैं उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं।" श्रीमती गुप्ता ने भी कहा,—"मेरा आशीर्वाद आपके साथ है। आपकी सफलता के लिए शुभकामनाएं। मैंने उनके मधुर सहवास में एक या दो दिन और बिताये और हिमालय के लिए चल दिया।

मैं सुबह हरिद्वार स्टेशन पर उतरा। अब मैं हिमालय में था। बहुत ज्यादा सर्दी होते हुए भी अच्छा लग रहा था। सूरज उग रहा था और क्षितिज प्रकाशित हो रहा था। मेरे लिए यह रोमांचकारी दृश्य था और लम्बे डग भरता हुआ मैं स्टेशन से बाहर आया। मैं सोच रहा था कि किसी स्थान पर चलना चाहिए। उसी समय किसी परिचित व्यक्ति को अपनी ओर आते हुए मैंने देखा और आनन्द विभोर होकर मैं उनकी तरफ भागा। उन्होंने कुली से कहा कि सामान ले चलो। गुरुदेव

हरिद्वार को अच्छी तरह जानते थे। वे वहाँ पर सबसे परिचित थे। लगभग एक सप्ताह तक हम हरिद्वार रहे। वह एक पवित्र स्थान है और सारे हिन्दुस्तान से लोग वहाँ आते रहते हैं। वहाँ पर कई साधु रहते हैं। ऐसे हजारों व्यक्ति भी वहाँ है जो सदैव कुछ क्रिया करते रहते हैं जिससे माना जाता है कि मुक्ति मिलती है। महान् नदी गगा जिसे सबसे ज्यादा पवित्र माना जाता है, यहाँ पर अपने शानदार वैभव के साथ बहती है। उसके किनारे-किनारे कई आश्रम हैं। मुझे वह स्थान बड़ी भीड़-भाड़ का लगा और वहां रहना अच्छा नहीं लगा। गुरुदेव निकटवर्ती स्थानों पर मुझे ले गये। दिन में दो बार गंगा में नहाने और पहाड़ियों में घूमने के अलावा मुझे हरिद्वार में ज्यादा रुचि नहीं थी। मुझे लगा कि नागरी वातावरण से दूर इतनी अच्छी जगह पर यह स्थान है किन्तु भिखारियों व्यवसायी ब्राह्मणों ठेलेवालों और व्यापारियों ने इसे बिगाड़ा रखा है। मंदिरों का महत्व समझे बिना उनको बड़ी संख्या में मन्दिर बनाकर केवल नाम और प्रसिद्धि पाने के लिए खुले हाथों धन का खर्चा कर भारत के धनी वर्ग ने कोई भला न करके इस स्थान को नुकसान ही पहुंचाया है। हरिद्वार से हम ऋषिकेष आये। यहां पर किसी आश्रम में हमारे ठहरने की व्यवस्था थी। साधु और सन्यासियों के रहने के लिए ही इस विशाल भवन को बनाया गया है। यह स्थान बहुत अच्छी जगह पर है और हिमालय का सुन्दर दृश्य यहाँ से दिखता है। मुझे वह स्थान बहुत अधिक अच्छा लगा। आश्रम के लोग गुरुदेव को अच्छी तरह जानते थे। सम्मान के साथ हमारा स्वागत हुआ और सब लोग गुरुदेव को आदर की दृष्टि से देखा करते थे। यहां पर मैंने अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों से भेंट की जो सत्य की खोज में वहाँ पर रुके हुए थे। लगभग पन्द्रह दिन हम ऋषिकेश रहे। गुरुदेव ने मुझे आजादी दी थी अपनी सारी इच्छाएं पूरी कर लेने के लिए उन्होंने मुझे कहा था। वे अपने प्रकार से व्यस्त थे। वे मुझसे केवल शाम के समय ही मिलते थे। अपना समय मैंने ऐसे कई व्यक्तियों के सहवास में बड़ी अच्छी तरह बिताया जो आध्यात्म विद्या में अच्छी प्रगति कर चुके थे। यहां पर मुझे इस मार्ग के लोगों के साथ अपने अनुभवों का आदान प्रदान करने का अवसर प्राप्त हुआ। एक दिन गुरुदेव ने मुझसे कहा, "माधव हम लोग कल ऋषिकेश से निकलेंगे। अपना सारा सामान यहीं छोड़ देंगे। अब आगे तुम्हें शायद ही किसी चीज की आवश्यकता पड़ेगी। मैंने तुम्हारे लिए एक छड़ी ली है पहाड़ियों पर चढ़ते और उतरते समय तुम्हें उसकी आवश्यकता पड़ेगी। बर्फ पर चलते हुए अपना संतुलन बनाए रखने में भी उससे तुम्हें सहायता होगी। तुम्हें अपने साथ एक लोटा भी लेना होगा जो प्रवास में काम देगा। तुम्हारे पास जो कुछ है वह सब आश्रम के व्यवसाय को सौंप दो।" गुरुदेव ने जितनी चीजें अपने पास रखने के लिए कहा था उसके अलावा मैंने अपने प्रवासी झोले में डायरियां पेन और कुछ ऐसी चीजें रख लीं जो मेरी नजर में प्रवास में आवश्यक थीं। दूसरे

दिन सुबह हम ऋषिकेश से चल पड़े। उस दिन तेरह जनवरी थी और गगा स्नान के लिए तीर्थयात्रियों की भारी भीड़ थी क्योंकि इस दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है इसलिए यह मंगल दिन माना जाता है। शीघ्र ही हमने सड़क छोड़ दी और हम पगडंडी पर चलने लगे। गुरुदेव आगे चल रहे थे। शीघ्र ही हम जंगलों में से गुजरने लगे जहां पर पगडडियां भी बर्फ के अन्दर खो गई थीं।

जंगल के बीच से पैदा चलने का यह मेरा पहला अनुभव नहीं था। कितनी ही बार में शिकार के समय पशुओं की खोज में जंगलों में घूमा था। उस समय मेरे कन्धों पर राइफल या बन्दूक रहती थी किन्तु इस समय उसके स्थान पर मेरे पास छड़ी थी। उस समय मैं पशुओं का शिकार करने निकलता था और इस समय उद्देश्य बिल्कुल ही भिन्न था। एक प्रकार से यह अनोखा अनुभव था और बड़ा प्रसन्नकारी भी। गुरुदेव बातें करने के मनोभाव में थे और अपने जीवन की विविध घटनाए बिल्कुल जीवंत ढग से बता रहे थे। उन्हें सुनना अच्छा लग रहा था और घटनाएं भी बड़ी मनोरंजक थी। भोजन किये बिना लगभग पूरा दिन हम चलते रहे। हमने दोपहर विश्राम नहीं किया क्योंकि हम थके नहीं थे और न ही गुरुदेव ने विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। शाम के समय एक गहरी घाटी में कुछ लोगों की बस्ती तक हम पहुंचे। कहीं पर घाटी घने बर्फ से ढक गई थी। इधर-उधर कुछ झोंपड़ियां बनी थीं। कुछ बच्चे खेल रहे थे। गुरुदेव ने एक परिचित व्यक्ति का नाम उनसे पूछा। सौभाग्य से उसी क्षण वह व्यक्ति झोंपड़ी से बाहर आ गया जिसके बारे में गुरुदेव पूछ रहे थे। गुरुदेव को देखते ही वह दौड़ता हुआ हमारे पास आया और उनके चरणों में गिर पड़ा। शीघ्र ही बस्ती के लोगों को गुरुदेव के आगमन का पता चल गया और लगभग सभी लोग उनसे मिलने चले आये। हमारे निवास के लिए एक झोंपड़ी रख दी गई थी और कई स्थानों से चटाइयां और कम्बल लाकर हमारा निवास आराम से हो इसलिए प्रयास किया गया।

भोजन के पश्चात मैं चटाई पर लेटा ही था कि मेरी आखें मुंद गईं। मुझे बड़ी गहरी नींद लगी थी और सुबह छह बजे मैं हमेशा के समान ताजगी का अनुभव कर रहा था।

गुरदेव ने पूछा कि चाय की आवश्यकता है क्या? मैंने उन्हें कहा कि मेरी सारी चीजों के साथ मैंने चाय भी ऋषिकेश में ही छोड़ दी है और मुझे चाय की आवश्यकता नहीं रहेगी। गरम गरम दूध का प्याला पीकर हमने उस गाँव के लोगों से विदा ली और हम आगे बढ़े। इस प्रकार लगभग एक सप्ताह तक हम हिमालय में यात्रा कर रहे थे। हम केवल भोजन और रात बिताने के लिए ही भिन्न भिन्न स्थानों पर रुके। गुरुदेव के मनोरजक स्वभाव के कारण मुझे प्रवास की थकान प्रतीत नहीं

हुई । मार्ग में उन्होंने कई विषयों पर प्रकाश डाला और इस अवधि मैंने उनसे कई चीजें सीखीं । जब हम एक सांयकाल बर्फाच्छादित पर्वत की गुफाओं में पहुंचे तब हमारा प्रवास समाप्त हुआ । पिछले पच्चीस घंटों में हमने एक भी गांव या बस्ती नहीं देखी थी । पिछली रात हमने एक झाड़ी के नीचे बिताई थी यद्यपि इस प्रकार की कठिनाइयों से गुजरने का मेरा यह पहला ही अनुभव था किन्तु पूरी तरह से थक जाने के अलावा मुझे कुछ भी नहीं लगा । जब मैंने गुफा देखी तब मैंने शब्दश: अपने को गुफा के दरवाजे तक घसीटा किन्तु मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य था कि इतना अधिक चल चुकने के बाद भी गुरुदेव उसी प्रकार प्रसन्नचित और उत्साही थे । यह एक रहस्य था और उसे जानने के लिए मैं उत्सुक था । पहले गुरुदेव ने गुफा में प्रवेश किया और मैं उनके पीछे आगे बढ़ा । हमने कुछ ही कदम आगे बढ़ाये होंगे कि मैंने देखा कि एक सिंह और एक सिंहनी मानो हमारी ही प्रतीक्षा में वहां पर पड़े हुए है । मैं जोर से चिल्लाया और गुरुदेव को पकड़कर पीछे खींचने का प्रयास मैंने किया । आश्चर्य की बात यह थी कि गुरदेव जरा भी पीछे नहीं हटे किन्तु उन्होंने शांति से कहा, "माधव इनसे घबराओ नहीं, ये हमारे मित्र हैं, ये इस स्थान के पहरेदार हैं ।" मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि यह इस प्रकार का अनुभव था जिसके लिए मैं तैयार नहीं था । कोई ऐसी बात नहीं कि मैं घवड़ा गया था किन्तु यह मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि बिना बन्दूक के जंगल के राजा रानी की अपनी मांद में उनकी उपस्थिति से में परेशान सा हो गया था । गुरूदेव उनके पास चले गये और दोनों प्राणियों ने ऐसे गर्जना की मानो वे बड़े आनंद में हों । गुरूदेव ने बड़े प्यार से उनका सिर थपथपाया और जंगल का राजा अपने बड़े पंजे गुरूदेव के कन्धों पर रख कर खडा हो गया । मैं अपनी परेशानी के लिए शर्मिन्दा था और इतने भयानक प्राणियों को गुरूदेव के साथ इतना अधिक प्यार करते देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ । अब मैं प्रेम की शक्ति को समझ सकता था जिसके बारे में गुरूदेव ने हमारे मद्रास वास्तव्य के समय हमें बताया था । वह केवल सिद्धान्त ही नहीं था किन्तु उसका प्रत्यक्ष दर्शन मैं देख सकता था जिसने नि:सन्देह मुझे पूरा विश्वास करा दिया था कि यदि प्रेम बिना किसी विचार अथवा आकांक्षा से किया जाय तो कल्पना और विचार शक्ति से परे की किसी भी चीज को प्राप्त कर सकता है । इनकी गर्जना पर घनी लताओं के बीच से जिनसे गुफा का दरवाजा ढका था एक सफेद बालों वाले सिर को झांकते हुए मैंने देखा । गुरुदेव को देखकर एक अति वृद्ध व्यक्ति अपने दोनों हाथ फैलाते हुए बाहर आया और बड़े प्रेम से गुरूदेव को उन्होंने आलिंगन में बाँध लिया । गुरूदेव ने मुझे उनके दर्शन करने के लिए कहा और मैं उनके चरणों में गिर पड़ा । उनकी आयु काफी होने पर भी वे शक्तिशाली दिखाई दिये क्योंकि उन्होंनें आसानी से मुझे उठा लिया । उन्होंनें आत्मीयता से मेरा आलिंगन किया और मेरा हाथ पकड़ कर वे मुझे अन्दर ले गये ।

छठा प्रकरण

गुफा अन्दर से काफी बड़ी थी । पहाड़ी में वह काफी अन्दर तक गई हुई थी और इतनी चौड़ी भी थी कि अच्छी संख्या में लोग उसमें समा सकते थे । उसमें हवा का आवागमन अच्छी तरह हो रहा था और कई छेदों में से पर्याप्त प्रकाश आ रहा था । गुफा में लगभग बारह व्यक्ति इधर-उधर रह रहे थे । हमें देखकर वे जल्दी से खड़े हो गए और गुरुदेव को देखने पर श्रद्धा से उन्होंने प्रणाम किया । मुझे वातावरण बड़ा ही अनुकूल लगा और ऐसा लगा कि मैं अपने पुराने साथियों के बीच आ गया हूं । उस वृद्ध व्यक्ति ने हमें बैठने और विश्राम करने के लिए कहा । जमीन पर घास की चटाइयाँ पड़ी थीं । और आग भी जल रही थी जिससे गुफा गरम थी । गुफा को हिस्सों में बाँटा गया था । मैंने गुरुदेव के पीछे चलकर आगे वाले कक्ष में प्रवेश किया जहाँ पर स्नान करने की व्यवस्था थी । एक कोने में, पर्याप्त मात्रा में गरम पानी भी रखा हुआ था । लम्बी और थकाने वाली यात्रा के पश्चात् गरम पानी से स्नान करना मुझे बड़ा अच्छा लगा । जब तक हम मुख्य बाहरी कक्ष में आए तब तक भोजन तैयार था । आटे जैसी किसी वस्तु की गरम रोटियां और बडी मात्रा में दूध यह भोजन था । मुझे लगता है कि मैंने कई रोटियां और अच्छे प्रमाण में दूध ग्रहण किया होगा । गुफा के व्यक्यिों ने कहा कि वे सुबह हमारे आगमन की आशा में थे । वृद्ध सज्जन ने उन्हें बताया था कि हम आ रहे हैं । उनके यहां शहर से बहुत ही कम व्यक्ति आते थे इसलिए हमें पाकर वे बड़े खुश थे । गुरुदेव उस वृद्ध व्यक्ति से बातें कर रहे थे और मैं शेष लोगों के साथ हो लिया ।

मेरी अपेक्षा से भी गुफा अधिक बड़ी थी यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ । गुफा के आखिरी भाग में बरामदा सा था जिसमें लगभग बारह गौएं चर रही थीं । कुछ समय पूर्व ही सूर्यास्त हुआ होगा और गुफा में अंधेरा छा रहा था । बीच कक्ष को एक मशाल द्वारा अच्छी तरह प्रकाशित रखा गया था और एक कोने में कुछ छड़ियाँ तेल में भीगे कपड़े में लपेटकर रखी गई थीं । मुझे नींद आ रही थी, कुछ तो थकान और कुछ अधिक भोजन के कारण । गुरुदेव ने कहा,—"माधव, तुम थक गए हो, तुम सो सकते हो ।" कोमल घास पर एक चटाई बिछाकर बिस्तर बना हुआ था । मुझे वहाँ सोने के लिए कहा गया । जैसे मैं बिस्तर पर लेटा, मेरी आँखें स्वयं बन्द हो गईं ।

जब मैंने आंखें खोलीं तब सुबह हो चुकी थी। मैं बिस्तर पर ही था और मेरे शरीर पर दो कम्बल पड़े हुए थे। गुरुदेव पास ही खड़े थे और हंसमुख चेहरे से मुझे उठाने के लिए उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। "माधव", उन्होंने कहा,—"कैसा लग रहा है? तुम पूरी तरह थक गए थे और तुमने गहरी नींद ले ली है। सुबह हो चुकी है और प्रत्येक व्यक्ति ने अपना काम शुरू कर दिया है।" मैं तुरन्त उठ बैठा। मैंने अपने कम्बल लपेट कर इस स्थान पर रख दिए जहाँ दूसरे कम्बल भी रखे गए थे। हम साथ-साथ ही गुफा से निकले। गुफा से लगभग एक मील दूर किसी स्थान पर गुरुदेव मुझे ले गये जहाँ पहाड़ों से एक छोटा सा झरना बह रहा था। पानी बरफ जैसा ठंडा था। मुंह धोने के बाद मैंने पानी में डुबकी लगाई और ताजगी का अनुभव किया। स्नान समाप्त कर हम गुफा लौट आए। गुरुदेव ने कहा,—"माधव, तुम्हें अपनी सहायता यहां खुद ही करनी होगी। यहां कोई नौकर नहीं हैं और किसी प्रकार की औपचारिकताए भी नहीं।" मैंने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में पूरी तरह व्यस्त था। आग के पास गरम दूध रखा था। मैंने उसमें से कुछ दूध गुरुदेव को दिया और कुछ स्वयं लिया। गुरुदेव ने कहा कि वह वृद्ध व्यक्ति गुफा का प्रस्थान है और शेष उनके अनुयायी। वृद्ध व्यक्ति उन्हें जो बताते हैं उसी का अभ्यास वे लोग कर रहे हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि उन वृद्ध व्यक्ति की आयु क्या होगी तो गुरुदेव बोले, —"मैं नहीं बता सकता। पचास के ज्यादा वर्षों से मैं ठीक इसी प्रकार देखता आ रहा हूं जिस प्रकार आज वे दिखाई दे रहे हैं। वे मेरे से बहुत जादा बड़े हैं यह निश्चित है। उनसे शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। वे यहां स्थायी रूप से रहते हैं और जिन्हें मार्गदर्शन प्राप्त करने की इच्छा है उन्हें ज्ञान प्रदान करते हैं।" मैंने गुरूदेव से पूछा कि हम कितने दिन तक यहाँ रहने वाले हैं। गुरूदेव ने कहा, —"हम कुछ समय तक यहां रहेंगे और अब तुम अपना दैनिक कार्यक्रम प्रारम्भ करो।"

अब गुफा में आकर हमें एक सप्ताह हो चुका था। गुरुदेव ने कहा,—"माधव, कल प्रातःकाल तुम्हें निर्विकल्प समाधि लगानी है और जब तक मैं तुम्हें न जगाऊ तब तक तुम उसी में रहोगे।" यद्यपि गुरूदेव ने मुझे यह सिखाया था किन्तु उनकी पूर्व अनुमति के बिना समाधि में प्रवेश करने के लिए उन्होंने सख्ती से मना किया था। अतः उसमें जाने की संभावना से मुझे अत्यधिक आनन्द हुआ। दूसरे दिन हम जल्दी उठ गए और जब हम स्नान कर गुफा में लौटे तो मैंने देखा कि विशिष्ट स्थान पर मेरे बैठने की सारी तैयारियां की गई थीं। वहाँ फूल बिछाये गये थे और धूप जल रही थी। सारा वातावरण ताजगी से भरा था और फूलों की मीठी सुगन्ध और धूप से व्याप्त था। मैं सबके सामने नतमस्तक हुआ और मैंने गुरूदेव का चरण स्पर्श किया।

घास की चटाई पर मैंने अपना आसन ग्रहण किया। गुरूदेव मेरे सामने बैठे और कुछ ही मिनटों में मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

समाधि की अवस्था केवल अनुभव की जा सकती है, समझायी नहीं जा सकती। जब मैंने आंखें खोलीं, तो गुरूदेव मेरे सामने बैठे हुए थे और सब कुछ बिलकुल वैसा ही था जैसा मेरे समाधि में जाने से पूर्व था। मैंने उठने का प्रयास किया किन्तु उठना असम्भव लगा। गुरूदेव मेरी ओर दोड़े और बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे बाहों में कस लिया। उन्होंने कहा,—"माधव, उठने का प्रयास न करो।" गुफा के उस वृद्ध व्यक्ति ने अपने शिष्यों से किसी तेल से मेरे शरीर की मालिश करने के लिए कहा। लगभग एक घण्टे की मालिश के बाद मैं उठ सका और थोड़ा चल सका। अपने शरीर की दशा देखकर मैं कुछ चकित सा था और उसका कारण मैं नहीं समझ सका। मैंने सोचा कि समाधि में मैं बहुत थोड़े समय के लिए रहा हूंगा, कम से कम इतने समय तक तो नहीं कि मरे अंग जकड़ जायें। मेरा शरीर बड़ा कृश सा दिखलाई पड़ता था और जितना भी मांस था सब समाप्त हो गया था यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कृश शरीर होते हुए भी मुझे कमजोरी या थकान का अनुभव नहीं हो रहा था। उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा, —"माधव, तुम्हारी प्रगति से मैं पूरी तरह संतुष्ट हूं, तुम्हारी उपलब्धियां सचमुच महान् हैं और इसका सारा श्रेय तुम्हारे गुरूदेव को जाता है।" उसके बाद एक प्याले में संतरे का रस भरकर मुझे पीने के लिए दिया गया। दो घण्टों के अन्दर मैं खुलकर हलचल करने लगा। गुरूदे ने कहा,—"माधव, तुम्हें पता है कि तुम कितना समय समाधि में रहे?" मैंने कहा, "अधिक से अधिक दो दिन तक मैं समाधि मे रहा हूंगा।" गुरूदेव ने कहा, —"तुम्हें पता नहीं कि पूरा वर्ष बीत गया है और समय पता चले विना तुम समाधि में थे?" अपने सिर पर बढ़े हुए बालों, खासी जंगली सी दाढ़ी और होंठों पर घनी मूंछों का भाव मुझमें जागा। दर्पण से अपना स्वरूप देखने को मैं उत्सुक था किन्तु झरने के स्वच्छ जल में अपना प्रति-बिम्ब देखकर ही मुझे संतोष करना पड़ा। मेरा चेहरा बदल गया था और मैं स्वयं को मुश्किल से पहचान पाया था।

नहाने के बाद मैंने केवल थोड़ा दूध लिया और कुछ ठोस अन्न ग्रहण करने की इच्छा नहीं हुई। गुरूदेव ने मुझे बताया कि जिस अवधि में मैं समाधि में था उस समय वे अपनी यात्रा पर गये थे और केवल एक दिन पूर्व ही लौटे हैं। उनकी अनु-पस्थित में उन वृद्ध व्यक्ति और उनके शिष्यों ने मेरी देखभाल की थी। गुफा का प्रत्येक व्यक्ति मेरे प्रति इतना अच्छा था कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता मैं प्रकट नहीं कर सका। दो दिन के पश्चात् गुरूदेव ने मुझे कहा,—"माधव, अब अपनी यात्रा के अंतिम चरण के लिए हम निकल रहे हैं। वहां पर मैं तुम्हें उन सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को

सौंप दूंगा जो मेरे गुरू हैं। मैं सोचता हूं कि मुझे जो काम सौंपा गया था उसे मैंने पूरा कर दिया है। मैंने तुम में आदर्श साधक पाया है।" मैंने कहा,—"गुरूदेव, मैं आपके गुरू को नहीं जानता और उनसे मिलने का शुभावसर मुझे नहीं मिला, फिर भी, मैं जैसा अब तक आपके निर्देशों का पालन करता रहा हूं, उसी प्रकार आखिर तक पालन करता रहूंगा। अब शेष जीवन में मुझे कोई रुचि नहीं रही।"

दूसरे दिन प्रातः हमने गुफा छोड़ दी, उसी स्थान पर नहा कर हम यात्रा पर चल पड़े। हम हिमालय में, अनेक स्थानों पर बर्फ पर चलते हुए और जहां संभव हो वहां विश्राम करते हुए चलते रहे। जंगलों और बर्फ में लगभग एक सप्ताह तक चलते रहे। गुरूदेव को अपना मार्ग बहुत अच्छी तरह पता था और कहीं पर कोई अपघात या दुर्घटना नहीं हुई। एक सुहावनी सुबह जब सूर्य उदय होने को था, हम अपने विश्राम स्थल को छोड़ आगे बढ़ रहे थे। सूर्य की कोमल किरणों से निकटवर्ती बर्फाच्छादित पर्वत ऐसा लग रहा था जैसे सोने का बना हो। सब दूर निस्तब्धता और शान्ति छायी थी और ठंडे वातावरण में चलना सचमुच ही अच्छा लग रहा था। हम लगभग डेढ़ मील चले होंगे कि गुरूदेव, जो मेरे आगे चल रहे थे, एकाएक रुक गए। चौंक कर, जिस दिशा में वे देख रहे थे, उस दिशा में मैंने देखा और मुझे दिखा कि एक व्यक्ति हमारी ओर आ रहा है। जैसे ही वह व्यक्ति कुछ और नजदीक आया, गुरूदेव उसकी ओर दौड़ पड़े और चरणों में गिर गए। मेरी स्मृति क्षण में उस सपने तक दौड़ गई जिसे मैंने वर्षों पूर्व देखा था। मैंने उस व्यक्ति को पहचान लिया जिसे मैंने सपने में दो बार देखा था। मैं गुरूदेव के पीछे चला और उसके चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठा लिया और बड़े प्रेम से गले लगाया। अपनी मधुर आवाज में उन्होंने कहा,—"माधव, तुम आ गये। मैं तुम्हारी राह देख रहा था।" गुरूदेव ने कहा,—"ओ देबता, आपके आदेशों के अनुसार मैं उसे आपके पास ले आया हूं। मैं सोचता हूं कि आपके आदेशों का मैंने पूर्णतः पालन किया है।" उन्होंने गुरूदेव से कहा,—"तुमने जो कुछ किया उससे मैं प्रसन्न हूं। अब हम अपने स्थान पर चलें।" कुछ ही समय में हम गुफा तक पहुंचे जिसे मैंने सपने में देखा था और वे दोनों कुत्ते हमें लेने के लिए दरवाजे के पास आये थे। उन कुत्तों ने मेरे प्रति बडी पहचान दिखाई यद्यपि मैं अपने को अजनबी मान रहा था। गुरूदेव स्वाभाविक ही उनसे बडी अच्छी तरह परिचित थे। मैं देख सकता था कि वह गुफा वास्तव में ही बहुत विस्तीर्ण और आरामदेह थी। हम सब लोग वहां पर बैठ गए, गुरूदेव गुफा के भीतर गये और हम सब के लिए गरम दूध ले आये। उस दिव्य व्यक्ति ने मुझे कहा,—"माधव, तुम अब मेरे साथ यहां पर रहोगे और चिदानन्द जिसे तुम गुरूदेव कहते हो, अपनी इच्छानुसार चले जायेंगे क्योंकि उन्हें कुछ काम करना है। अर्थात् वह कुछ ही समय तक हमारे साथ रहेंगे क्योंकि उन्हें विश्राम की आवश्यकता है। तब तक तुम यहां की परिस्थितियों से परिचित हो जाओगे।" गुरूदेव ने कहा,—"अगले सप्ताह आज ही

के दिन मैं यहाँ से जाऊंगा। यदि तुम्हें अपने रिश्तेदारों और मित्रों के लिए कोई सन्देश भेजना हो तो मैं खुशी से उन तक पहुचा दूंगा।" मैंने कहा,—"गुरूदेव, आपके जाने से पूर्व मैं अपनी डायरी पूर्ण कर लूंगा फिर वह आपको सौंप दूंगा।" मेरी अंतिम सम्पत्ति थी मेरा फाउन्टेन पेन, हाथ की घड़ी और विनोदिनी और मेरे भाइयों के लिए चिट्ठियां और मालती के लिए एक फाउन्टेन पेन और डायरियां।

मैं सोचता हूं कि मैं अपनी यात्रा की समाप्ति तक आ गया हूं और मुझे पता नहीं कि आगे कोई डायरी मैं लिखूंगा या नहीं। अपने बचपन से ही डायरी लिखने की आदत मैंने बना ली थी। मैं सोचता हूं कि मैंने अग्रेजी विद्यालय में प्रवेश लिया ही होगा कि हमारे शिक्षक न हमें प्रतिदिन की डायरी लिखने के लिए कहा था। कुछ अज्ञात कारणों से मैंने वह आदत आज तक नहीं छोड़ी। मुझे नहीं पता कि अब आगे मैं उसे छोड़ दूंगा। डायरी को पूरा करने से पहले मैं अपने अंतिम निरीक्षणों, यदि उन्हें अतिम ही कहा जाना हो, को नोट करना चाहूंगा।

अतीत को पुनः देखते हुए मुझे यह कहना है कि मैंने एक बड़ा अच्छा जीवन व्यतीत किया। मुझे कोई पश्चाताप नहीं और ऐसी कोई बात नहीं जिनके कारण लज्जित होना पड़े। अपनी बाल्यावस्था से ही अपने निर्णयों के कार्यान्वयन में उद्देश्य की दृढ़ता मेरे में रही है। कभी भी अपने बारे में हीन भाव या उच्च भाव मुझमें नहीं रहा। मुझे विश्वास था कि मैं उस सब को प्राप्त कर सकता हूं जिसे कोई मनुष्य प्राप्त कर सकता है। सौभाग्य से मैं जीवन में सुखपूर्वक पला था और इसलिए अपने अस्तित्व के लिए किसी संघर्ष का पता मुझे नहीं था। इस कारण अपने ध्येयों के पीछे लगे रहने के लिए मुझे पर्याप्त समय मिला। अपने विद्यालय और महाविद्यालय के दिनों में शैक्षाणिक जीवन और खेलों में प्रवीणता मेरे ध्येय थे। उन दोनों क्षेत्रों में निश्चित ही मैंने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। किसी न किसी कारण मुझे लगा कि बहुसंख्य लोगों द्वारा व्यतीत किये जाने वाले जीवन में बहुत कम शांति और सुख रहता है। मेरे मित्रों और सम्बन्धियों के दिन प्रति दिन के जीवन को ध्यान से देखने पर मुझे विश्वास हो गया कि अपने अनुमान में मैं सही था। मैंने सोचना प्रारम्भ किया कि शाश्वत शांति और सुख संभव है। मैं पहले स्वामीजी और फिर गुरुदेव के सम्पर्क में आया। स्वामी जी का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा किन्तु जब मैंने गुरुदेव को देखा तो मुझे निश्चित रूप से लगा कि यह ऐसा व्यक्ति है जो सचमुच में सुखी और शांत है। मैंने इस विषय पर बहुत पढ़ रखा था किन्तु मैं सोचता था कि यह सब कुछ केवल सिद्धान्त ही है। जब मैं गुरुदेव से मिला तब लगा कि यह सम्भव है। मैंने आह्वान के रूप में स्वीकार कर लिया और उसे प्राप्त करने की मैंने ठान ली जिसके बारे में मुझे कोई कल्पना, ज्ञान अथवा जानकारी नहीं थी। जिसे सुखी विवाहित जीवन कहा

जाता है उसे व्यतीत करना मेरे लिए आसान था किन्तु मैंने सोचा कि वह पारिवारिक जीवन के साथ मुझे बांध देगा। इस तरह अपने उद्देश्य के लिए आवश्यक पूरी स्वतन्त्रता से मैं वंचित रहूंगा। इसलिए मैंने सांसारिक जीवन के लालचों, प्रलोभनों और आरामों पर विजय पा ली। मै नहीं सोचता कि यदि मैं संसार के साथ अपने को बांध लेता तो इतने कम समय में इतनी बड़ी दूरी मैं तय कर पाता। लाभों से तुलना करने पर मेरी हानियां बहुत कम हैं। जब से मैं गुरुदेव के सीधे सम्पर्क में आया और उनके आदेशों का पालन करना मैंने प्रारम्भ किया तब से मैंने महसूस किया कि मार्ग दर्शन का होना अनावश्यक या असार नहीं हैं अर्थात् कुछ अपवादों और उन बहुत कम लोगों को छोड़ देना होगा जिन्हें तुरन्त साक्षात्कार हो जाता है। बहुसंख्यक सत्य शोधकों को निश्चय ही मार्ग दर्शन की आवश्यकता होती है। 'प्रक्रिया' इस शब्द को इतना गलत समझा जाता है, उसकी इतनी गलत व्याख्या की जाती है कि उसका सही अर्थ छूट गया है। आंतरिक व्यवस्था की कार्य प्रणाली को समझने के लिए गंभीर चिंतन मन को उस व्यवस्था की कार्य प्रणाली और अनुभव तक ले जाता है और वह एक अर्थ में प्रक्रिया भी है जो मुझे आवश्यक लगती है। केवल बौद्धिक धारणाओं, स्वीकारे गये सत्यों, पुस्तकों के अध्यापन, प्रवचन और तथाकथित साक्षात्कार प्राप्त किये लोगों को बातों से हमेशा चंचल रहने वाला मन वश में आ जायेगा ऐसा मुझे नहीं लगता। अपनी गतियों में मन, समय, नीतिशास्त्र, शिष्टाचार के नियम, संस्कृति और शिक्षा, विषयों का चुनाव आदि के बन्धनों को नहीं पहचानता। मन की गति इतनी शीघ्रतापूर्वक और बिखरी होती है, कि केवल मौखिक स्तर पर समझने या उसको देखते रहने से उसे वश में कर लेना सम्भव नहीं है। शारीरिक क्षमता और उसके लिए अनुशासन परम आवश्यक है जिससे बाह्य और अन्तर में सामञ्जस्य प्राप्त हो सके। गुरुदेव को मनुष्य के मनोविज्ञान का बहुत अच्छा ज्ञान था और वे प्रत्येक व्यक्ति मात्र की नस-नस इतनी अच्छी तरह जानते थे कि वे उसे सही मार्ग दर्शन या प्रक्रिया जो भी नाम उसे दे, प्रदान करने में समर्थ थे।

सत्य अथवा अज्ञात के लिए मेरी खोज तब से प्रारम्भ हुई जब मैं, जिसे मन कहा जाता है उसको अनुभव के सन्दर्भ में समर्थ हुआ। जब वातावरण में हल-चल हो तो हम उसे हवा कहते हैं किन्तु जब वातावरण शांत रहता है तब हम कहते हैं कि हवा नहीं है। जब पानी विक्षुब्ध होता है तब ही हम तरंगों या लहरों को देखते हैं किन्तु जब पानी शांत होता है तब कोई तरगें या लहरें नहीं रहतीं। वास्त-विक बात तो यह है कि न तो कुछ आता है और न कुछ जाता है। कोई बढ़ोत्तरी या कमी नहीं है किन्तु हम अशान्त वातावरण और अशांत जल को हवा और लहरें कहते हैं। उसी प्रकार मन अस्तित्व में तब आता है जब कोई हलचल अथवा आन्तरिक गतिविधि होती है। यह मानसिक गतिविधि किस के कारण होती हैं यह अपने आपमें

एक अलग विषय है। गुरुदेव की सहायता से मेरी सब कठिनाईयों का समाधान हो गया। मैंने अपने को सदा स्वतन्त्र और ताजा ही अनुभव किया। बिना अतीत के किसी बोझ के अथवा भविष्य की किसी चिन्ता के। शाश्वत सत्य और जिसे "अज्ञात" कहा जाता है वह शब्द से परे का अनुभव है।

मुझ में आनन्द, शांति और सुख के सिवा कुछ भी नहीं। मैं अज्ञात खोज में निकला था किन्तु आज मैं देखता हूं कि अज्ञात में मैंने अपने आप को खो दिया है। मेरा अहं पूर्णतया समाप्त हो चुका है और अब उसका कोई मायना नहीं रह गया केवल सांकेतिक रह गया है। भौतिक अस्तित्व से इस अहं का बहुत कम सरोकार है और पहचान करने का समाप्त हुआ संकेत छोड़कर वह व्यक्ति जिसे संसार कभी माधव के रूप में जानता था अब मेरे साथ बहुत कम सरोकार रखता है। यदि कुछ सीमा तक इसे समझाया जा सके तो मैं कहूंगा कि एक नदी को अस्तित्व अथवा अलग से पहचान तब तक रहती है जब तक वह सागर से नहीं मिलती। जिस क्षण वह समुद्र में मिल जाती है उसकी पहचान पूर्ण रूप से अपार समुद्र में समाप्त हो जाती है और उसके लिए कोई अलग अस्तित्व नहीं बचता। अपार सागर में जो भी नदियाँ मिलती हैं उनके जलों में भेद करना असम्भव है उसी प्रकार मैं अज्ञात की खोज में था और आज मैं खुद अपने को भी अज्ञात हूं।

मैं सोचता हूं कि डायरी में लिखनें के लिए अब कुछ और मेरे पास नहीं है डायरी पूर्ण करने के साथ साथ मैंने अपने अनुभवों की पुस्तिका और मेरे भाइयों, मालती और बिनोदिनी के लिए पत्र मैंने लिख लिए और हाथ की घड़ी और फाउ-न्टन पेन के साथ मैंने ये सब चीजें गुरूदेव को सोंप दीं। गुरूदेव नियत समय पर यहां से चल देंगे।

समाप्ति

माधव जब हम को छोड़ कर हिमालय में गये उस घटना को लगभग दो वर्ष बीत चुके थे। उनके बारे में अब तक कोई सूचना न मिली। उनकी दृष्टि में वह भले के लिए ही गये हैं और उन्होंने हमें कोई सूचना देने का आश्वासन नहीं दिया था। सत्य अथवा साक्षात्कार जिसे कोई कुछ भी नाम दें, को प्राप्त करने के अपने ध्येय में माधव के साथ गुरुदेव थे जिनमें हमें श्रद्धा और विश्वास था। किन्तु फिर भी जैसे समय बीतता गया, मैं और मेरे छोटे भाई उनके बारे में चिन्तित होने लगे। हमारी चिन्ता में प्रो० रमेश, मालती, गुप्ता दंपति और उनकी बेटी भी सम्मिलित थे। माधव के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना सम्भव नहीं था और इस असहाय अवस्था में हमारी चिन्ता बढ़ रही थी।

रविवार की सुबह थी। मैं अपने घर के बगीचे में किसी व्यक्ति के साथ चाय ले रहा था। मेरी पत्नी घर में थी। बच्चे इतनी पढ़ाई में व्यस्त थे। मैंने बगीचे का दरवाजा खुलने की आवाज सुनी और कौन आया है यह जानने के लिए मैं देखने लगा, जल्दी में सामने वाले व्यक्ति से क्षमा याचना कर, मैं अन्दर आने वाले व्यक्ति की ओर दौड़ने लगा। आगन्तुक अन्दर आ गया था। वे गुरुदेव थे। वर्षों बाद उनसे मिलते समय मेरा हृदय आनन्द से भर गया और मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। एक क्षण के लिए मैंने अपने आप पर नियन्त्रण खो दिया। गुरुदेव ने मुझे उठाकर मेरा आलिंगन किया। इस समय तक मेरी पत्नी भी बाहर आ गई थी और उसने गुरुदेव को प्रणाम किया। मैं मुश्किल से अपने पर नियन्त्रण कर सका जब मुझे याद आया कि गुरुदेव अकेले हैं ओर माधव कहाँ हैं ? मेरे मन में जो कुछ चल रहा था उसे गुरुदेव जान गये और मुस्कराते हुए उन्होंने कहा,—"चिन्ता मत करो, माधव बड़ी अच्छी तरह है। वह हिमालय में है और आपके लिए उसने मुझे खत दिये हैं।" मेरी पत्नी ने बीच में टोककर कहा,—"क्या आप गुरुदेव को अन्दर चलने के लिए नहीं कहेंगे ?" मैं लज्जित हुआ क्योंकि मैं साधारण शिष्टाचार भी भूल बैठा था। गुरुदेव जोर से हंस पड़े और बोले,—"सब ठीक है, हम सब साथ ही अन्दर चलें।" इस बीच हमारे यहां बैठा हुआ व्यक्ति जा चुका था। मुझे नहीं पता कि उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा। बाहरी कक्ष में, बच्चों को बुलाकर मैंने गुरूदेव से उनका परिचय करा दिया। गुरूदेव के लिये मिठाई और दूध लाने के लिये मेरी पत्नी अन्दर गई और मैंने माधव का पत्र खोला। मैंने अपने लड़के से कहा कि वह मेरे भाई से

फोन पर कह दे कि अपने परिवार के साथ गुरूदेव से मिलने आयें। माधव का पत्र इस प्रकार था—

प्रिय विनायक,

मैं लम्बे समय के बाद पत्र लिख रहा हूं। आप सब लोग स्वाभाविक ही मेरे बारे में उत्सुक होंगे। मैं आपके भय को यह लिख कर दूर कर दूं कि मैं अच्छे स्वास्थ्य से हूं और सभी प्रकार से पूरी तरह सुखी हूं। आपको किसी भी बात के लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है—आप जानते हैं कि स्वामी जी और गुरूदेव से मिलने के पश्चात् मैं अपने सारे जीवन भर सत्य और सच्चे सुख की खोज में लगा रहा। आपको यह जानकर खुशी होगी कि मेरे प्रयत्नों को सफलता मिल चुकी है और मेरी खोज समाप्त हो गई है। आज मेरे पास कोई समस्याएं नहीं, कोई चिन्ताएं नहीं और कोई पश्चात्ताप नहीं। इसका सारा श्रेय गुरुदेव को है जिन्होंने अज्ञान से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, दुःख से शाश्वत सुख और शांति की ओर ले जाने में अब तक सम्भव एक महान आश्चर्य कर दिखाया है। जिन लोगों की बुद्धि विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं से प्रशिक्षित है, जो भिन्न प्रकार के वातावरण में पले हैं, किसी विशेष व्यवस्था, समाज अथवा राजनीतिक संस्थाओं, मन को जकड़ देने वाली आर्थिक परिस्थितियों और विचारों में जो व्यक्ति शिक्षित हुए हैं उनके लिए गुरूदेव को समझना सम्भव नहीं है। इसलिए आप उन्हें कुछ इस प्रकार, कुछ ऐसे व्यक्ति के समान समझ सकते हैं जो आपकी धारणा के ईश्वर के बराबर हैं।

मेरी आप सब से यह प्रार्थना है कि मेरे बारे में कोई चिन्ता न करें। यदि सम्भव हो तो कृपया मुझे भूल जायें। गहन बर्फाच्छादित पर्वतों से, जहां पर मैं इस समय हूं मैं नहीं जानता कि मैं कब आपकी धारणा की सभ्यता में लौट सकूंगा। आपको यह जानकर सुख होगा कि मैं आवश्यकताओं से पूरी तरह मुक्त हूं और मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

आप सब को सादर अभिवादन के साथ

आपका प्रेमाकांक्षी
माधव

गुरूदेव दूसरे दिन सुबह यहाँ से चले गये। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि जब भी वे बम्बई आयेंगे हमसे मिलते रहेंगे।

मैंने गुप्ता दंपति, उनकी बेटी और उसके पतिदेव को सूचित कर दिया। मालती और रमेश गुरूदेव से मिलने आये थे।

ठीक एक मास के पश्चात् माधव के मित्र मेरे यहाँ एकत्रित हुये और सामान्य जनता के लाभ के लिए माधव की डायरियों को संक्षिप्त, आत्म निवेदनात्मक रूप में एकत्रित करने का निर्णय उस समय लिया गया।
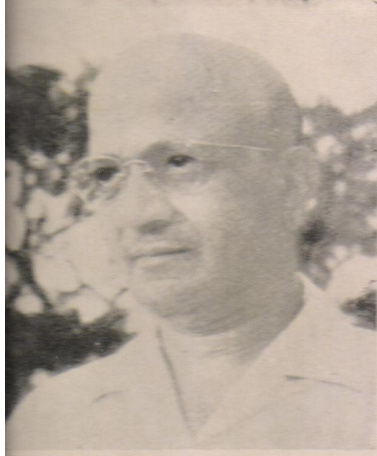
श्री जी० के० प्रधान

मूल्य 20.00 रुपये (सजिल्द)
12.00 रुपये पेपर बैक

छाया : रूपीन्द्र खुल्लर

प्रकाशक :

समकालीन प्रकाशन
2762, राजगुरु मार्ग
नई दिल्ली-110055 (भारत)